॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

सत्य बोधामृत

सत्यपाकदास



* सद्गुरवे नमः *

सद्ग्रन्थ

सत्य बोधामृत

परम वैराग्यवान धीरगम्भीर शुभगुण
विभूषित स्वरूप निष्ठ कबीर
तत्सम महात्मा श्री
विशाल देव का
शिष्य

सत्यपाल दास

प्रकाशक
उदय बहादुर
काठमाण्डौ (नेपाल)

मूल्य रु० १६'००

सम्वत २०२६] [सन् १९७०

सद्गुरवे नमः

[निवेदन-अर्पण परिचय]

पूज्य पाद निर्विवाद वीतराग सद्गुरु श्री विशाल देव के परिभ्रमण काल में विशेष उत्तर प्रदेश से जो जो पत्र नेपाल निवासी प्रेमी जनों को दिये गये उन सबों का पारमार्थिक अंश संत श्री सत्यपाल साहेब संग्रह करते गये। प्रस्तुत पुस्तक वही है जो आप सब के कर कमल में अध्ययन हो रही है। पत्र अतिरिक्त भी कुछ उपयोगी प्रकरणों का संग्रह हुवा है। विशुद्ध स्थितवान गुरुजनों की सत्यशिक्षा रहस्य प्रभाव संतत स्मरणीय, सेवनीय एवं वाञ्छनीय है, जिससे पारख स्वरूप का बोध तिसकी निर्वासनिक अभंग स्थिति प्राप्त हो, जो सर्वथा दुःख विगत निर्द्वन्द स्वच्छन्द भूमि है। 'भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी' पारखी से संग कर, सज्जन सोई सराहिये जो पारख राखै साथ। ये उन्हीं का दिया मंत्र है आदेश निदेश है जो पंथ मूल पारख शोधक आदि देव हैं। आपही के पारख बोध को पाकर स्वयं प्रकाशी स्वरूप बोध में दृढ़ विवेक वैराग्य युत स्थितवान सर्व देश के गुरुजन संत जन की मुक्ति भूमि निर्विकार निराधार समान पारख स्थिति सिद्धांत में बहुत प्रकार वर्णन हुवा है। "पारख पायो परख समाना। तहाँ न भास अध्यास अनुमाना॥

इसी महान पारख सिद्धांत सद्भाव से प्रेरित हुये संत श्री सत्य पाल साहेब की उत्कट इच्छा हुई कि पारख उद्बोधक संग्रह का प्रकाश हो जाय, हो ही गया। ये सब—

सद्‌गुरु श्री विशाल देव के ही महत्प्रभाव का परिणाम है। इसे अंकित करवाना, अकेले प्रूफ आदि संशोधन करना और भी उपयोगी पुस्तक प्रकाशन का कार्य भार गुरुदेव की सेवा रूप में श्री मनतोल साहेब ने ही किया है। वह अथक परीश्रम स्तुत्य है। पर गुरुदेव उपकारता की पटतरता में ये सब परीश्रम कुछ नहीं है॥ सच है 'उपकारी निर्विकारी संत जनों का सहज स्वभाव ही है, 'सहन शील नहि थकैं अघट बल, साहस परम लहावैं।" संत सहहिं दुख परहित लागी ..संत श्री वासुदेव साहेब संत श्री सुसंग साहेब संत सतमनदास जी प्रथम लिपि कुछ संशोधन किये इधर अपनी ओर से हमने जहाँ तहाँ दृष्टान्तों का मेल और कुछ प्रश्नोत्तरी आदि सिद्धांत रहस्य स्पष्ट हेतु सरलता से सुझाव के लक्ष्य से रख दिये हैं। जिससे कि इसमें अनुदित अभिरुचि बढ़ती ही रहे। जो प्रथम संग्रह कॉपी की लिपि थी उसे कहीं ज्यों का त्यों रहने दिया गया कहीं यत्र तत्र घटाने बढ़ाने पर भी भाव वही रक्खा गया है जो प्रथम कॉपी में लिपि बद्ध था। आशा है बाल विनोद को छान बीन कर हंसवत सार ग्राही, सन्तुष्ट होंगे, जो कुछ अच्छाई निपुणाई होगी वह सब संतगुरु का प्रताप, और जो कुछ प्रमाद बश दूषित चर्चा बन गयी होगी, वह सब मेरा जान कर सहज ही त्याग देंगे, और क्षमा क्षोह से सत्य निर्णय सुझ दास को सुझाते रहेंगे। जिससे यह अनुगामी भी शांत पद में स्थित हो सकेगा। श्रीसत्यपाल साहेब व उनके प्रेमियों ने जो आर्थिक दान दे ग्रंथ प्रकाशन किये हैं। वह गुरुवर श्री विशाल देव के पद कमल में सादर समर्पित है। छन्द– हे संतगुरु उप-

कार चारों ओरसे है आपका। सब कालमें सब देशमें, सबओर सत्य प्रताप का। हम दीन हीन मलीन को भी सत्य देश सब जाप का। ऐसी कृपा वर्षा करें थिति आप पद निष्पाप का है॥

सदगुरु सर्व पारखी सन्त रूप कबीर देव श्री विशाल देव को सहश्रम कोटि कोटि बन्दगी प्रणाम, ग्रन्थ शोधने छपाने सहायता करने सर्व सर्व सज्जन सन्त जन को सहश्रम धन्यवाद सुकृत भाव सहित स्वागतम् सहश्रम् शरणागतम्॥ आप गुरूवर के पद कमल की ओर प्रेमी जन भक्ति बिन्दु– प्रेमदास, सत्यपालदास, उदयबहादुर, दाख बाई, सेवादास, रत्न कुमारी, राधाबाई विदेही, गोद कुमारी आदि नेपाली प्रेमीवर्ग।

॥ भजन ॥

अब तोको कहौं समझाय हो, गुरुपद निर्भय रमन॥ टेक
संत भक्त सज्जन सब मिलि के, गुरुपद शीश नवाय।
सेवा शरण ले आज्ञा शिर धरि जीव को काज बनाय हो॥ गु०
मैं हूँ कौन? तु चेत! द्रष्टा, साँच झूँठ बिलगाय।
गुरुपद दृष्टि प्रकाश प्रकाशी, जड़ तम भास मिलाय हो॥ गु०
तन धरि जीव जिते जग आये, तामे दुइ विधि पाय।
जड़ तन मन्दिर जीव जो जानत दोनों ग्रन्थि रहाय हो॥ गु०
जड़ चेतन गुण धर्म सहित जग, यहि ते सिद्धि सदाय।
कारण जड़ कर्त्ता नर चेतन, भूल को कोट ढहाय हो॥ गु०
गुरु पारख जो निर्णय कर्त्ता, सुनै गुनै कोउ धाय।
सोउ गुरु पारख रूप विराजै, सब सद्ग्रथ बताय॥ गु०
मेरो नर तन सफल भयो अब, तेरो सफल सदाय।
प्रेम भाव से गुरुपद सेवा, सबको काज पुराय॥ गु०

सद्गुरवे नमः

सत्य बोधामृत का सूचीपत्र

प्रार्थना–

इष्ट पूज्य गुरु सन्त विशाल, विनय प्रतिज्ञा गर्द छु बाल ॥ टेक
गुरु सन्त हजुर को निर्णय सुन्छु, अनि पछि मनमा बेसरी गुन्छु ।
गुनि गुनि दिलमा पुष्ट गरेर, हृदय ढुकुटी खूब भरेर ॥
उत्सुख सारे हंस को चाल, भर्नोस् शक्ती देव दया १
कस्छु पलेंटी बस्छु सजग भै, हाथ जोरि खुब शान्त अटल भै ।
खोल्दछु आँखा कान लगाई, सुन्दछु शिक्षा अलिछ भगाई ॥
ओठ दुबै गरि टन्म कृपाल, धर्न सकौं सब रहनि रसाल २
कुरा को गन्थन सकिन्न कैले, खण्यकखुसुक किन समझे को ऐले ।
उम्ने यो वानी पारि खरानी, आशा तृष्णा सर्पिनी जानी ॥
बोध को बर्छि बिराग को ढाल, मारि भगाऊँ दुर्गुण काल ३
नर तन घरि घरि मिल्छ र फेरी, घुमि घुमि औसर पर्छरफेरी ।
आज को अमृत फेरी बसत्र, मौका गुमाई मरे पनि हुन्न ॥
हृदय घड़ा गरी पूर्ण निहाल, वकस्योस् अमृत आज्ञा विशाल ४

* श्री सद्गुरवे नमः *

सद्ग्रंथ—

सत्य बोधामृत

[विशाल विवेक विन्दु]

अध्याय-१

प्रवेश्य, क्षात्र, गृहस्थाश्रम नर-नारी के लिये आदर्श चरित्र दर्शन

(सत्संग और सद्ग्रन्थ स्वाध्याय प्रवेश्य)

❀ सत्संग सद्ग्रन्थ अध्ययन की सबके लिये आवश्यकता वर्णन ❀

जब सत्पुरुषों के संयोग का विशेष संग नहीं मिलता तब उनके अनुभव युक्त सद्ग्रन्थ से ही शिक्षा प्राप्त होती है। जो परमार्थी सद्ग्रन्थों का पठन पाठन नहीं रखते केवल सत्संग ही का आधार रखते हैं, उनको जब बहुत दिन सत्संग नहीं मिलता तब परमार्थ बुद्धि मलीन होकर ध्येय बदल जाने से उनका परमार्थ छूट जाता है, याते जब सत्संग का अवसर न मिलै तब सद्ग्रन्थों का विशेष आधार रखते हुये परमार्थ बुद्धि प्रफुल्लित रखना चाहिये। फिर कभी कभी साधु समाज में जाकर उसे विशेष

पुष्ट करते रहने से परमार्थ सिद्ध हो सकता है। सद्ग्रन्थ पढ़ने से गृहस्थ नर नारी आसक्त जन तथा कुछ सत्संग से दूर वाले भी अपने भ्रम समझ को छोड़ यथार्थ समझ में लग गये हैं। निर्वाहिक और कामों से अवकाश पाकर या लेकर प्रत्येक दिन नियम से कुछ न कुछ मनन से हट कर सद्ग्रन्थ पढ़ते हुए भाव सहित रहस्य एकत्र की कोशिश करना चाहिए। एक ही ग्रन्थ बार बार पढ़ने से अभ्यासिक और उसका असर हृदय में अच्छा बैठ जाता है। और इधर उधर पन्ना उलट पलट जल्दी जल्दी ग्रन्थ सम्पूर्ण करके उसका आन्तरिक मर्म नहीं प्राप्त कर सकते इसलिये स्थिरता पूर्वक सद्ग्रन्थों को पढ़ने के साथ समय २ मर्मज्ञ महात्मा सज्जनों से भेंट करके कुंजी-भेद प्राप्त करते रहना। ग्रन्थों में उत्पन्न हुई शंका को भेदी सन्त मिटा सकते हैं। ज्ञाता रहस्यवान सन्त के निकट से ही कुबुद्धि का ताला खुलता है दृष्टि घूमती है, प्रत्येक गुप्त बातों की स्पष्टता प्राप्त होती है। तत्पश्चात सन्त कृत अनुभविक प्रबन्धों की जो शब्द गुथित हार रूपी सद्ग्रन्थ को सादर एक एक करके पढ़ते रहना ही चाहिए। जिसका फल परमार्थ ध्येय की पुष्टि होकर संसारिक दुखों की निवृत्ति हो। यह स्मरण रहे कि— बीजक साखी—

शब्दै मारा गिर पड़ा, शब्दै छोड़ा राज।
जिन जिन शब्द विवेकिया, तिनका सरिगो काज॥
शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजै।
कहहिं कबीर जहँ सार शब्द नहिं, धृग जीवन सो जीजै॥

एक मुमुक्षु नित्य प्रेम पूर्वक सद्ग्रन्थों को पढ़ा करता था। वह जहाँ बैठकर पढ़ता था उधर ही से एक बाई पानी भरने जाया करती थी। वह कई बार आते जाते मुमुक्षु का शब्द सुना करती, समझ में न आने से वह सुनते २ ऊब गई। वह एक बार खड़ी होकर पूछने लगी, जब देखो तब ये आप क्या किया करते हैं। तबियत भी नहीं ऊबती। मुमुक्षु ने कहा— जब देखो तब घड़ा लिये कहाँ जाया करती हो। बाई बोली पानी भरने के लिये। मुमुक्षु— एक दिन हो दो दिन हो नित्य क्यों पानी भरती है। बाई— पानी नित्य पीना पड़ता है। मुमुक्षु बोला— फिर ऐसे ही इधर समझो। जैसे शरीर रक्षा के लिये अन्न जल की नित्य आवश्यकया है तैसे मानसिक सुधार के लिये नित्य सत्संग सद्ग्रंथ सद विचार की आवश्यकता है। जहाँ नित्य सत्संग नहीं मिलता वहाँ सद्ग्रंथ ही सद्भावना प्रकट करती है। सद्गुरु श्री विशाल देव को प्रथम मैंने देखा कि एक ही वैराग्यशतक तीन चार बार सांद्यति पाठ करते ही रहते, जो दोहे अधिक रुचीकर लगता उसे दश बीस बार गा गाकर तब आगे बढ़ते आप स्वयं कह रहे थे मन को एक ही शब्द वृत्ति में लगातार अभ्यास करते रहने से मनोद्वेग स्ववश आजाते हैं।

इस उदाहरण का भाव यह हुआ जब अन्न जल के समान ही सद्ग्रंथ की आवश्यकता समझी जाय तब अधिक लाभ पहुँचे। एक सत्संगी मनुष्य ने सन्त से पूछा मैं सत्संग भी करता हूँ सद्ग्रंथ भी पढ़ता हूँ पर यथार्थ बात समझ में नहीं आती, संत

बोले जैसा तुम कह रहे हो वैसा नहीं है। एक तो सत्संग में निद्रा लिया करते हो। दूसरे जहाँ तक सम्भव है सद्ग्रंथ भी मन लगाकर नहीं पढ़ते होंगें, नहीं तो बात क्या है कि कुछ समझ में न आवे। जो पूर्व के संस्कार न मदद दें तो भी तो पुरुषार्थ का फल अवश्य ही होना चाहिये। अच्छा किसी दिन हम तुम्हारे यहाँ आवेंगे। एक दिन सन्त घूमते घूमते-उनके मकान पर पहुँच गये, देखा तो उनके बिछौने पर लोक पत्र इन्द्रजाल नायका भेद और शृङ्गार रस काब्य की अनेक ग्रंथै मिलीं। संत ने मनुष्य से पूछा यही सब औषधि हो रही है। मनुष्य ने कहा विवेक वैराग्य जनित ग्रंथैं भी मेरे पास थीं पर वे मंगनी में गई हैं। आज पंद्रह दिन के करीब हुए होंगें अब वे परमार्थ जनित पुस्तकें नहीं हैं, तो आज कल यही देख रहा हूँ। सन्त ने कहा—खूब प्रेम सद्-ग्रंथ में है। "चलनी में दूध दुहै करम का दोष" वाली दशा कर रहे हैं, फिर आपको यथार्थ बोध कैसे हो। पानी को नीचे चलाने की कोशिश नहीं करना पड़ता, ऊपर चढ़ाने ही में मशीन टंकी आदि की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य का अतःकरण अनादि से विषयासक्ति के तरफ चलित हो रहा है। विषय राग के पाठ पढ़ै सुनै तो मानो ऊँघने वाले को सेज मिल जाय। तो सोने की बहार हो गई। कुग्रंथ कुमित्र कुठौर के संसर्ग से भले २ मनुष्य बिगड़ गये हैं, इसलिये यदि आप भलाई चाहैं तो विषय प्रपंच जनित ग्रन्थों को छोड़ के यथार्थ सत्संग में मन दीजिये औरज्ञान वैराग्य भक्ति जनित ग्रंथों को पढ़िये साथ ही उस

पर गौरव कीजिए गौरव ही नहीं प्रत्युत उसी अनुसार धारणा बनाइये, बस आप कृतार्थ हो जाँयगे।

छन्द–नारि नर कोउ दीन चित, गृह जाल बस कोउ होय जू।
सद्ग्रंथ नित प्रति नेम से, पढ़ि भाव हितकर लेय जू॥
शुभ संस्कार बलिष्ट हो, शुभ आचरण सुख पोय जू।
पाठन पठन गायन करी, सत शब्द से भव खोय जू॥
सद्बुद्धि पुष्टी हो गई, जब पर्ख दृष्टी दृढ़ हुई।
तब ग्रंथ की बहु वाक्य की, सब सार मथित गति भई॥
तब अग्नि ज्वाला भस्म करि, पुनि शांत आवै सो ठई।
यहि भाँति पारख शान्त पद, विश्राम आपै में लई॥
सब शब्द को तूँ डाल दे, शब्दी पिछाने जीव रे।
सब चिन्तनों को डाल दे, चिन्तक स्व जानै शीव रे॥
लोह बेड़ी लोह छेनी, जानि अस उपयोग रे।
लक्ष लक्षी ध्यान दे, पारख स्वतः निःशोग रे॥

(नित्य पारायण-चिंतन पाठ के लिये)

[छात्र एंव समस्त मानव मात्र को एक पुनीत उद्देश्य कर्तव्य परायण प्रतिज्ञा एवं सद्भावना की निरन्तर स्मृति]

हम व्यवहार में सत्यत्व एवं अहिंसा का पालन करते रहेंगें वाणी में मधुर विनम्र यथार्थत्व रखते हुये; शांत पथ गहैगें वर्ताव में सरलत्व और धर्म नीति आचरते हुये जीवन यात्रा करेंगें विचार में पर-हित लक्ष्य के साथ स्वशांत पर ध्यान देते हुये

इन्द्रियों को संयम ग्रहण तथा कुसंग त्याग के गुरु जन संगानुरागी होते हुये बुद्धि में नित्य सत्य विवेक, रखते हुये हम संयम, त्याग, प्रेम, साधन, सदब्यवहार आदि सद्गुण सदा बढ़ाते रहेंगें। किन्तु प्रमाद को किंचित भी न आने देंगें। हम प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपद अपनी बुद्धि को, मन को आचार विचार को, उच्चस्तर पर चढ़ाते हुये अर्थात सर्व द्रष्टा साक्षी ज्ञाताध्याता अंतर्यामी शुद्ध चैतन्य स्वरूप-स्थिति ही एकरस दृढ़ रक्खेंगें, किन्तु कहीं कभी भी असावधानी और अभिमान नहीं लेवेंगें। क्यों कि पद पद पर संत सद्गुरु की प्रेरणा से और अखण्ड चैतन्य स्वरूप के विचार से ही समस्त सद्गुण हमें प्राप्त हुये होते रहेंगें। जो सद्गुण सद्भाव सदपुरुसार्थ तत्परता हमारे इह जन्म और अनन्त जन्मों के भारी दुख द्वन्दो को दमन करके सदैव के लिये अविचल विश्राम पारख धाम स्वयंनिराधार मोक्ष प्रदायक हैं॥

(शुभ मति हेतु-प्रार्थना)

शुभधी चेता हमे बनावो। गुरु पद पद्म के प्रेम बढ़ावो ॥टेक॥
जिस अनीत से सब भय पाई। उसे छोड़ हम नीति गहाई॥ १॥
हम न दुखावें हम न ठगावैं। अन्य साथ हम भी बर्तावैं॥ २॥
ऊँच नीच मध्यम के साथा। सबके धर्म हितैषीभाथा॥ ३॥
धर्म नीति मानवता ये ही। अपने पर की नीति है ये ही॥ ४॥
अपने लिये नीति जस चाहे। तैसे सबके हेतु निवाहे॥ ५॥
गुरुजन से यह विनय हमारी। हमे बनादो सतव्रत धारी॥ ६॥
और अहिंसक शुद्धाचारी। हो उत्साह सकल शुभधारी॥ ७॥
गुरु जन में नित प्रेम बढ़ाकर। हो निर्माण अभय पद पाकर॥ ८॥
जो विशाल पद सब हितकारी। मन वच कर्म प्रेम बलिहारी॥ ९॥

(गृहस्थाश्रम सुधार विचार प्रकरण)

प्रश्न— आश्रम केर सुधार विचारा । सुना चहौं अमृत बच सारा ॥
उत्तर— सुनि बोले गुरुवर हित बाता । जाहि सुने सबकर कुशलाता ॥

शान्ति शतक साखी—

धरम भक्ति सत्संग करि, धारण हो सद्बुद्धि ।
तेहि बिन होय न काज कोइ, जहाँ रहे तहँ रुद्धि ॥
साधु संग गुरु भक्ति करि, धर्म यथारथ जान ।
छूटै बन्धन जीव को, पाय स्ववश स्थान ॥

भवयान— भक्ति - भरण शब्द ८—

आये गुरुदेव सुभाग्य के करना ॥ टेक ॥

पूरा शब्द मनन कीजिये ।

अन्य प्रमाण—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानहुँ एक भक्ति कर नाता ॥
मम दर्शन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
साधु समाज न जाकर लेखा । राम भक्ति उर जासु न रेखा ॥
जाय जियत जग सो महि भारू । जननी यौवन विटप कुठारू ॥

(रामायण आरण्य काण्ड)

धन्य दास जो आयसु मानै । धनि स्वामी सेवा पहिचानै ॥
धन्य धाम जहँ अतिथि कि सेवा । धन्य शिष्य जानै गुरु देवा ॥
को वा श्रेष्ठ निरत हरि कर्मा । नीच कवन जो करै कुकर्मा ॥
जीव कुशल कैसे कहि जाई । जिमि खेती हरवाहै खाई ॥

(विश्राम सागर)

दोहा—इन्द्री मन मजदूर है, जीव किसान को जान।
जो कुछ इन्द्रिन ने कियो, भोग्यो सबै निदान॥
जो कुछ यासे धर्म हो, भक्ति ज्ञान वैराग।
सो जीवन हित जानिये, सो नहिं कीन्ह अभाग॥

देह दृश्य जड़ चार तत्वों से जीव के मनोमय सत्ता संयोग से निर्मित हुई है। अतएव उसमें दो चीजों की आवश्यकता है। देह का निर्वाह और जीव की दुखमय ग्रंथि छेदन का पुरुषार्थ। देह रक्षा के लिये भी आश्रमानुकूल श्रेणी शक्ति और योग्यता देखकर शुद्ध उचित पुरुषार्थ करते रहना, तदनन्तर देह निर्वाह के फल रूप में अज्ञानी भौतिक सुखों से तृप्तिमान के दौड़ता रहता किन्तु उन विषय सुखों से कभी किसी की तृष्णा पूर्ति नहीं होती, यह प्रत्यक्ष है कि जितना ही सुख भोगते हैं उतना ही कामी क्रोधी लोभी मोही आसक्ति के वश कैसी दशा होती है, मानो कातिक कुत्ते और दीप शिखा में जलती पाँखी, बंशी में उलझी मीन की दुर्दशा, इस प्रकार दुर्दशा जान समझ के सत्संगी भक्त सज्जन-जन केवल देह निर्वाह का व्यवहार धारण कर सुखासक्ति रूपी भवसागर से तरने हेतु गुरुपद जहाज पर बैठकर मन कर्म वाणी को निरन्तर स्ववश करके स्वरूप में शांत रहते हैं। इसी लक्ष्य से गुरु भक्ति का समस्त अंग धारण करना यही सबके लिये उत्तम कमाई है। आँख फोड़ के चश्मा की क्या कीमत। मूल वृक्ष उखाड़ के पत्ते सींचने से क्या? यदि मूल सत्य सिद्धान्त ही न समझा जाय तो जीवन से क्या लाभ?

दोहा— जो पद एकौ थीर नहिं, सो भये मानुष नाहिं।
समझहु बादर गगन के, उपजहिं तुरत बिलाहिं॥
(पञ्चग्रन्थी)

(मानव धर्म गृहस्थी सुधार)

❀ गीताञ्जली ❀

सो अब तो प्यारे काहे गयो अलसाय।
सो जागो प्यारे मानुष को तन पाय॥ टेक॥
दाम काम औ हर्जा खर्चा बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।
मदिरादि नशा औ चोरी हिंसा वही तुम्हें मन भाती है॥
अपने प्रति अन्याय किसी को किसी काल नहिं भाती है।
तब प्यारे दूसर प्रति कैसे छल बल क्रूर धराती है॥
सो मन बसि प्यारे कैसे गयो बौराय॥ १॥ सो०॥
अन्तिम मन के रोक थाम बिन दीप कीट जल जावोगे।
कर मीजो शिर पीट हृदय हा सबसे आप थुकावोगे॥
कौन कहेगा अच्छा तुमको सर्प श्वान सम धावोगे।
अब से सोचो लक्ष घुमा सतसंगत में फिर आवोगे॥
सो जल्दी प्यारे बिगड़ी सुधारो धाय॥ २॥ सो०॥
सत्य क्षमा निष्काम गहौ औ निरछल औ निर्मान रहो।
नित्य हितैषी बनो मोह तजि सद्विवेक सुख खानि गहो॥
शील पवित्राचार सु निर्णय गुरु भक्ती पुनि दान करो।
संत विशाल विशाल सन्देशा पीयुष पी विश्राम धरो॥
सो अब तो प्यारे निज बल लेउ सदाय॥ ३॥ सो०॥

[सुधार] कल्याण पथ पर चलने के लिये दस दोष त्यागना चाहिये, और दस महा सद्गुरु ग्रहण करना चाहिये।

दोहा–चोरी हिंसा पर त्रिया, निन्दा मिथ्या गालि।
क्रोध इर्षा मान छल, तन बच मन से टालि ॥

१ चोरी २ जीव घात ३ पराई नारी, स्व स्त्री में आसक्ति ये काया के दोष। १ निन्दा २ मिथ्या भाषण ३ गाली ये तीन वचनके दोष। १ क्रोध २ इर्षा ३ मद ४ कपट ये मन के दोष ये दश दोष त्यागना।

दोहा–स्नान दान शुभ जीविका, शिक्षा सत्य सुभाख।
शौरज न्याय प्रीति दया, तन बच मन में राख ॥

१ शरीर की पवित्रता, २ दान, ३ न्यायोक्त जीविका। १ सत्य, २ शील, ३ निर्णय। १ वीर भाव, २ सत्य न्याय, ३ प्रेम, ४ दया ये दश गुण तन मन वचन में रखना परम धर्म है।

परबश होते हुये भी सन्मार्ग में चलना चाहिये

❀ नारी शिक्षा ❀

दृष्टांत—एक मन्दालसा नामक समझदार कन्या थी, उसके पिता विवाह करने के लिये राजकुँवर ढूँढ़ने लगा। मन्दालसा बोली, पिता जी! तीन वचन जो मुझे दे, वह मेरा ब्याह करै। एक तो जो अतिथि हमारे द्वार पर आवे, उसको मैं यथायोग्य तृप्त कर सकूँ वह विमुख न जावै। दूसरी बात हमारे रहते हुये वह पुरुष दूसरी स्त्री न करै अर्थात् एक व्रती रहे। तीसरी बात

जो पुत्र हमारे हो उनको मैं ही खेलाऊँ और शिक्षा दूँ। इन तीनों वचनों को पूरा करने के लिये और तो कोई न निकला परन्तु रतिध्वज नामक राजा ने तीनों वचन देकर उसको व्याह लाये। कुछ काल के बाद मन्दालसा के पुत्र हुआ, चेरी या बाँदी किसी को न देकर उस पुत्र को स्वयं मन्दालसा पालै पोसै। जब लड़का समझने योग्य हुआ तो वह ज्ञान देना आरम्भ कर दी। प्रमाण है कि कोमल अतःकरण जिधर को झुकावो झुक जाता है, इसी अनुसार ज्ञान के तरफ बालक को झुकाने लगी। वह बोली, हे पुत्र! जो शुद्ध है, शांत है, देहेन्द्रिय मनसा से पार है, पञ्च विषय रूप प्रकृति माया से वर्जित स्वयं प्रकाश साक्षात है, उसी को तू भजन पूजन कर। संसार का सब सुख ऐश्वर्य स्वप्न के समान क्षण एक देखने मात्र है, इसको स्ववस सत्य मानना ही मोह है। इस अज्ञान वृत्ति से जगाकर तू जरा मृत्यु व्याधि रहित स्वरूप में ठहर। सब योनियों से उत्तम मनुष्य शरीर को पाकर जो अक्षय पद को न प्राप्त किया, भौतिक क्षणिक भोग में ही रचा पचा किया, उसका जीवन पशु जीवन है। इस देह से यथार्थ ज्ञान वैराग्य भक्ति शुभाचरण बनाना चाहिये। पण्डित पुत्र, आज्ञावर्ती नारी अनुकूल धन हितकर माता पिता, दास दासी ये सब इन्द्रिय सुख के लिये निज निज तरफ घसीटने वाले स्वार्थ परायण हैं, कुछ इनसे सुख भी मिले तो ये बीच ही में मिलते, बीच ही में छूट जाते हैं, तृष्णा रूपी जलन बढ़ाते हैं, इसलिये सबकी आशा त्याग कर अंजुली से जल टपकने के समान तेरी

आयू विच्छिन्न हो रही है। बाल वृद्ध जवानी में ही मृत्यु हो यह नियम नहीं है, जब ही पूर्व वेग समाप्त हो जाय तबही मृत्यु, इसलिये अभी से ही करने योग्य कार्य को कर डालो, जिससे मरकर पछतावा न हो इत्यादि ज्ञान देकर उसे परमार्थ साधन में लगाकर जंगल में भेज दी। इसी तरह छः बालकों को ज्ञान दान देकर संसार चक्कर से पृथक कर दी। सातवाँ पुत्र होने पर राजा (रतिध्वज) बोले, कि हमारे पीछे राज्य कौन करेगा ? अब तू इसे ज्ञान न दे। राजा के लिहाज से इस सातवें पुत्र को ज्ञान तो नहीं दिया, पर उसे यह चिन्ता सवार रही कि यह पुत्र परमार्थ साधन न करने से जन्म मरण रूप नरक बास में आगे पड़ेगा। इसलिये एक यन्त्र लिखकर पुत्र के भुजा में बाँध दी और कह दी कि हे पुत्र! जब तुझे कष्ट हो तो खोलकर यह यन्त्र देख लेना। लिखे अनुसार कार्य करना, बस तुम्हारा कैसा भी संकट क्यों न हो दूर हो जायगा। कुछ काल में माता पिता मर गये, लड़का राज्य करने लगा, उसी समय बन में गये अन्य भाई आकर अपने भाई को समझाने लगे। राज्य में दोष बतलाया, उनका भाव वैराग्य पथ में करने का था। राजाने जाना ये लोभ के कारण से ऐसा कह रहे हैं, उन भाइयों को खेदा दिया। इसी सिलसिले में कुछ दिन बाद काशी राजा इसके ऊपर चढ़ आया, यह हार खाकर जंगल भाग गया, जंगल में माता का बचन उसे याद आया, वह भुज यन्त्र खोल के देखा तो यह लिखा पाया-

दोहा—जगत जाल में मति परो, केवल दुख यहि माहिं।

सत्य कहूँ सति सत्य कहूँ, सुत सुख सपनेहुँ नाहिं ॥

हे पुत्र ! इन्द्रियों के सुखार्थ जगत चक्कर में मत पड़ो, मुझसे तो पूर्ण वैराग्य-ब्रह्मचर्य नहीं धारण हुवा, फिर भी गुरु जनो की सेवा सत्संग से कुछ परमार्थ तट देखती हूँ निश्चय ही मैं भी कुछ शुद्ध संस्कार पुष्ट कर चली हूँ। पर हे मेरे प्यारे तुम अधूरा न बनना, जगत में सुख नहीं है। केवल दुख ही है, मैं सत्य त्रिवाक्य से कहती हूँ कि इस विश्व में सुख स्वप्न में भी नहीं है। रमैया राम स्थिति से जो परे हैं, उनकी संगति मत करो, साधन धाम साधु जन का संसर्ग हीं सद्‌गुण और नित्य बोध देने वाला है। इत्यादि बातें देखकर उसे अप्राप्त राज्य का दुख मिट गया, वह श्रेष्ठ सन्तों को ढूँढ़कर विवेक निष्ठा में आरूढ़ होकर कृतार्थ हो गया। इस दृष्टान्त से यह विचार करना है कि सब संसार असार है तीनों काल में स्ववश रहित विजाति जड़ विषयों को शीघ्र त्याग कर स्वतन्त्र अपरोक्ष स्वरूप में ठहर जावै। स्त्रियों को मंदालसा के समान अपने पुत्र पुत्रियों को परिणाम में उनको अखण्ड शान्ति मिलै वही शिक्षा देना चाहिये और शक्ति भर परमार्थ में लगना चाहिये।

जो नर नारी वर्ग शीघ्र परमार्थ सिद्ध कर मोक्ष होना चाहते हैं वे शीघ्र ही काम क्रोध इर्षा जड़ पदार्थों का अहंकार सुखा-शक्ति औ बाह्य प्रवृत्ति प्रपंच को त्यागते हुये अन्तर में शान्त भाव प्राप्त करें। प्रारब्ध रूप शरीर को धर्म नीति संयम से समाप्त करें।

❁ नारी सुधार-गीताञ्जली ❁

ऐ श्री मती, देखो अपनी गति,
शुद्ध चालों की शोभा बढ़ाया करो ॥ टेक

आज स्त्रियों के चरित्र का सुन्दर कथन किया जाता ।
सुनो प्रेम से माता बहिनो शुभ गुण वस्त्र सजा जाता ॥
कपड़े गहने चमड़ी सुन्दर सुन्दरता न कहायेगी ।
बिना आचरण शुद्धि रु सेवा तुमको येहि रुलायेगी ॥

ऐ श्री मती, अपनि मत कर क्षती,
सत्संग कि गंगा नहाया करो ॥ १ ॥ शु०

फूहर औ कंटाइनि के जो औ कुशील के अवगुन हैं ।
जिसे लोग सुनकर थू करते तज देना वह दुर्गुन हैं ॥
मात पिता पति जो कि बड़े हों उन सेवा सादर करना ।
छोटों और बराबर में भी समता शील सदा करना ॥

ऐ श्री मती, समझो क्या कीमती,
श्रद्धा भक्ती कीं माला रचाया करो ॥ २ ॥ शु०

मीन मांस अण्डा औ मदिरा चोरी औ ब्यभिचार मदन ।
छोड़ दो इन सबको दिल से लो शुद्धाचार विचार ग्रहन ॥
जल छानो अन्न देख भाल के भोजन में सात्विका गहना ।
हित सम्मत वाणी भी हितकर गुणग्राही हिल मिल रहना ॥

ऐ श्री मती, हो जा साँची व्रती,
अपनो कुमती में आग लगाया करो ॥ ३ ॥ शु०

आलस्य क्या है रोग बुलाना क्रोध महा दिल ज्वाला है।
निन्दा ईर्षा बैर मूल है हन्ता बहुत ये काला है॥
पुत्र अपुत्र अधन धन जो कुछ कर्मों का फल भोग मिलै।
मत खोजो रोवो झंखो क्यों ? गुरू ज्ञान से दुक्ख टलै॥
ऐ श्री मती, रख लो धीरज पती,
प्रभु के ध्यानों से दुख दुराया करो॥ ४॥ गु०
लड़ो न झगड़ो मार न ताना धीर वीर गम्भीर बनो।
दुख सुख आयें जायेंगे पर इसके मत तुम कीट बनो॥
गृह आश्रम का धर्म यही है सेवा भक्ति सब धर्म रखो।
मोक्ष हेतु जो भाव जगा दो तब तो नर तन सफल लखो॥
ऐ श्री मती, दिल को कर लो तपी,
चेतन जड़ से परे ऐसा ध्याया करो॥ ५॥ गु०
हृदय बीच इक सत्य जीव है इसका तेज समझ लेना।
देवी देव औ भूत भवानी सकल कल्पना तज देना॥
जड़ चेतन गुण धर्म अनादी लक्षण शक्ति भि लख लेना।
निःसंदेह अभय अविचल हो जीवन सफल सुधर लेना॥
ऐ श्री मती, हो जा सत्मग पथी,
सद्ज्ञान की शक्ती बढ़ाया करो॥ ६॥ गु०
अन्तिम कोई संग न जा बस संस्कार भरमायेगा।
राजा छोड़ चला निज मन्दिर साथ न कोई जायेगा॥
देह गेह सपना के साथी जाग स्वतः पद पायेगा।
राजस त्रिषय सुख छोड़ भली विधि शांत स्वबल घर भायेगा॥

ऐ श्री मती, क्रोध ना लो रती,
ऐसी न्यारी छवी में समाया करो ॥ ७ ॥ शु०

काम क्रोध मद लोभ तीन ये बड़े कुमंत्री नाशक है।
उन्हें करो स्वाधीन यथा नदियों में नौका चालक है॥
होउ सुभद्रा सत्संग प्रेमी कुसंग से दूर रहा करना।
वर विशाल सन्देश पत्रिका प्रेम इसे चित्त बिच रखना॥

ऐ श्री मती, गावो इसकी प्रती,
अपने पारख स्वदेश समाया करो ॥ ८ ॥ शु०

आश्रम में रहते हुये भी अधिक ममता त्याग ही कल्याण मार्ग है

दृष्टान्त—एक लाला जी की स्त्री मर गई थी विशेष मोह वश लाला जी उसको स्मशान भूमि पर जाय नित्य प्रति २-४ घण्टे रो आते थे, एक दिन लाला जी रो रोकर सुसुक २ हाय हाय कर रहे थे, इतने में एक महात्मा आ निकले महात्मा बोल उठे— आप यहाँ क्यों बैठे हैं? मनुष्य— कोई बात नहीं महाराज! महात्मा— महात्मा-अवश्य कोई बात है! मनुष्य— हाँ भगवन! मेरी प्रेमिका सुभगी-सुलक्षणिका पत्नी चल बसी, उसी के स्मशान में बैठे नित्य दो चार घण्टे रो लेता हूँ, फिर थक के चल जाता हूँ। महात्मा— कुछ हाथ में वो आती है? मनुष्य— नहीं नहीं सन्त राज कुछ एक अंग भी नहीं। महात्मा— फिर जो फल किसी प्रकार गिर के हाथ ही न लगे आगे न

लगने की सम्भावना ही हो ऐसे अघटित कार्य के लिये रो रोके कोई बाल हठ बाँधे तो उसे आप क्या कहोगे ? मनुष्य- पागल या बाल या सन्निपाती या मूढ़ ! सन्त—तो अब आप क्या ठहरे ! मनुष्य—ऐ मेरे नेत्र खोलने वाले प्यारे सन्त मैं महा मूढ़ पशु वाला ठहर गया इस क्षण मेरा मोह बोझ गिर गया। मैं हल्का हुवा किन्तु पूर्व स्मृति होते ही फिर मैं चिन्तित हो जाऊँगा। महात्मा ने कहा चलो उठो—दोनों चल के वहाँ जाते हैं जहाँ सैकड़ों हिन्दू जलाये गये थे और दूसरी तरफ हजारों मुसलमाँ गाड़े गये थे। संत बोले—देखो कौन यहाँ किसके लिये बैठ के रोता है। अहो भाई सब प्राणी कोई किसी का नहीं मन सुख स्वार्थ में फँसे आसक्त नर नारी जब जीवित ही में एक दूसरे से मोह हटा कर कहीं तीसरे चौथे के लिये वलि बलि होते रहते हैं तो मरे पर कौन किसे पूछता है। यह तो तुम्हारे मोह अज्ञान सुखाध्यास का दुख है और दुख तुम्हारे लिये है ही नहीं। तुम्हारी अहं मान्यता ही तुम्हें दुसह दुख रूपी कोल्हू में पेरती है। तुम प्रथम जड़ देह को पृथक जान लो बस समस्त मोह दूर चूर हो जायेगा। इसके लिये अन्य सत्यन्याय के या इसी ग्रंथ का पूर्ण सनेम नित्य अध्ययन मनन करो। मनुष्य ने ऐसा ही किया थोड़े ही दिनों में वही ज्ञानी ध्यानी तपसी तपी होकर मुक्त हो रहा।

दोहा—जो मानुष गृहि धर्म युत, राखै शील विचार।
गुरु मुख वाणी साधु संग, मन बच सेवा सार॥

[गुरु बोध पंचग्रन्थ]

जितना हो धन पास तुम्हारे, उतना ही कार बनाना चाहिये ।
संतों के विवेक विचार का, कछु परन बनाना चाहिये ॥

शब्द

गृह आश्रम में हो सुधार । ऐसे कर लो विचार ।।टेक।।
आय से अधिक करो यदि व्यय को, कहँ से मिले अधार ।
ताते अमल नशा तजि फैसन, औरहुँ व्यसन विकार ॥१॥
जामे कुटुम्ब निबाह होय अरु, संतगुरू सत्कार ।
दया धरम सधि जाय जहाँ तक, जीव दया उपकार ॥२॥
छाजन भोजन मैथुन भय अरु, निद्रा मोह सुधार ।
विना सुधारे मनुष न होइहौ, शूकर श्वान बिलार ॥३॥
गुरुपद श्रद्धा सेवा करि करि, परखहु सार असार ।
भूत प्रेत देवादि मनन्दी, कल्पत जीव अधार ॥४॥
जड़ चेतन सम्बन्ध अनादी, समुझि कल्पना टार ।
ईश खुदा औ राम घटहि में, निज ही में तत्सार ॥५॥
सोइ कबीर गुरु सकल विवेकी, पारख प्रेम प्रचार ।
संत विशाल विचार कहत सोइ, ग्रहत होय भवपार ॥६॥

गुरुदेव पूछते हैं— हे प्रिये हमारी शिक्षा से आप को क्या ज्ञान हुवा ! सेवक हाथ जोड़ कर बोला— प्रभो ! धर्मानुसार-परिश्रम करते हुये न्यायोपरजित धन अन्न कमाना चाहिये ! तिसमें चार विभाग करना १— निर्वाह, आश्रित की रक्षा, अर्थात् कुटुम्ब पालन, २— मर्यादा रक्षण, अर्थात् नातेदारों का सन्मान पुत्र-पुत्री विवाह उत्सवादि ३—कुछ आवश्कीय व्यापारादि हेतु धन

संग्रह ४--धर्म भक्ति परमार्थ पालन हेतु संतगुरु सज्जनों की सेवा हेतु अन्न धन को उदारता से खर्च स्त्री में भी पराई स्त्री का आकर्षण त्याग कर अपनी मानी हुई में भी विशेष रति त्याग कर मात्र संतानोत्पत्ति हेतु दंपति व्यवहार लेकर काम क्रोध वेग को सर्वथा जीतने का नर नारी दोनों को प्रयत्न करते २ पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत ले लेना मानुष जीवन को सार्थक कर लेना है। और भी सर्व षटकर्म सुधार के पूर्ण मानुष बनना ही आप के उपदेश का सार मैंने ग्रहण किया है। अब इस प्रसंग को मैं बारम्बार स्मरण करता रहूँगा— जिससे धारणा पुष्ट होकर मैं दुखों से मुक्त होऊँ। हे गुरुदेव आप में मेरी श्रद्धा भक्ति दिनों दिन बढ़ती जावै॥ एक कल्याण इच्छु साधन विचार प्राप्त करने की लालयिता-कल्याणी नारी ने कर बद्ध शिर झुकाय गुरुदेव से बोली हे गुरुदेव बहुत कुछ आप हम सबों के ऊपर कृपामृत की वर्षा किये हैं। अवश्य मैं चिंतन अध्ययन करके कल्याण साधन में तत्पर रहूँगी। जय जय जय सद्गुरु देव की॥

मानव मात्र के लिये अधिकार और कर्तव्य वर्णन

[इच्छाग्नि से जलता हुवा दुखों का मारा मनुष्य अन्ध सरीखा भोग भट्ठी ही में गिरते जा रहा है]

दृष्टान्त— एक बड़ी बारात एक पीपल के नीचे टिकी थी, तम्बू के अन्दर बाहर सैकड़ों मनुष्य वार्तालाप कर रहे थे। बहुत नाच तमाशा देख रहे थे कि इतने में अचानक आफत आ गई।

उस पीपल के ऊपरी शाखा में, सारंग बड़ी जाति की मधु मक्खियाँ शहद लगाई थी। वह शहद का छाता बहुत बड़ा था, लाखों मक्खियाँ उसमें शहद लगा रहीं थी, उसी समय एक समाख जाति का बाज, जो कि शहद खाने की इच्छा से उस शहद के छाते में उड़ते उड़ते ज्यों ही झपाटे से चोंच मारा त्यों हीं सब मधु मक्खियाँ क्रोध में होकर कुछ तो बाज को लिपट गईं वह बाज घायल कायल होते भागते गया, और बहुत सी मक्खियाँ उस बारात के मनुष्यों को लगीं काटने। घोड़े हाथी बैलादि सब पशुओं को चिपट गईं सब पशु तड़फने चिल्लाने लगे, मनुष्य बेचारे सब जान ले लेकर भागने लगे, कोई तो जल में कूदा कुछ ऊखों में घुस गये, कोई कहीं के कहीं भागने लगे। बहुत से तो वहाँ के वहाँ छाता के नीचे तड़फ के गिरने लगे, सब मनुष्यों की यही इच्छा थी कि इस उपद्रव का निवारण कैसे हो। बस यही बात यहाँ घटाइये—वह बरात सारे संसार के चेतन प्राणी हैं वे अनन्त कालसे जड़ तत्वों के सम्बन्ध में बासना बस भ्रमते टिकते चले आये हैं। अपनी भूल से जीव ने जड़ इन्द्रियों को सत्ता देकर पाँचों विषयों को भोग लिये हैं, इसी कारण ये राग द्वेष विषय कामना रूप मधु मक्खियाँ काट रही हैं, तिसी इच्छा दुख से सन्तप्त मनुष्य दौड़ दौड़ के जगत के सब वही वही विद्या चतुराई कला कौशल वैभव विषय भोग ग्रहण करता है, जिससे उसकी इच्छायें बढ़ती जारही हैं।

१—खुद अपना सबका जानने वाला है, अपने को भूलकर

विजातीय समग्र जड़ पदार्थों और कल्पित विद्यावों को जानने की कोशिश करता है, विजातीय के सम्बन्ध से अपनी श्रेष्ठता लेना चाहता है यह अनहोनी है।

२—अपना अविनाशी सदा रहनहार है अपने को भूलि के नश्वर परिणामी देह और देह सम्बन्धी जड़ पदार्थों को सदा रखने की कोशिश करता है, यह भी अनहोनी है।

३—अपना सर्व इच्छाओं का द्रष्टा एक रस अचल दुख रहित है सो अपनी अचलता को भूलकर भोगों से सुख मान सुख इच्छावों को भोगों से बुझाना चाहता है। जिन भोगों से इच्छायें हुई उन्हीं से मिटाना चाहता है यह भी अनहोनी है।

४—अपना स्वरूप को कारण कार्य रहित अखण्ड स्वतन्त्र अपरोक्ष है। सो अपने को भूलकर सबको जबर्दस्ती स्ववश करके अपना मान स्वतन्त्रता-स्ववशता चाहता है अपने स्वरूप से पृथक जड़ वस्तुओं को या भोगासक्त चेतन प्राणियों को स्ववश रखके स्वतन्त्र होना चाहता है यह भी अनहोनी है। सबका तात्पर्य यह हुआ कि अपना शुद्ध स्वरूप ही अजर-अमर नित्य स्थिर अचल चैतन्य स्वरूप है सो अपना स्वरूप ही मुक्तरूप है। मात्र भूल भ्रम आसक्ति से मुक्त को जो अमुक्त निश्चय कर अध्यासों में वह रहा है उसी को छुड़ाना है अधिकारियों की मुक्ति अवश्य होती है। मोक्ष होने में कई कारण हैं।

१—सुखमाने हुये पदार्थों से दुख हुआ करना।

२—दुख का सहन न होना।

३—विषयों से इच्छाओं की पूर्ति न देखना।

४—भोगों के छोड़ देने से इच्छायें निर्मूल होने की दिव्य दृष्टि होना।

५—सद्गुरु संत सज्जनों का संग मिलते रहना।

६— पूर्व जन्मों के शुद्ध संस्कार सहायक होना।

७—अनेक युक्ति प्रयुक्ति बुद्धि पुरुषार्थ साधन घटाने बढ़ाने की मनुष्यों में सामर्थ होने के कारण युक्ति से परमार्थ निश्चय और पुरुषार्थ तथा रक्षकों का सम्बन्ध लेते चलना।

८—अपनी भूल कसरैं परीक्षा में आ जाना और उनके लिये पछतावा पुरुषार्थ बारम्बार उपरामता।

९— किसी प्रकार लत आदत के छोड़ाने में देर लगते हुये भी धीरता सहित पुरुषार्थ को न त्यागना तथा दिनो दिन पुरुषार्थ की बढ़ती।

१०—सबसे सजगता और एक रस परीक्षा की पुष्टि करना इत्यादि कारणों से जिज्ञासु जनों की मुक्ति अवश्य हुई व होरही है व होगी, इस प्रकार भ्रम भूल विपरीत निश्चय तथा बाधक सम्बन्ध बाधक क्रिया का जब यथार्थ दृष्टि से त्याग हो और साधक अंगों का क्रमशः ग्रहण हो तब चाहनावों को समूल से उखाड़ने की अमित शक्ति आ जाती है फिर तो जीव सदा के लिये शोक मोह रहित होकर मुक्त हो जाता है—इसलिये हम लोगों को पूर्वोक्त विचार कर साधन पथ में जोर लगाकर कल्याण करना चाहिये।

[गुरुपद की ओर निजी मस्ती-भजन]

गुरु के भजन में हुये मस्त हम, दुनिया दारी क्या जाने ।
ज्ञान के मारग लगे हुये हम, दुनिया दारी क्या जाने ।।टेक
मुझे प्रपंच न भाता है, सदा एकान्त सुहाता है ।
सतसंगत से बोध लिये हम, अज्ञानी जन क्या जाने ।।१।।
जड़ चेतन की बात निराली, अनुभव गम्य विवेक से ढालो ।
ज्ञाता ज्ञेय ये भिन्न लखे हम, अविवेकी जन क्या जाने ।।२।।
चेतन राम रमा घट मन्दिर, सेवा पूजा दर्श रहे ।
भूल भटक सब छोड़ रहे हम, अन प्रेमी जन क्या जाने ।।३।।
राग रंग विष भोग तजे हम, परम विराग में प्रेम किये ।
साधन फल अब स्ववश रहे हम, विद्वेषी जन क्या जाने ।।४।।

प्रबंध— परम विराग मूर्ति महात्मा विशाल देव का कथन आज सच्चिरत्र निर्माण विषयक हो रहा है उसे आप १९ विभागों में बाँट कर उनके लक्षणों को पृथक पृथक वर्णन कर रहे हैं—

जैसे मनु जी १०— धर्मांग मानव मात्र के हितार्थ वर्णन किये हैं उसी प्रकार सर्व जन हिताय— १९ धर्मांग का परिचय दिया जा रहा है, मनु जी का निम्न वचन देखिये ।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धी विद्या-सत्यम् क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।

अर्थ--धैर्य, क्षमा, मनोदम, अस्तेय, चोरी परित्याग, पवित्राचार, इन्द्रिय जीतना, धी, सदबुद्धि बढ़ाना, विद्या-सद्बोध, प्रकाश लेना, सत्य और क्रोध विहीनता,

इस प्रकार महात्मा श्री सद्गुरु विशालदेव का निम्न कथन है–

साखी— हानि न होवै आपनी, गुरु भक्ती वैराग।
दया क्षमा संतोष सत, लहि विवेक हित जाग॥
धीर बीरता शील को, साथी राखि हमेश।
करै काज निज जीव को, संशय बचै न शेष॥
सब जीवन के घेर में, सब देहन के बीच।
अमित काल भरमत रहे, बिन विचार जग कीच॥
अमान अकाम अक्रोध जहँ, तहँ सबही सुख साज।
जहाँ न ये बासा करैं, तहाँ सदा दुख राज॥
लोभ रहित औ मोह तजि, अभय गहै जो कोय।
दलि आसक्ति विवेक निज, निश दिन जागृत सोय॥
खुशी प्रतिष्ठा की तजै, तजै ताहि अभिमान।
सो नहिं भूलै माहि में, जो फन्दा पहिचान॥

अर्थ— १— गुरु भक्त २— वैराग ३— दया ४— क्षमा ५— सन्तोष ६— सत्य, विवेक ८— धैर्य ९— बीर १०— शील ११— विचार १२— अमान १३— निष्काम १४— निष्क्रोध १५— निर्लोभ १६— निर्मोह १७— निर्भय १८— निज विवेकयुक्त आसक्तियों का दमन १९— प्रतिष्ठा का हर्ष और मान का छेदन।

इन १९— चरित्रों का धारण कर्त्ता कभी संसार में भूल भटक नहीं सकता, ये इतने आवश्यक एवं आदर्श हैं कि इनका आचरण कर्त्ता निष्प्रपंच निर्विकार स्थित हो जाता है।

संक्षिप्त परिचय हेत कुछ लक्षणों का विधान कर देना उचित समझता हूँ अपनी हानि किसी को इष्ट नहीं हानि त्रुटि, कमी, अभाव, दुख, ताप, उद्विग्न, अतृप्ति, प्रतिकूल प्रतिद्वन्द बन्धन ये सब भिन्न-भिन्न शब्द होने पर भी यहाँ पर एक ही हानि लक्ष्य का दर्शन कराया गया है।

कैसे अपनी हानि न हो, इस प्रश्न के जिज्ञासा की पूर्ति हित इन १९- लक्षणों को आचरण में लाने का निरन्तर प्रयत्न करना, पूर्ण होने पर इन्हीं में स्वभावतः जीवन पूर्ण कर देना ही जीवन्मुक्ति स्थिति मानव धर्म का मुख्य कर्तव्य, बताया है ॥ जैसे श्री राम जी को वशिष्ठ जी ने मुख्य मुक्ति के चार द्वार पालों को अनिवार्य ग्रहण करने को निदेश किये हैं। वे चार द्वारपाल सुनिये १ सन्तोषः परमो लाभः - २-सत्संगः परमं धनम्। ३-विचारः परमं ज्ञानं -४ शमश्च परमं सुखम् ॥

दोहा—परम लाभ सन्तोष है, परमो धन सत्संग।
परमो ज्ञान विचार है, समता से दुख भंग ॥

सद्गुरु कबीर साहेब-साधु रहस्य का विधान इसलिये कर रहे हैं कि—

साखी-झूठ झूठा कै डारहु, मिथ्या यह संसार।
तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार ॥बीजक

मिथ्या को मिथ्या समझ के तदासक्ति परित्याग ही जीव के उद्धार का एक मात्र उपाय है।

गुरु कबीर देव हंस के-

दया क्षमा सतधीर विचारा। पाँच तत्त्व हंसा के सारा॥

इसी पाँचों की पच्चीस प्रकृतियाँ शुभ गुणों द्वारा बताया हंस देह पारख युक्त ग्रहण करने को बताये हैं। आपने कहा—

सबते साँचा भला, जो साँचा दिल होय।

साँच बिना सुख नाहिना, कोटि करै जो कोय॥बीजक

सत्य का बोध, सत्य का आचरण ही जीवों के समस्त दुख दमन का उपाय गुरुवर कबीर देव द्वारा वर्णन हुआ है। उसे विशेष बीजक त्रिज्या द्वारा मनन कीजिये। यहाँ पर इस समय १९ लक्षणों का इस लक्ष्य से विरूपण किया जा रहा है। हानि न होवे अपनी जब स्वयं हानि से दूर रहेगा, तब साथ ही 'सर्व जन हिताय' भी उससे सहज आचरण होना निश्चित सिद्धान्त है। पूर्व लक्षण विधान तो यह सद्‌गुण शतक सर्वांग मूल अर्थ विवेचन सहित ही शिक्षक को शिक्षा में लाकर पूर्ण निरूपण करना चाहिये। दैवी सम्पत्ति का सार धर्मों का प्राण, हंस गुण मानव सम्पत्ति संत चरित्रों का जो कोई प्रकार से कथन हुआ है वह बहु खाद्य पदार्थ व्यञ्जन के समान सर्व शक्तिदायी विचार ग्रहण करना कर्तव्य है। यहाँ संक्षिप्त परिचय का भाव है। अर्थ-लक्ष ग्रहण में कुछ सहकार सुविधा सुलभ हो और परम शान्ति स्थिति की कुंजी प्राप्त हो। क्यों कि 'शांत तुल्यं तपो नास्ति' शान्ति के समान तप नहीं है।

शांत उद्देश्य पूर्ति हित इन इन शुभलक्षणों को लाना सभी जन समाज का मुख्य ध्येय होना चाहिये।

(१) प्रथम— गुरु भक्ति-ग्रहण से मन रोग नष्ट होकर मुक्ति प्राप्ति साध्य महत्फल है।

साधन—गुरु मनसाय पालन-निज मन मारन कहा गया है।

गुरु भक्ति—गुरु की उपासना तन-मन-वचन-धन दे करके गुरु की सेवा करना-तन की हर प्रकार से सेवा मन से गुरु उपदेश का मनन और स्वरूप स्मरण वचन द्वारा सबसे नम्र-और गुरु गुरु यश रहस्य पद सिद्धान्त चलते फिरते, खाते,पीते, उटते, बैठते, सोते, जागते, हर समय हर हालत में गुरु उपकार स्मृति न छोड़े धन से शक्ति देख देख कर समय समय पर खर्च करके सेवा करे।

पद—

भोग मिलेगा जग प्राणी से, पर सत्य मोक्ष को देने वाले।
केवल गुरु बोधक साहेब हैं, जो भूल शूल को छेने वाले॥
ऐ नर जीवों इसी हेतु से, गुरुवर भक्ती तुम कर लेना।
इस अमूल्य मानव जीवन को, जीवन सफल बना लेना॥

(२) वैराग ग्रहण में—सर्व कामना परित्याग आसक्ति रहित सत्य स्थिति साध्य है।

साधन— पंच भोगासक्ति दमन, जग से मृतकत्व। सत्साधन संयमादि ग्रहण कहा गया है।

वैराग तो मुक्त पुरुष या वैराग्यवान साधु गुरु अथवा मुमुक्षु भक्त जन सबके लिये मुख्य अविनाशी सम्पति है।

पद—विषयों का सुख परवश है, क्षणिक और एंचा खैंची में।
वैराग्यका सुख निर्भय है, स्ववश अचिंत नहीं दिल कैंची में॥

पर हाँ मिलेगा उसी नर को, जो जग सुख से मर जायेगा।
सत्सङ्ग सुसाधन करते करते, तब यकरस ये हो पायेगा ॥

(३) दया ग्रहण में– अंतकरण शुद्ध होना महान साध्य फल प्राप्त होता है।

साधन– मातावत लक्ष बनाना कहा गया है। दया से किसी देह धारी जीव छोटे बड़े प्राणियों को हाथ दाँत लाटी शस्त्र झाड़ू बहारू अक्षनियाँ करने आदि में बचा कर अनहित तो क्या ? बल्कि निरन्तर तिनकी भलाई का ही लक्ष आ जाता है।

पद– दया कि बात निराली है, प्यारे मानो माता बालक से।
कभी न अनहित करती शिशु का सदा रक्षती पालक से ॥
जीव मनोवस बालक वत है उनको आप निभा लेना।
कुछ भी बनते बड़े आप हैं तो दया की वृष्टि बर्षा देना ॥

(४) क्षमा धारण करने का फल– राग दोष अग्नि से छुटकारा मिल जाना साध्य है। साधन–मन वच कर्म से साहिष्णु-दुख न देने का भाव दृढ़ करना चाहिये।

क्षमा से तो कटुक वाद सहन होता ही है, बल्कि कोई तलवार लेकर शिर काटने आवै तो भी उसको कष्ट देने की गन्ध तक नहीं आती।

पद– लो क्षमा की बारी आई है, आजा ! मेरी रक्षक तूँ।
जीतना जग की ओर सहे, उतना कहाँ इधर सुनु शिक्षक तूँ ॥
क्या मेरा है क्या तेरा है क्या किसने हानि किया मेरा।
जब मेरा मन स्ववश हुवा तब तामस का उठ गया डेरा ॥

(५) सन्तोष ग्रहण हो जाय तो उसका साध्य- फल मिलेगा दरिद्र-अपूर्ति, अतृप्ति का निरन्तर अभाव साधन है, सर्व द्रव्य का परित्याग आवश्यक प्रारब्ध भोगों में भी अल्प मात्रा में पूर्ण वासना खिंचाव नष्ट कर देना सन्तोष तो सारी आशा तृष्णाओं का प्रयोजन ही नहीं रखता।

पद--जिससे ललकूं हियसे चिपकूं, हाँ स्वागत तेरी तोष सुधा।
खून पियासी तृष्णा मेरी हाँ उसकी दे तूं भूंख बुझा ॥
चेतन मात्र अखण्ड तृप्त नित क्या मन भूख बुझायेगी।
सर्व कामना त्याग करत ही बस शान्ति २ रह जायेगी ॥

(६) सत्य धारण करके-अनादि नित्य अविचल स्थिति प्राप्ति होना, साध्य फल मिलता है।

साधन- सत्प्रिय वचन-सत्य रहस्य, सत्य चेतन, स्वबोध का एक रस ग्रहण निर्देश किया गया है। सत्य तो सदा एक रस स्थिति है, और अन्दर बाहर मन कर्म वाणी में भी यथार्थ स्वरूप सत्य है।

सत्यहि को जानना, सत्यहि को मानना,
सत्यहि बखानना, सत्य वादि कहिये ॥

पद- पंच विषय नहिं कुछ भी जानै, मैं तो सबका ज्ञाता हूँ।
कारण कारज इन्द्रिय गोचर जो इनसे पृथक सु ध्याता हूँ ॥
जहँ तक मेरा मनोभास है क्या मेरा उससे काम बनै।
जस मैं सत्य सत्य तस निश्चय सत्य स्ववश निरधार ठनै ॥

(७) विवेक ले लेने से- अज्ञान, अविद्या की समाप्ति, पारख

प्रकाशी अक्षय स्थिति मिल जाती है। यही विवेक साध्य है, उसका साधन, सद्ग्रन्थ मनन सत्संग निर्णय लगन, सत्या सत्य पृथक करके चेतन सत्य पक्ष में ही दृढ़ रहना है। विवेक तो क्या पूछना ? यह तो सूर्य के समान है, निरन्तर फटक पछोर सार ही ग्रहण करता ही रहता है।

॥ सवैया छन्द ॥

विवेकी सदा सुखदायी अहै मन मोर सदा तूँ विवेक में पागे।
पीछे पड़ा चहौ जितना नर, जो अजहूँ सत्संग में रागे॥
तो तोहि मार्ग दिखे हितकारक कौन भला निज लाभ न पागै।
श्री गुरु संत विशाल चेतावत तूं अजहूँ नहिं जागत जागै॥

(८) धैर्य ग्रहण करते ही–स्वयं प्रकाशी, शुद्ध स्वरूप शांत का एक रस स्फुट भान होते रहना ही साध्य है। तत्साधन– घबराहट, असाहसपन परित्याग करके मनोद्वेग अन्त कर देना चाहिये। धीरज तो कुसंग कुकर्म, कुभावना कुसंकट में शरीर में रोग व्याधि बड़े बड़े संकट जीव जन्तु जानवर, सबसे बचाई लेता, धसने नहीं देता–त्रिगुण–

दोहा–धीरज रहा तो सब रहा, काहू से न डेराय।
सिंह प्रेत अरु काल का, धीरज से डर जाय॥ १
धीरज लै कारज करै, कहै सुहाते बैन।
सुख देहि यह जगत को, वह संत का अति चैन॥ २
छंद त्रो०–है धैर्य सुखदा नित्य। कब आइ है मम घृत्य॥
नाहिं छोड़ि हौं गरु पंथ। सब विघ्न तोरौ दन्त॥

(९) वीरता धारण करने का फल मिलता है। विजय निर्भय अजरामर तत्साधन है। जड़ासक्ति दुर्गुण जीतने हेत-प्राण बलिदान कर देना चाहिये।

साखी– अजर अमर अविकार मैं, आदि अन्त नहि मोर।
करौं अचल संग्राम अब, कस न विजय रण होर॥

वीरता तो बाहरी प्रलोभन और भीतरी मनोदमन के खिंचाव में कभी पड़ने नहीं देता, परमार्थ में नित नित साहस हिम्मत, श्रद्धा बढ़ती ही जाती है।

छन्द त्रो०– मम वीरता फल दानि। मन रुज न जबतक हानि।
तबतक लड़ूँ परचारि। गिरि परि उठूं जय धारि॥

(१०) शील स्वभाव बनाने का महान फल है। देह रहते ही निरुपाधि स्थिति साध्य हो जाना है, साधन है किसी का अनभल न करना सर्व इच्छाओं भोगों को दूर डाल देना।

शील–तो कठोर पक्ष आपास्वार्थी विषय व्यवहार ममता को धूर धूर कर डालता है। छन्द त्रो०–

मम शील सदा निर्विघ्न धरं। दै मान व सेवा सु बोल धरं॥
उन काज बनै मम हानि कहाँ। हम नित्य निरीच्छा सदाहित तहाँ॥

(११) विचार-विचार पथ निमग्न का फल अखण्ड उपरामता युक्त परम वैराग्य होकर मन कर्म कृत सर्व बन्धनों का विघटन हो जाना सत्साधन है। जड़ देह भास में तन-मन प्राणी जगत में असह्य दुख प्राप्त होता रहेगा, ऐसा दृढ़ लक्ष बना लेना चाहिये। विचार धारा को जिसने ग्रहण किया उसकी दृष्टि में

प्रति क्षण जगत भोग सब प्रबल दावाग्नि के सामान दिखाई देकर हरदम इससे छूटने के लिये स्वरूप स्थिति की ही लगन बढ़ जाती है।

छन्द मु०—

बिना हि विचारे सदा मैं अभागी। गुरु की कृपा तब मेरी भाग्य जागी
क्या मोक्ष बन्धन विचारों को कर धर। सदा सत्यपारख में थिरता अभयघर

(१२) अमान लक्षण ग्रहण कर लिया जाय तो कैसा महान साध्य फल प्राप्त होगा कि जीते ही सब सद्‌गुण आ जायेंगे और हृदय की समस्त चितायें, उत्पात क्रोध, प्रतिकूलता से छुटकारा मिल जायेगा। तत्साधन यह है कि सर्व हित चिंतक चेतन स्वरूप लक्ष से सबको समान भाव देखना। पर प्रति अनिष्ट भाव दमन रखना निर्मान में किंचित किसी मद का लेश नहीं ग्रहण होता, क्योंकि स्वरूप सर्व मदों का द्रष्टा एक रस है।

छन्द—

निर्मानता से गुरूजी मिले हैं। सेवा व भक्ती सु गुण में हिले हैं
है धन्य निर्मान रक्षक तूँ मेरी। अहंता कि मोटरी तूँ डाले सबेरी

(१३) निष्काम-ब्रह्मचर्य व्रत यदि आप पालन करने में सदा दृढ़ रहें तो क्या पूछना ? सर्व परतन्त्र, परिश्रम चिंता गुलामियों का नष्ट होना और जीते ही सर्व संघर्षों से छुटकारा मिल जाना ही साध्य है। तत्साधन वाह्य मोहक मोहनी घट का अष्टधा संसर्ग वर्जित करके पूर्ण निष्काम भाव पालन कर लीजिये। मन से लड़ना बन्द न करो भले ही हार दीखे पुनः पुनः गुरुबल ले लेकर लड़ो अन्त में मन स्वबश हो रहेगा।

निष्काम-पूर्ण स्पर्श विषय-अष्ट मैथुन का तन मन वचन से त्याग करना ही जहाँ का मुख्य व्रत होता है।

छंद-

बिना भद्रता के सदा मैं भिखारी। मनो भूख मिटती न हाहा अपारी
बाहर व भीतर उदासीन जब मैं। बचा काम अग्नी से स्थिर सु तब मैं

(१४) अक्रोध को लेते ही आप परम परमेश्वर स्वयं बन जायगें। साध्य फल निर्भय, निर्भार अचिन्त और महान शांत पद मिलेगा तत्साधन-परमान्यता रक्षण, तामस हनन, स्वार्थ सुख दूर, जीव उपकार ग्रहण, हिंसा परित्याग है। अक्रोध निर्वाह सन्तुष्ट होने से तामस की गन्ध मात्र भी नहीं है।

॥ भजन ॥

मुझ में क्रोध बनै ना भाई ॥ टेक ॥

वह अन्याय करै हमु करिबै, तो हम बोधक फल का पाई ॥१
वह कुबोल हमु कठिन जो बोलैं, तो हम ताहि सदृश ह्वै जाई ॥२
वह सुखाध्यासी औ अभिमानी, हमहूँ कम नहिं तोका मुखवाई ॥३
वाहि हँसौ तुमको सब हँसिहैं, वह डूबै तुमहूँ तो नाव डुबाई ॥४
बाधक कुसंग कुमग तजि प्रेमी, गुरु की दया परख पद पाई ॥५

(१५) निर्लोभ-जीवन कितना उत्तम है। साध्य निर्दोष स्थिरता है। साधन-सर्व तृष्णा जनक धन सुखों का परित्याग करना चाहिये आवश्यक अंगों में सदुपयोग ग्रहण अहन्ता रहित होना है निर्लोभ-माया संग्रह से रहित।

चौ०-कब निर्लोभ उदार हृदय हो। जाते छल बल नष्ट अनय हो

मम मति जब निर्लोभ बनैगी। गुरु सेवा करि शान्ति लहैगी

(१६) निर्मोह का फल तो प्रत्यक्ष है कि शीघ्रही शोक चिन्ता इच्छा की खैंच मिटा देता, तब जीव शान्त सुधामें निर्भार स्थिर हो रहता यही महान साध्य फल है। तत्साधन-पंथीव्रत लक्ष रखना है कहीं आसक्त न होना है बदला नहीं लेना है। किंचित भास में आकर्षण न होना है। निर्मोह-प्राणी पदार्थों की अन स्थिरता समझ के उदासीन युक्त स्ववश रहना है।

चौ०-मैं चेतन अविनाशी ज्ञाता। हमही हम हित अधिक सुहाता
मैं क्या मानू पृथक सकल जड़। मैं ही चेतन जापक हूँ बड़

(१७) अभय-साध्य अहा क्या सुन्दर स्ववश पावन भूमि है। देह हन्ता भाव त्याग के शुद्ध चेतनका ही अक्षय भाव रहना और सर्व अन्याय दुष्क्रिया संग्रह भाव का बोझा उतर जाना, निरन्तर अचल पद में स्थिरता का भाव रहना है। तत्साधन-सर्व कुसंग्रह त्याग कीजिये, जगत सुखों को अप्रयोजन समझ के डाल दीजिये! यथोचित स्थिति लक्ष बर्ताव कीजिये निर्भय रहिये।

॥ भजन ॥

ज्ञान देश अपना है प्यारा, अजर अमर निर्भय अविकारा ॥टेक
चोरी नारी मिथ्या छोड़, रहि एकान्त जग से मुख मोड़ ॥ १
मान शान शेखी क्या कीजै, चिंतन मात्र सकल दुख लीजै ॥ २
निज स्वरूप चिंतन से काजा, निर्भय जाय स्ववश शुभ साजा ॥ ३
जन विशाल उपदेश दृढ़ावै, सुनि सुनि हंस अभय पद पावै ॥ ४

(१८) आसक्ति दलि स्वरूप-विवेक ग्रहण करते ही कैसा

अनुपम अमृत फल मिल गया जिसको वाणी द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता, संकेत मात्र दिया जाता है। सद्भाव विवेक द्वारा ही स्वयं प्रकाश निराधार निःसंग निर्मल स्ववश निश्चल सदा के लिये दुख द्वन्द विहीन रह जाता है। यह स्थिति स्वयं ज्ञाता को विवेक साध्य है। जड़ परमाणु रहित केवल स्वंय प्रकाशी निराधार चेतन मात्र ज्ञान मुक्ति है। तिसका साधन पिण्ड ब्रह्माण्ड खानी बानी सर्व दृष्य सुख कल्पना को मिथ्या जानकर तिन्हों का चिन्तन आकर्षण क्रिया भोग को डाल देना-मोहक उपाधिक संग से दूर रहना साधन युक्त सावधान रहना उपशमता का ग्रहण है। आसक्तियों का दमन ही तो जीवन्मुक्ति का मुख्य व्यापार है।

कवित्त– अपनी अचलता को आप में न जापै तूँ तो,
दूढ़त है नारी बानी भोग के प्रसंग में।
जौन जहाँ नाहीं तहाँ मिले कस तीनों काल,
मानि मानि कुबुधि कुमग पिये भंग में॥
अजहूँ संसार जनु अश्व देह झारि खड़ो,
स्वतः स्वदृष्टि लखु मन रिपु तंग में।
सुख को मनन छोड़ पारख मनन जोड़,
मनन जु इत उत बन्ध मोक्ष रंग में॥ १॥

छन्द– तूँ मनन निज कर लेय। सहजिक स्वभाव सदेय॥
जब मननधारा घूमि। तब शांत पद तूँ चूमि॥
जब जौन नाहिं बनाय। तब कौन इत कठिनाय॥

केवल तुँ लक्ष घुमाय। जस सत्य तस रहि जाय॥
रण मध्य दे ललकार। कबहूँ न मानै हार॥
तूँ शोधि शोधि उपाय। बस जीत तेरी आय॥

(१९) प्रतिष्ठा के हर्ष और मान छेदन करते रहने से परमार्थ मार्ग के जितने रोड़े विघ्न उपाधि कुसंग दुर्गुण कुभावना सब के सब शीघ्र ही नष्ट हो जाते है। साध्य-सरलता से गुरु पद में अचल स्थिति मिल जाना। साधन-पूजा इन्द्रिय आरामी की इच्छा त्याग के यथा सक्ति अन्य के द्वारा इन सबों का त्याग करके तन की अरामी मनकी गुलामी रूपी भूख नष्ट कर दीजिये प्रतिष्ठा की खुशी, मान का छेदन, करते हुये स्वरूप बोध बल से सदा निर्विकार स्वरूप भाव में ही जिज्ञासु जन स्थित रहते हैं। ये उनइस लक्षण जिसे सत्संग सद्ग्रंथ, स्वानुभव द्वारा महान प्रयत्न से प्राप्त हुये हो इन्हीं में तद्गत हो अन्त में जायगा ही क्या ! मिलेगा ही क्या ! रहेगा ही क्या, जीव ही तो निज करम बासना बश दुख सुख भोगेगा कर्म बासना शुद्ध करते हुये गमनागमन सुख बीज को दग्ध कर अक्षय शान्त प्राप्त करो। इन १९ लक्षणों को जीवन में चरितार्थ करने से वही महा पुरुषोत्तम जीवन्मुक्ति बन्दनीय हो जायगा। उसे न तो किसी प्रकार की कामना कष्ट देगी न वह किसी प्राणी-पदार्थ अधिकार सम्मान का बुभुक्ष बनेगा। कभी उसके हृदय में किसी प्रकार की जलन आकर्पण खैच नहीं होगी। अतृप्त का किंचिन्मात्र अनुभव नहीं होगा। सदा उसके सबके सब साथी बन जायँगे,

कोई भी शत्रु नहीं मिलेगा। निःशत्रु निष्कंटक अचल स्थिरता प्राप्त होगी। सास्फा असमंजस, अभाव, दुख द्वन्द का किंचित दर्शन नहीं होगा, उसकी स्थिति तो हानि रहित अमृत मय हो ही जायगी, साथही जो उन पुरुषोत्तम की भक्ति भाव दर्श पर्श करेगा उसकी भी सर्व आपदायें चूर्ण हो जायेगी और वह परम गन्तव्य भूमि में सत्य सत्य हो रहेगा। प्रतिकूलताओं प्रति द्वन्दों के संघर्षसे दूर रहेगा, सबको समान रूप सहेगा, उसका शीतल हृदय सदा निर्दोष अचल भाव से अनन्त स्वरूप भाव में शान्त रहेगा। अब चाहिये ही क्या! जीव की जो माँग थी वह सब भाँति से पूरी हो गई।

॥ प्रमुदित पदावली गजल ॥

हम हैं गुरू के सेवक, गुरुवर अधार पाये।
बीते अनन्त जन्मा, अब तो सफल रहाये॥ टेक॥
छाजन व भोज मैथुन, निद्रा व भय जु मोहा।
छौ कर्म पशु व मानुष, बिन गुरु पशु दुखाये॥ १॥
छौ कर्म को सुधारे, हिंसा अनीति टारे।
व्यभिचार वृत्ति जारे, मानुष तभी कहाये॥ २॥
मानुष बनाय दीन्हा, गुरुवर कृपा जु कीन्हा।
दै मन्त्र चिन्ह हीरा, निर्भय स्वभग चलाये॥ ३॥
उपकार प्यार दाता, पद कंज धूरि पाता।
यह प्रेम को सुहाता, सत भेव जो सुनाये॥ ४॥

॥ सवैया ॥

संसार दवानल से अति दग्धित हुये जग मोह की आंधी से कम्पित देखो। संसार समुद्र से पार हुये गुरु देव महा ऋतु राज बसन्त विशेषौ ॥ जानि अनाथ सनाथ करो बचनामृत बिन्दु से शांत हृदेशौ। कारुण्य दृष्टि कटाक्ष सु वर्षि के, प्रेम के अंतस पारख पेशौ ॥ १ ॥

(सम्पति मंत्रणा)

गुरुदेव अपार करुणा दृष्टि डालते हुये शिष्य से पूछा जो सद्गुण शतक द्वारा शिक्षा दिया गया था वह मनन किया की नहीं। मनन से क्या फल प्राप्त किया। शिष्य उभय कर जोर शिर नम्र नयन नम्रता के रस से सरोवर करते हुए मुख से निर्मद होकर बोल उठा ! गुरुदेव सरकार ! जैसे कामी पुरुष, जैसे पुत्रवान माता, जैसे लोभी ये सबके सब नव युवती, तथा पुत्र और धन से तीनों तृप्त न होकर निरन्तर ध्यान सेवन द्वारा काम मोह औ लोभ की पुष्टी करण कर लेते हैं। तैसे ही मैं आप के इन सत्य साधक शब्दों को बारम्बार पढ़ता ही रहा पुनः मनन अर्थ भी ध्यान में लाते हुये अपने व्यवहार आचरण को शुद्ध करते जा रहा हूँ ! इसके फल में मैं बाहरी झगड़ा द्वन्द कटु व्यवहार से छूटा हुवा अपने को देखता हूँ। जो लाखों करोड़ों की सम्पति देकर भी झगड़े-राग द्वेष शांत नहीं होते, जो समस्त नारी भोग भोगकर और धन राज्य के सर्व मान

ऐश्वर्य प्राप्त कर भी इच्छा स्ववश तृप्त नहीं होती, वह आप के वचनामृत मनन आचरण से मैं पाया। संसार में मनोद्वेग शांत करके स्ववश रहने के समान कोई सुख या आनन्द मौज शौक शृंगार राज्यपाल समग्र विद्या ज्ञान विज्ञान विभूति नहीं है। क्योंकि सबमें बराबर इच्छायों की ज्वाला धुलाती है, और आपका सिद्धान्त पाकर निरीच्छ शांत सरिता में मन मीन विहार किया है। अब मैं अपने समस्त प्रेमियों से बड़े प्रेम द्वारा विनय करके प्रेरित करता हूँ कि आप भी इस प्रबन्ध को दो-चार माह लगातार दिन में चार-छः बार घूम घूमकर अध्ययन करें तब देखें कि मैं कैसा लोहे से सुवर्ण समान चमक उठा हूँ।

(हमारा सिद्धान्त वर्णन)

अध्याय–२

[एक दृष्टान्त सामने करते हैं, स्मरण कीजिये—जो निज स्वरूप भूलने से महान दुख द्वन्द अपराध होता रहता है] उस पर लक्षित करेंगे।

दृष्टान्त—एक पुरबी मनुष्य एक हजार रूपया लेकर इधर पच्छाह में बैल खरीदने गया। गाँव गाँव में घूमते हुये एक गाँव का चौकीदार इसे मिला, वह इसके मन में मन होकर सब बातें जान लिया। इसके पास सहस्त्र रूपये जानकर जो कि चौकीदार था। वह बड़े प्रेम से बोला चलिये हमारे गाँव मण्डल में उत्तम उत्तम बैल हैं, और वहाँ हमारे सब लोग परिचय के हैं, आपको

सुबीता सहित अच्छे बैल खरीद कर देंगे। वह मनुष्य चल पड़ा, यह चौकीदार अपने घर में आकर बैल वाले को बाहर एक अच्छे पलँग पर तोशक-तकिया बिछाकर बैठाया और खूब सम्मान किया। आप भीतर जाकर तिदरा में एक बड़ा गड्ढा खोदवाया, उसके मनमें लोभ ने डेरा कर रक्खा था। लोभी मनुष्य आगे का नतीजा परिणाम नहीं सोच सकता। वह परिश्रमित हुवा बाहर निकल आया। बैल वाला बुद्धिमान अग्र सोची था। प्रथम तो वह अकारण विशेष सम्मान लल्लोपत्तो ही में चौकन्ना होरहा था। दूसरे उसे घर से आया पसीने से भीगा देखकर पूँछा आप पसीने से क्यों भीगे हैं ? क्या करते थे ? चौकीदार ने कहा—कुछ ठौर कर रहे थे, जाड़े का दिन है बैल खरीदार के मन में कुछ धड़कन हो गई। उसने सोच लिया इसमें कुछ न कुछ सन्देह अवश्य है। जब शाम हुई तो भीतर एक तरफ उसका पलंग छोड़ दिया उस परदेशी मनुष्प को खाना पीना से सन्तुष्ट करके कहा अब आप आराम कीजिये। वह पलग पर लेट गया, तब आप चौकीदार भी खाने पीने बैठ गया। इसकी इच्छा थी कि जब कुछ रात बढ़े यह सो जाय तब इसे मार कर धन ले लेवैं और इसकी लाश घर ही में गाड़ देवैं। वह बैलवाला कुछ दूसरी तरफ गड्ढे को देखकर जान लिया, फिर शीघ्र ही वह चुपके से चल कर घर के द्वारे पर ही एक बड़ा वृक्ष था उसी पर चढ़ के बैठ गया। थोड़ी देर में चौकीदार का बड़ा लड़का गाँव में पहरा घूम कर कुछ देर से आया और उस पलंग को खाली देख के

उसी पर वह कम्बल ओढ़ कर सो गया। इतने में चौकीदार उसे घोर निद्रा में सोया देख यह रूपया वाला ही सो गया है, ऐसा समझ के उसे एकाएकी जान से मारडाला, पुनः गड्ढे की जगह ले जाकर जब दीपक के प्रकाश में रूपया तलास करने लगा, तैसे ही अपने बड़े पुत्र को देखकर रोने लगा, हाय यह क्या हुआ ? फिर उसे खाट पर ले जाके लेटा दिया, और आप बड़े जोर से रोते हुये हल्ला किया कि दौड़ो दौड़ो लोगो एक दुष्ट मनुष्य हमारे पुत्र को मार कर भाग गया। हाय उसे पकड़ो ! वह कहाँ गया। लोग दौड़ आये क्या देखा उसका बड़ा युवक पुत्र गर्दन मरोड़ा हुआ मरा पड़ा है। लोग इधर उधर दौड़े उसका कहीं पता न लगा। थाने में रिपोर्ट हुई, दिन को दश बजे थानेदार कानिष्टिबिल सब आगये। तब वह परदेशी मनुष्य ऊपर वृक्ष से बोला, अब थानेदार साहब आ गये हैं, हम नीचे उतरते हैं। "औरन को अनभल चहै, सोई जाय शठ खीश।" वाली बात ठीक हो गई। ऐसा कहते हुये वृक्ष से उतर सब बातों की सही साबूत देते हुये ले जाकर उसके घर में खोदी हुई कबर दिखाया और कहा कि इसी में मुझे मार के तोप कर यह मेरा दाम लेना चाहता था परन्तु मरने का भोग इसके लड़के का ही था फिर हम कैसे मारे जा सकते थे, सच है।

"जाकर मृत्यु ताही की होई। संग अकेलो आपु न कोई॥"

यह दृष्टान्त प्रारब्ध भोग पर तो है ही, इससे यह भी ज्ञात होता है कि ठीक ठीक अपना स्वरूप और परतः जड़ दृश्य का

स्वरूप न ज्ञात होने से जीव को महान संकट भोगना है—अत: सबसे बड़ी अपनैयत अपना सत्य शुद्ध चेतन को ही पहिचान कर कल्याण करना चाहिये। जब तक अपना शुद्ध स्वरूप का अपरोक्ष प्रकाश न हो तबतक जीव उसी लोभी के समान पागल है, भ्रांत है। तिससे छूटने हेतु—

हितैषी शिक्षा-शब्द

गुरु जी की हितकारी बतियाँ सुनो सुनो ध्यान धरी ।।टेक।।
तुमतो जीव अमर अविनाशी, ज्ञान स्वरूप सुभाग्य सुपासी।
काहे सोयो मोह में दिन अरु रतियाँ ।। सुनो सुनो... ।। १ ।।
डाकू चोर ये तन में लागें, काम क्रोध मद लोभयेठागें।
काहे जलो इर्षा कि धधकत अगियाँ ।। सुनो २... ।। २ ।।
जेहि दिन बल धन रूप न पइहैं, नर नारी सब आँखि देखइहैं।
लासा लगी मोह कि हरी हरी टटियाँ ।। सुनो २... ।। ३ ।।
जाको साजि चलत अठिलाई, रोवहु रोग बूढ़ पन आई।
सुख आशा करि करि जरे तेरी छतियाँ ।। सुनो २... ।। ४ ।।
संतन में जब लगन लगगी, सत्संगति से भूल भगेगी।
बुझि जइहैं मन मति दुर्गुण कटियाँ ।। सुनो २... ।। ६ ।।
सन्त विशाल कहैं समझाई, मुक्तिद्वार नर तन सफलाई।
चलो चलो धरम कि अतिशय चलियाँ ।। सुनो २... ।। ६ ।।

[हमारा सिद्धांत, प्रबंध-गद्य १]

१—जीव पक्ष की प्रधानता

मनुष्य को कोई न कोई सिद्धांत-किसी न किसी का आश्रय (आधार) किसी न किसी प्रकार का वेष भूषा कोई न कोई मन औवलम्ब क्रिया, कुछ न कुछ रहस्य ग्रहण करना ही पड़ता है। जब प्रत्येक ऊँच नीच पढ़ अपढ़ नर नारी ज्ञानी विज्ञानी धनी गरीब सभी को इस मार्ग पर चलना पड़ता है तब उसमें जो सार सत्य हितैषी रहन हार कल्याणकारी मार्ग हो उसी की ओर हम क्यों न चलें ? अवश्य सत्य की ओर चलने से ही कल्याण होना निश्चित है। जब कोई न कोई सिद्धान्त गहना है तो सारे सिद्धान्तों को स्थापन करने वाला-खण्डन मण्डन करके सिद्ध करने वाला सर्व का आधार मूल-सर्व का जानक मानक प्रतीतक निश्चयक धारक प्रचारक और भास कर्त्ता जो स्वयं अपना आप नर जीव ज्ञान स्वरूप है, जो इस जड़ देह मन का भी प्रेरक शुद्ध चैतन्य है वह हमारा सिद्धांत है। यह सिद्धांत सर्वोच्च सब का निज जीव अपना कल्याण मूल है। व्यवहार में जब कोई अपना मत या कार्य प्रणाली चालू करना चाहता है तो अपने मत का नारा लगाते हुये कहता है कि 'हमारा मत जिन्दाबाद' और दूसरे पार्टी या सिद्धान्त को जिसे प्रतिकूल तुच्छ समझे हुये को नारा लगाता है कि दूसरा 'मुर्दाबाद' ! इस बात से भी चारों ओर जन समाज द्वारा सर्व श्रेष्ठ जिन्दाबाद-अर्थात्

जीवित पक्ष सर्वदा रहनहार नित्य जीव वाद की ही गौरवता प्रधानता मिलती है। फिर हमारा तो सिद्धांत ही जीव वाद का है, सद्गुरु कबीर साहेब और सर्व पारख निष्ठ संत तथा सद्गुरु देव से उपदेश पाकर स्वतः युक्ति गुण लक्षण द्वारा अनुभवित सर्व प्रमाण-प्रमेय का स्थापक हमारा अविनाशी चिरंजीव सत्य स्वरूप हमें सदा ग्राह्य है। जड़वाद की गौरवता दी जाय या चेतन जीव की। किसी पक्ष में एक पक्ष मनुष्य लेता ही है। हम अनादि काल से जड़ पंच विषय हेतु जड़ स्थूल इन्द्रियों के राग ठाठ उपभोग में भूले हो रहे, जड़ विषयों में सुख मानते-मानते अनन्त आदत रुत शोक तृष्णा हुश्न फैशन मलीनता छल बल चोरी व्यभिचारी हिंसा द्रोह मार काट मदिरा माँस लड़ाई झगड़ा सर्व राक्षसी सम्पत्तियों से घिर के दुसह दुख भोग रहे थे, अब इन दुसह दुक्खों से छुटकारा पाने के लिये गुरुदेव की शरण गया बड़ी दया हुई मेरा जन्म जन्म का मनोरथ आज सिद्ध हुआ पूर्ण कार्य बना सौभाग्य फाटक खुला।

२—गुरुदेव की अपार करुणा दृष्टि

गुरु की अपार करुणा वृष्टि होते ही वासना ज्वलित हृदय तरातर हो गया, पारख प्राप्त होते ही पृथक जड़ तन मन विषय सर्व का निर्णय कर्त्ता ध्याता चेतन स्वरूप का बुद्धि में प्रकाश अब हो गया अब अज्ञान के घोर पटल टूट फूट गये सूर्यवत पारख प्रकाश सब कुछ यथार्थ दिखाई दे रहा है।

३—[चैतन जीव पक्ष ग्रहण से कल्याण]

अब हमें चेतन पक्ष सदा के लिये ग्राह्य है, सर्व परीक्षक पारख सद्गुरु द्वारा अपनी स्वदृष्टि बल लेकर हमें निःसंदेह निश्चय है कि इस जड़ तन मन का ज्ञाता चैतन्य नित्य सत्य अविनाशी है, वे सब अनन्त स्थूल सूक्ष्म देहों युक्त नर देह में जैसा कर्म करते हैं, वैसे भिन्न भिन्न संस्कार ग्रहण करके शुभाशुभ कर्मों के फल अनन्त प्रकार से दुख सुख भोगते हुये चारों खानियों में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं, मेरे सहित सर्व जीव स्वजाती हैं, मनोमय सम्बन्ध जागृतादि तीन अवस्था-ही चेतन जीवों के मुख्य लक्षण हैं।

४—[जीव रक्षा करने की प्रतिज्ञा-अहिंसा धर्म]

इसलिये हम किसी छोटे बड़े देहधारी जीवों का मन कर्म वाणी से घात नहीं करेंगे।

५—[गुरुदेव से प्राप्त सुबोध ही सौभाग्य है]

दया कर्तव्य लीन दया का चिन्ह कण्ठी हीरा मेरे गले में सदा के लिये लहतारा रहेगा। जब तक प्राणों में प्राण देह में जीव है, तब तक यह गुरुदेव प्रदत्त रक्षक कण्ठी हीरा रूप महा प्रसाद उसी प्रकार मुझे धारण रहेगा, मानो राष्ट्रपति के राज्यधानी के ऊपर ध्वजा पताका लहराता हुआ अधिकार चिन्ह। मानो न्यायक कलेक्टर जज आदि का फौजी आदि राज्य सत्ताधिकारी इधर सामान्य वर्ग के जग जीव भी तो कोई अलबट

कोई कालरदार सारे पहिनाव, पायजामा टाई-गोल टोप हैट आदि अथवा भाँति भाँतिके गहने फैसन आदि पहनते रहते जो कि सब रोगों की जड़ होने से पाप दोष रूप है, फिर हम गुरु-देव का परम पवित्र बेष चिन्ह को क्यों त्याग करें, कदापि नहीं सर्वदा हम अपने और सर्व हितू हेतु शुद्ध आचार विचार के दृढ़ पक्षी हैं, इस भक्ति पक्षसे हमारा और सर्व विश्व का कल्याण है। हम विश्व शान्ति के सत्य सन्देशक सत्य पन्थ के पथिक हैं। जब कि चोरी जुवा नशा ब्यभिचारी मांसाहार छल कपट विश्वास घात बरजोरी ये सम्पूर्ण राक्षसी सम्पति के धारण करने वाले मनुष्य लज्जा भय छोड़कर यहाँ तक कि प्राण अर्पण कर जेलों में बेतों की मार डाट फटकारयहाँ तक कि फाँसी चढ़ते हुये भी अपनी खोटी आदत पहिनावा बेष फैसन नहीं छोड़ते। परिणाम में सदोदित दुसह दुख भोगते हुये माथा पकड़ कर रोते रहते, फिर हमारा तो सर्वता सत्त सिद्धान्त है।

६—[सत्य ग्रहण से मुक्ति]

सत्य बेष सत्य रहनि सत्य कहनि सत्य चाल चलन, अहिंसा धर्म, सर्वोच्च परमार्थ अनुभवी गुरुदेव का पारख सिद्धान्त, तथा परम पवित्र गुरुदेव का जो भक्ति भाव शरणाधार है, जो कि सर्वथा हम सबोंके लिये कल्याण रूप है। आचरण में कष्ट नहीं परिणाम में भी सदा सुख शांतिमय जीवन, अन्त में सदाके लिये जड़ ग्रंथि से छुटकारा मिलकर मुक्ति प्राप्ति हो जाती है।

७—[सत्य हेतु परम साहस रखना हमारा लक्ष्य है ।]

ऐसे पवित्र श्रेष्ठ गुरु मार्ग को निर्भय रूप से तथा सादर प्रगट रूप हम क्यों न सेवन करेंगे, जब मैथुन आदि महा मलीन मद्य गाँजा तम्बाकू आदि अपवित्र बुद्धि भ्रष्ट रूप तिस पर मनुष्य बलि बलि जाते तो हमारा जो मलीन कर्मों को त्याग कर सत्पुरुषों की भक्ति युत सदाचरण का मार्ग है उसको धारण कर हम क्यों डरें? क्यों पछुवा भद्दा मलिन अप्रसन्न मन करें? या लज्जित क्यों होवैं? विषयों में माना हुआ सुख भ्रान्ति मात्र कल्पित है, जैसे रस्सी में सर्प नहीं मृग तृष्णा में जल नहीं तैसे मिथ्या विषयानन्द हेत भ्रष्टाचार असंयम आदत असत कर्म चंचलता कुसंग वासना वशिता विषयाशक्ति के साथ ही है । एवं उपाधि रूप विषय भ्रम सुख के लिये कितने मनुष्य प्राण अर्पण कर रहे हैं, फिर हम सत्य नित्य स्वरूप स्थिति के लिये क्यों न निछावर हो रहें । अवश्य हम सादर सोल्लास गुरु पद के लिये बलि बलि जावेंगे ।

८—[वैराग्य साधन ग्रहण करके ही सत्य में अक्षय विश्राम]

निज सत्य से पृथकके नश्वरता का नित अनुभव हम लोग कर रहे हैं, आज जो एक क्षण सामने हैं वह व्यतीत होता हुआ दूसरा क्षण आ जाता है दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा इस तरह एक क्षण को दूसरा ग्रसते हुये एक दिन, दस दिन, महीना, वर्ष, दस वर्ष, चालिस वर्ष सौ वर्ष क्षण ही व्यतीत हो जाता है । इस प्रकार शरीर में बासा टिकाव क्षण मात्र ही है ।

सो भी निज मनोमय के आश्रित निश्चय आधीन इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती रहती हैं, यह भी प्रत्यक्ष है। अतः मुझ चेतन का जड़ देह से कोई सत्य एक रस सम्बन्ध नहीं, जब देह गेह पंच विषय एक रस नहीं, तब उनसे मेरा कैसे एक रस सम्बन्ध रह सकता है। मैं चेतन ही इन्द्रिय और मनोवृत्तियों की चालों को देखता हुआ हानि लाभ समझ कर रोकता चलाता हुआ मैं सर्व ज्ञाता ज्ञान रूप एक रस सत्य प्रेरक रूप रहता हूँ, प्रगट वाली बातों स्मर्णों क्रियाओं को प्रगट करता हूँ। मैं अपने अन्तस की गुप्त बातों को देखता हूँ, सोचता और परखता हूँ। गुप्त रखने वालों को गुप्त रखके उन संस्कारों को अपने से भिन्न जानता रहता हूँ। हानि लाभ का हिसाब लगाकर हर एक वृत्ति पदार्थ क्रिया देह गेह मन प्राणियों को छोड़ता पकड़ता रहता हूँ। इस प्रत्यक्ष सत्य अनुभव द्वारा सत्य के प्रकाश में सत्य सिद्धान्त सत्य रूप हमें निश्चय हो रहा है, कि मैं सर्व ज्ञाता सर्वदा रहनहार अपने सत्य स्वरूप देश में सदा सत्य रूप ही विराजता निराधार रहता हूँ। मैं अपने को लक्ष से भूलकर भ्रांति वश दृश्य जड़ में ही सुख भास द्वारा मनोमय रच कर दुख पाता रहा, अब मैं भूल की पारख करके सदा मुक्त दशा युक्त निर्भय सादर श्रद्धा संयम साहस निश्चय पूर्वक निःसन्देह रूप पारख स्थिर हूँ। हमारा अष्टामृत सिद्धान्त हमारे लिये सदैव-मरण पर्यन्त अभंग रूप सेवनीय है। अब मैं इन सिद्धान्तों को पुनः संक्षिप्त अभ्यास करता हूँ। (१) जब किसी न किसी का

आश्रय लेना है तो मैं सदा अन्दर बाहर पवित्र निर्वासन उपकारी सद्गुरु देव का आधार शरण सेवा भक्ति गुलामी और उनका सत्य पारख सिद्धान्त अहिंसा धर्म ग्रहण करके-इसी में दो दिन की जिन्दगी व्यतीत कर दूँगा। यह हमारा सिद्धान्त। (२) जब नश्वर जड़ देह को सत्य मानना है, जो कि रोग दोष उपाधि पूर्ण है, तो जो इस जड़ देह दस इन्द्रियों का और मन का भी द्रष्टा संचालक है। उस नित्य सत्य पक्ष चेतनको मैं सदा के लिये निःसन्देह बुद्धि में निश्चय करता हुआ अपरोक्ष रूप निराधार स्थिर हूँ। (३) जब विषय भोग से कामना रोग पुष्ट होजाता है, यह प्रत्यक्ष है तो अब मैं सब उक्ति युक्ति लगाते हुये साधन संयम बढ़ाते हुये भोग बिलासों से मन को रोकूँगा। सत्संग सद्ग्रन्थ स्वरूप बोध में सदा लीन रहूँगा। जैसे एक क्षण दो घण्टे, एक दिन, दस दिन कोई लत या वासना त्यागी जा सकती है, उसी प्रकार जीवन पर्यन्त पंचभोगासक्ति कामादि वेगों को त्याग कर दूँगा। (४) जब किसी न किसी प्रकार देह यात्रा करना है तो मैं सदा ही अपनी शक्ति चलते सु समाज की सेवा युत प्रसन्न रखके अँकुर मात्र अन्न शाक फल फूल ही ग्रहण करूँगा। मद्य माँस अण्डा मछली अभक्ष का कतई त्याग कर मदिरा ताड़ी आदि बुद्धि भ्रष्ट कारक वस्तुओं और संगों का त्याग करूँगा। इस पर किसी विवादी पक्षपाती अन्याई हिंसकी बिधर्म्मी बाचाल जनों से बहश करके नहीं बल्कि सत्य हितैषी इन्द्रिय मन वेगों को जीते हुये सत्य शोधक सद्गुरु देव द्वारा हमें सदबोध की

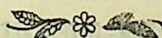
प्राप्ति हो गई है, यथार्थ ज्ञान हो गया है कोई दूसरा माने या न माने मैं स्वयं इस सत्य अहिंसा धर्म पर चलूँगा। साथियों मित्रों बन्धुओं माताओं बहिनों यहाँ तक सर्व विश्व जनता को इसी सत्य मार्ग पर चलने का देता रहूँगा ॥ गुरु की दया साधु की संगति कहत सदा यहि हित को ॥ (५) जब कि ब्रह्म ईश्वर मूल प्रकृति नेचर विद्युत (तड़ित) हाइड्रोजन (ज्वलनशील वायू) माया पंच महा भूत कुछ न कुछ अनादि सबी निरूपण करते रहते हैं तब तो मुझे सद्गुरु और निज विवेक तथा सद्ग्रंथ मिलाकर ये सारा जड़ चेतन मय जगत ही अनादि स्वतः है। कारण रूप चार तत्व स्वतः नित्य तिनके कार्य बीज वृक्ष ठण्ढी गर्मी सर्दी आदि प्रवाह रूप बनते बिगड़ते चले ही आ रहे हैं, और चारों खानियों के अनन्त चेतन जीव स्वतः अखण्ठ रूप से ज्ञानाकार वे निरे अनन्त अनादि हैं, मनोमय व्यवहार तीन अवस्था, दुख सुख का ज्ञान, हैतावृत्ति ये सब छोटे बड़े-देहधारी जीवों के मुख्य लक्षण हैं, इनको यन्त्र से नहीं बल्कि गुरु विवेक से सहज ही जाना जाता है, इस प्रकार हमारा अकाट्य निर्भ्रांत सिद्धान्त हमें माननीय हैं। (६) वासना वश आवागमन कर्म फल प्राप्ति होते रहना विश्व में अनिवार्य (अभंग) रूप से सर्वदा चला ही आ रहा है। साखी—चारि खानि तन धरत जीव, देखि परत परत्यक्ष। अंग हीन सम्पन्न तन, रोग ग्रसित कोइ दक्ष ॥ भवयान ॥ अब पारख ज्ञान प्राप्त करके जक्त ब्रह्म आनन्द वासना दग्ध तो मुक्त होकर सदा के लिये निराधार स्थिर

हो रहना ऐसा हमारा सर्वोच्च सिद्धांत है। (७) मनोवासना रोग की औषधी, सदा सत्संग, गुरु सेवा, एकाग्र वृत्ति सदग्रंथ विचार मनो द्रष्टा स्वरूप गुण लक्षण सदा स्मृति गुण ग्राह्य पन, सब सदा चरण ग्रहण करना मृत्यु पर्यन्त हमारे लिये सदा सेवन करना कराना इसी में प्रारब्ध देह अन्त कर देना हमारा परम सिद्धान्त है। सद्गुरु विशाल देव कहते हैं कि हे प्रिय नर नारी सज्जन इस अमृत मार्ग का सेवन आप भी करें।

❀ हमारा सिद्धान्त प्रबन्ध समाप्त हुआ ❀

चिंतन शिक्षा-शब्द

यह रात दिना अब सोच करो भवसागर से किमि जीव बचै ।।टे०
यह नारि विषय धन मान लिये, देखो जीव विषय बस कान सहै ।
बहु साहस निश्चय सहन करै, नित कोटिन कोटिहुँ यत्न रचै ।।
यह झूठ मनोमय हेतु अहो, कितना कितना सब सहन करे ।
अहो आज स्वतः सत पाय गली, फिर मंद व कादर कैसे बचे ।।
अब से निज शक्ति को याद करो, अपनी ये अनंत गती समझौ ।
है अनन्त क्षमा समता तोहि में, कुछ नाहीं कमी जोकि योग्य जचै ।।
अब हिम्मत पछर को ध्वंस करो, निज नित्य अनाश संभार करो ।
निःस्वार्थ हितैषी विशाल कहैं, करो सन्त से प्रेम जो बोध रुचै ।।



❁ विशाल विवेक विन्दु ❁

अध्याय–३

जीव जमा रहस्य शोधन

॥ जगत सम्बन्धियों की उलटी समझ ॥

दृष्टान्त—एक गांव में नित्य धर्मोपदेश की शिक्षा हुआ करती थी। सद्‌रहस्य युक्त परम विवेकी एक सन्त जो कि सबके अधिकार अनुसार ऊँचे चढ़ाने वाली बड़ी युक्ति से समता पूर्वक सबको शिक्षा दिया करते थे, जिससे उनकी कथामें गाँवके बहुत श्रोता इकट्ठा होते थे। एक दिन रात्रि के समय कथा हो रही थी, श्रोता जन दृढ़ ध्यान से हित उपदेश सुन रहे थे। कि इतने में एक स्त्री आई, और जोरों से आवाज दे हाथ फैला सन्त से कहने लगी। अरे बाबा—क्या तुहीं जगत में रहेगा, या और कोई कथा बन्द हो गई, सबके सब उसके तरफ वे चित्रित से हो गये। सन्त बोले बाई जी यह क्या कह रही हो क्या हुआ, हम और सब बैठे हैं। बाई बोली–हमारा पूत दो-तीन दिनसे तुम्हारे सत्संग में आने लगा। उसकी बुद्धि बिगड़ गई। सन्त ने पूछा—क्या बिगड़ गई। बाई बोली—एक तो वह धूम्र पान तमाखू गाँजा पीया करता था, जुवा खेलना ये सब छोड़ दिया। दूसरे कुकुर मछिया मारना और अण्डा माँस मछरी सेवन छोड़ दिया। तीसरे घर में खाने के लिए जब जाता था तब घंटों लड़ाई करता था, कभी कहता यह नहीं बना कभी कहता वह नहीं बना,

कभी कभी हमको और अपनी स्त्री को मारने दौड़ता मारने भी लगता। अब तो ये दो चार दिन से कुछ कहै न सुनै चुपके से भोजन खा के चला आता है। महाराज मैं क्या कहूँ, एक वैसे ही मेरा पूत अकेला है, कबसे इसकी शादी हुई, अभी इसके कोई बंश न जगा, बीच ही में आप सत्संग सुनाकर इसे भड़का रहे हैं। मैं आपको सुना है कि आप के सत्संग में बैठने वाले विरागी हो जाते हैं। इसलिये आप कृपा कर सबको सत्संग सुनाइये, पर मेरे पूत को न सुनाइये, नहीं तो इसकी मिट्टी खराब जायग। नाच तमाशा मेला रंग बहार दुनिया की लीला पूत देखे तो मुझे दुख नहीं होता। पर साधुओं का संग करते देखकर मेरा जी जल जाता है। ऐसा निधड़क बचन सुनते ही सब सभा एक दम हँस पड़ी, सन्त सबको रोंककर बोले — भाई जैसी उसकी समझ है। तैसा कह रही है, कम विशेष ऐसे ही सब संसारियों की समझ है। यह तो विवेकवान परम विरागी साधु गुरू और सद्ग्रंथों का असर जिन पर थोड़ा बहुत पड़ा है वे ही इस संसार का मर्म जानकर अपने जीव कार्य में लीन होते हैं, और बाकी बचे प्राणी तो दीपक की पाँखी का ही अनुकरण कर रहे हैं। वे यह नहीं जानते कि सन्त गुरु जन गृहस्थी की भी सुधार विचार न्याय नीति की मर्यादा बताते हैं, और बिरक्त नीति भी। उभय प्रकार जिसकी जैसी शक्ति होवे वैसा धारण कर कल्याण पथ में चले और चलावे। अतएव गृहि-विरक्त सर्व हितप्रद सत्संग सद्ग्रन्थ ग्रहण करना चाहिये। [सर्व हित हेतु हितैषी वचनों को सन्मुख

रखके रहस्य बनाने की चेष्टा] आयु दिनों दिन समाप्त हो रही है, पता नहीं कब देह त्याग हो जाय, इसके पहिले ही वासना त्याग की दृढ़ चिन्ता और पुरुषार्थ करते रहना सत्संगी बुद्धिमान का कर्तव्य है। अगर हम व्यावहारिक कार्यों की पूर्ति करके परमार्थिक कार्य पूरा करने का निश्चय करते हैं, तो यह मन का भुलावा है। ऐसे निश्चय से कोटियों जन्म तक सुधार होना असम्भव है। सुधारने के लिये तो व्यवहार के फैले हुये अंगों को समेट कर उसी में से एक आवश्यकीय व्यवहारवत पारमार्थिक कार्यों को भी समझना और उसका नित्य नेम से अभ्यास करना इधर बाहर के भूल वश प्रेमी गण तो परमार्थ से दूर ही करते। यथा—

सुत पितु मात कहैं अस बैना। भक्ति न छाजै हमरे ऐना॥
कोउ कहै अबहिं जगत सुख कीजै। वृद्ध भये पर हरि भजि लीजै॥
जे मति भ्रम ते रहे भुुलाई। लीन्हों काल अचानक खाई॥
मृतक जानि सुत पुत्री नारी। रोवहिं स्वारथ हेतु विचारी॥

(विश्राम सागर)

इस हेतु प्रपञ्च भाव की प्रवृत्तियों से आगे बढ़ जाना अक्षय अमृत नित्य तृप्त सद्रूप पारख में एक रस ठहराव दृढ़ बना लेना होशियारी है। पृथक इससे भ्रांतिपन है कैसे-कैसे विघ्न हैं। कैसी-कैसी उपाधियाँ और विद्या अविद्या के प्रलोभन हैं। कैसे शत्रु मित्र कुटुम्बी के हेर फेर हैं। कैसे कैसे सेवक असेवक की भावाभाव वृत्ति है। कैसे कैसे मन के भौतिक भावात्मक तरंग हैं सो।

देह की अवस्थायें हैं। कैसी कैसी आपत्तियां घोर दुखह दुःख होत हैं इन्हें सोचते हुये मुझ का हृदय हिल जाता है। ऐसी दशा में यदि धीर वीर कबीर गुरु सत्यन्यायी कोई सन्त या विशाल देव जैसे अथवा वर्तमान के रहस्यवान सन्त महान कर्णधार सद्-गुरु प्राप्त हों तो अवश्यमेव अधिक से अधिक सेवा सत्संग का लाभ ले जमा पद में शान्त होना चाहिये। भौतिक पक्षी तो देह ही सत्य मानकर तिसी के शृंगार हाव भाव में रचते पचते अन्य जन गण कोई न कोई धर्म मानकर स्वीकार करते ही हैं। मुसलमान मस्जिद में निमाज पढ़ते, हिन्दू मन्दिर में पूजा करते ईसाई गिरजाघर में घुटने टेक कर क्राँस के सामने प्रार्थना करते, जैन बुद्ध निज निज मन्दिरों में जाकर अपने अपने सिद्धान्त की पुष्टि करण करते। हम आप सब के सब निज निज भाव की पुष्टीकरण करते, देखना यह है कि इसमें सत्य सार कौन है। भला बुरा आस्तिक नास्तिक सत्य झूँठ का निर्णय किस जमा पर अवलम्बित हैं। इसके लिये सत्यन्यायी सन्त उत्तर देते हैं— सब में का सद्गुण सदाचार तथा धर्म गुण युक्त वस्तु विवेचन सत्य ग्रहण करना चाहिये पर जो दुर्गुण असद भावना असत्य मानना हो उनको परीक्षा करके त्याग कर देना और सत्य का सर्वांग सिद्धांत रख के सत्य स्वरूप में निर्विकार टिक जाना गुरु कबीर देव, जैसे परीक्षक के वचनों पर ध्यान देने से सहज ही सत्य सार जमा पद का बोध हो जाता है। "ई मन बड़ा कि जेहि मन माना" सद्गुरु कबीर देव यथार्थ तर्क द्वारा सत्य

स्वरूप का उद्बोधन कर रहे हैं ऐ सत्य शोधक नर जीवो। बतावो-सर्व मन से माने हुये अदृश्य गुण धर्म रहित देवी देव भूत प्रेत टोना श्राप जादू सिद्ध बड़े कि सर्व मन को सत्ता देकर ठहरने वाला चेतन जीव बड़ा है। सोचो और सँभारो कहा गया है—

(निर्णय सार में इसी विषयक प्रश्नोत्तर कहा गया है)

शिष्य प्रश्न— चौपाई—

कौन जमा है जगत सँस्कारा। जापर होत सकल वैपारा ॥
बिना जमा वैपार न होई। यह तो विदित जाने सब कोई ॥
कोई ब्रह्म ज्ञान बतलावै। कोई योग समाधि लगावै ॥
कोई तीरथ बरत आचारा। कोई काल कर्म विस्तारा ॥
कोई जप तप संयम करई। कोई मूरति पूजा धरई ॥
नाना पंथ नाना गुरुवाई। कौन जमा पर राह चलाई ॥
दोहा—काल कर्म औ कर्त्ता, कौन जमा पर ठहार।
योग सांख्य बेदान्त मत, कहहु सकल निरुवार ॥

गुरु उत्तर—

कहहिं कबीर सुनु सिष्य सयाना। यह सब भरम जाल विधि नाना ॥
जीव जमा एक साँच है भाई। और सबै खर्चा ठहराई ॥
जबहिं ब्रह्म आतमा होई। जीवहिं योग करै सब कोई ॥
जीवहिं कर्त्ता कर्म बनावै। जीवहि काल समय ठहरावै ॥
चार बेद औ नाना बानी। कलिप कलिप सब जीव उतपानी ॥
जेते सिद्धान्त भये जग सोई। सो सब भस जीव की होई ॥

जीव जमा नहिं होय रे भाई। सब सिद्धान्त कौन ठहराई ॥

दोहा – कहहिं कबीर विचारि के, ये निर्णय परमान।
जीव जमा जाने बिना, सबै खर्च में जान ॥

पुनः शिष्य के प्रश्न करने पर जीव जमा सत्य है यह सिद्धांत किसी से गोप्य नहीं। नर जीव ही समस्त सिद्धांतों को स्थापित और धारण करता है अब यह शंका है कि जीव जमा है क्या वस्तु। शरीर मस्तक नाभी प्राण शून्य वीर्य या सब तनमन समुझाय। तब गुरुवर विशाल देव पारख सिद्धांत पुष्टी करण करके कहते हैं। हे भ्रात ?

साखी–मस्तक और दिमाग जो, पंच विषय के कार्य।
पंच विषय भोगत जोई, तेहि बिन सबहिं अनार्य ॥
भोग न भोगै भोग को, सुख दुख जानि प्रयत्न।
शब्द रूप रस गंध जो, सपरस माहिं न यत्न ॥
सुख दुख भोगै नहिं तहाँ, करि भोगन एकात्र।
करि धरि भोगैं भोगना नहिं, जानि मानि दिन रात्र ॥
अविषय चेतन जीव है, मस्तिष विषय को रूप।
अविषय विषय न एक है, दोनों दोय सरूप ॥
विषय विषय जानै नहीं, अपने पर को कोय।
पृथक पृथक ज्ञाता लखै, ज्ञातहिं लखै न सोय ॥
मानि जानि त्यागै गहै, दुख सुख बरबस ठानि।
बिन माने तेहि जीव के, जड़ गुण रहै हेरानि ॥

रूप छोड़ि कोचित्र गहि, चारि विषय जो और।
तव चेतन की बात क्या, जेहि गोचर तजि ठौर ॥
जहँ तक जो संयोग करि, होत रहै कोइ चीज।
चारों भूत के चिन्ह तहँ, तेहिं तजि नहीं लहीज ॥

ज्ञाता धाता जान जो भूत, छोड़ि तेहिं चिन्ह।
शुद्ध स्वरूप स्वतंत्र है, जानि मानि जड़ भिन्न ॥
माया रहित स्वरूप निज, एक रस एकै एक।
जड़ तत्वन के चिन्ह तजि, जानै जान जहेक ॥

साक्षी साक्ष्य होवै नहीं, साक्ष्य न साक्षी होत।
ज्ञाता ज्ञेय त्रिकाल नहिं, द्रष्टा दृश्य लखोत ॥

इस प्रकार सर्व तनमन वचन पिंड ब्रह्माण्ड खानी वानी च विषय सर्व दृश्य गोचर मनोभास का ज्ञाता चेतन ही जमा पद सर्व शिरोमणि है। कारण कार्य जड़ शीत उष्ण कोमल कठिन का द्रष्टा केवल ज्ञान मात्र है इसी जमापद को वेदों स्मृतियों उपनिषदों गीतादि ग्रंथों में स्वयं ब्रह्म कह के सबसे बड़ा पद दिया गया है। "जीवो ब्रह्म व ना परः" जीव ही ब्रह्म है दूसरा नहीं अवधूत वाक्य है। 'तन्मृत्युमुखा— त्प्रमुच्यते—उस तत्व को जान कर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है। कठोपनिषद १।३।१५। मंत्र में कहा गया है।

रामायण में स्वयं श्रीरामचन्द्र जी तारा को प्रबोध देते हुये कहे हैं—

क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा, जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा॥

इस प्रकार जीव जमा को नित्य अमृत शाश्वत अविनाशी सभी मत के विचार दर्शी कह रहे हैं—किन्तु जड़ चेतन का भिन्न भिन्न यथार्थ अनादि सत्य परीक्षा सर्वांग पाये बिना पुनः—कर्त्ता धर्त्ता उत्पति प्रलय अंश या सर्व व्यापकादि की भ्रान्ति में पड़ के उस जमा पद के लक्ष से दूर रह जाते हैं।

"संत हंस गुण गहहिं पय, परि हरि बारि विकार"

हंसो यथा क्षीर मिवाम्बु मध्यात 'न्याय से सर्व परीक्षक सर्व से न्यारा पारख मात्र अखण्ड ज्ञान के समस्त मिथ्या भ्रान्तियों को डाल दीजिये।

एकसम स्वस्थिति रूप कार्य बनाइये, नहीं तो कब कहाँ ऐसा स्वर्ण समय मिलेगा गुरु आदेश है—शुद्ध चैतन्य अखण्ड निर्विकार सदा सम अमृत अपने आप है। ऐसे शुद्ध चैतन्य के एकरस लक्ष–बोध प्रकाश सन्मुख रक्खे बिना कौन ऐसा सज्जन या साधु या मुमुक्षु है कि वह अपने कल्याण की धारा एक-रस चला सके? दुख सुख हानि लाभ मिलना बिछुड़ना मन के तमाम विकार ऐसे हैं कि जो पल पल में डिगाते रहते हैं। उन्हें स्वरूप दृष्टि से ही शान्त स्ववश रख के कल्याण में स्थिर रहा जा सकता है। अतः सदा सत्य चैतन्य बोध मनन करें नित्य सम्बन्ध किसी से नहीं, सिवा क्षणिक सम्बन्ध के। नित्य

सम्बन्ध तो अपना चेतन स्वरूप अपने आपही निर्विकार अखण्ड ज्ञान स्वरूप सदा शांत स्थिर है। इसलिये स्वरूपाकार एक रस वृत्ति को जागृत रखते हुये सर्व पंच भोग वृत्ति का अभाव करते रहने का नाम ही जीवन मुक्ति स्थिति है। स्वरूपाकार वृत्ति प्रतिक्षण विवेक करते रहने से पुष्ट हो जाती है। विवेकी विरागी का साथ विवेक वैराग्य पुष्टक है, सत्य शब्द अर्थ भाव आचरण में तद्गतता ही स्वरूप भाव पुष्ट कर देती है। गुरु उपदेश, सत्संग सद्ग्रंथ निज अनुभव की सहायता से पारख बोध जो प्राप्त हुआ है, उसी को 'घूमि घूमि करतब्य धारण करना ही जीवन्मुक्त का रहस्य है, परमार्थ सुने हुये को सुनना गुने हुये को गुनना इस प्रकार पढ़े, जाने, समझे, आचरे, ध्यान, मनन, किये हुये का पुनः पुनः उसी प्रकार पुनरावृत्ति करना ही नित्य स्वादिष्ट भोजन खा के पचाने वत जीवन्मुक्ति दशा को बलवान बनाना है। सत्य ही को हर प्रकार अपना लेना ही कल्याण भूमि है। सत्य गुरु सत्य स्वरूप सत्य निर्णय, सत्य स्थिति, सत्य विवेक वैराग्य उपासना में आरुढ़, बस प्रारब्धान्त होते ही सदा के लिये अचल, विशेष मनन सत्य चिन्तन से सत्य फल मिलता रहेगा। श्री काशी साहेब रहनी को शब्द में प्रकाश दे रहे हैं 'संतोष क्षमा शान्ति धरिये गुण, विषय तृष्णा बदकार। प्रेम प्रतीति गुरु भक्ति करिये, रहिये परख टकसार ॥जियरा गुरु परख दृष्टि दृढ़ धार॥" इतना कह कर गुरुदेव इस समय शान्त मौन हो गये।

॥सद्गुरु देव की असीमहितैषिता वर्णन॥

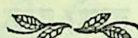
भजन

बहुत कुछ सतगुरु देव दिये ॥ टेक ॥
दया क्षमा संतोष दिये शुभ, बोधविराग विवेक दिये ॥ १ ॥
सहन हितैषी भाव दिये प्रभु, कुसंग त्याग सत्संग दिये ॥ २ ॥
ब्रह्मचर्य आरोग्य अभय पद, सजग महाधन दान दिये ॥ ३ ॥
जड़ चेतन दोउ नित्य अनादि, सत्य बोध प्रदान किये ॥ ४ ॥
जनम-जनम की भूँख कामना, ताको दलि नित तृप्ति जिये ॥ ५ ॥
निर्णय युत सत्ग्रन्थ मनन दे, मन द्रष्टा आधार दिये ॥ ६ ॥
नहिं कुछ शेष रही अभिलाषा, निराधार पद पूर दिये ॥ ७ ॥
प्रेमदास यह देह रहे तक, गुरु उपकार को याद किये ॥ ८ ॥
देह विसर्जन देह न भेंटो, पारख शांत विमोक्ष ठये ॥ ९ ॥

गजल

निज रूप बोध शोध में जो धीर हो गये।
जन्मादि द्वन्द जाल से उत्तीर्ण हो गये ॥ टेक ॥
निज रूप जान मान के अवशेष कुछ नहीं।
अवशेष आप जीव ही थिर जीव हो गये ॥ १ ॥
गुरु कबीर सन्त सब बहु बार यों कहे।
निज रूप माहिं शांतमय बस वीर हो गये ॥ २ ॥
वाह्य चलित लक्ष को अब तोड़ दो परख।
अंतर्मुखी विरागयुत निर्भीर हो गये ॥ ३ ॥

बस इससे अधिक और क्या जो मूल सींच दे।
शाखा वो पत्र फूल फल गंभीर हो गये ॥ ४ ॥
मथ मथ के ग्रन्थ पंथ को संशय को खंडिदे।
जीव जमा जानिके निज हीर हो गये ॥ ५ ॥
आसक्तियाँ मद मोह की संसृत के वृक्ष हैं।
विवेक शस्त्र छाँटि के कब्बीर हो गये ॥ ६ ॥
कहते विशाल देव जी भवयान में यही।
सुन सुन के जिसे प्रेमी जन बलवीर हो गये ॥ ७ ॥



❀ प्रश्नोत्तरी समादत्त ❀

अध्याय-४

॥ विशाल विवेद विन्द ॥

पारख रूप कबीर परम मन तूँ, प्रभु ध्यान लगा लेना ॥
गुरुदेव विशाल के लक्षण ये, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ॥टे०
समता व क्षमा संकोच लिये, मन सोच धरे नहिं द्वेष बने
सब शील निबाहन हार बड़े, मन तू प्रभु ध्यान लगा लेना १
अपराध विशारि के शरण रखैं, सब मान को रक्षि के बोध भरैं
निर्मान बड़े निर्चाह खरे, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना २
वह मार्ग एकान्त को ढूँढ़त हैं, अतियन्त परिश्रम देह थकी
नित संग विवर्जित शाँत दिखैं, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ३

वशि में कोइ के नहिं आप रहैं, सब साथिन को संतुष्ट रखैं
निरधार निराश अभय सजगौ, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ४
मन वेग के चक्कर में पड़िके, नर पाप असीम अनन्त करैं
तिनसे बीचकै क्षमि कै सहि कै, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ५
सुख शांत बिनाशन को रवि हैं, जन प्रेमिन के जिय के जिय हैं
शुभ जो भवयान महान रचे, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ६
दृढ़ धीरज सोच विचार रमे, नहिं शीघ्र उतावल दम्भ रुचै
सब बाधक संग से दूरि रहैं, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ७
व्यवहार सदा शम शुद्ध रखें, न ह वैर व प्रेम के मार्ग बहैं
अस सन्त स्वभाव चरित्र गहौ, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ८
अवतार व सिद्ध गुणी कवि जे, बिज्ञानिन के शिर राजत हैं
करि विश्व विजय मन जीत लिये, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना ९

दोहा—वर्तमान के समय में, इह मण्डल के मध्य।
उदित सूर्य सम तम हन्यो, पारख दीन्ह्यो सध्य ॥१॥
जो कबीर पद संत पद, जो पद अमल अकाल।
सो विशाल पद जानि निज, ध्यावत जन तत्काल ॥२॥

[प्रार्थना]

प्राणों के प्राण गुरु तुमको नमस्कार ॥ टेक ॥
तुम हो मेरे बोध दाता, तुमही तो जीव के प्रेम को निभाता।
तुम्हरे बिन कोइक न होवै निस्तार गुरु तुमको ॥ १ ॥
आप ही निज रूप बताते, खानि बानी दुइ जाल प्रखाते।
ताते गुरु पद में प्रेम बलिहार बलिहार ॥२॥ गुरु तुमको ॥

कुण्डलिया

सतगुरु देव के दरश ते, सकल पाप हो नाश।
दिन दिन बाढ़ै सुमति लख, अन्दर होत प्रकाश ।।
अन्दर होत प्रकाश बढ़ै दिनों दिन शांती।
हृदय कमल बिकाश मिटै दुख दारिद भ्रान्ती ।।
नहिं कोउ देवी देव भूत पिशाच अपर कोउ नाहीं।
नशा जुवा इर्षा कामादिक वैर विरोध बिलाहीं ।।
जड़ चेतन दुइ वस्तु अनादी जानिक भ्रम गढ़ टूटै।
मानुष के गुण धर्म दया जो शीलादिक मन जूटै ।।
बोधक देव की दया से, पारख घर में वास।
सतगुरु देव के दरश ते, सकल पास हो नाश ।।

॥ कुण्डलिया शब्द ॥

गुरु बोध बल निज मिल्यो चेतन स्वतः प्रकाश।
क्षण भर जहाँ बियोग नहीं अजर अमर निज खास।।
अजर अमर निज खास आश दूजे की नाशी।
पंच विषय तन पिण्ड ब्रह्माण्ड सकल दुख राशी ।।
सुख मानव है भ्रांति यथा स्वप्ना को कौहट।
मृग जल बन्ध्या पुत्र बचन लड्डू को लौहट ।।
युवती रूप चिराग बुझत लागत नहिं देरी।
ह्वै पतंग मन मूढ़ नरक हित बलि बलि जात अघेरी ।।
इन्द्री थकि थकि जात मगर तृष्णा ज्वाला आगे।
हाय हाय करि जलत गुरु सत्संग न जात अभागे ।।

ज्ञान की वर्षा कियो गुरु, मन सम्भव दुख नाश।
गुरु बोध बल निज मिल्यो, चेतन स्वयं प्रकाश ॥

[प्रश्नोत्तर विचार]

प्रश्न—सबसे बड़ा दुख क्या है ?

उत्तर—इच्छा वासना उठने का प्रमाण-कामरूप रसादि वासना उठने पर ही तो सर्व अतृप्त चंचलता अन्धत्व भ्रम मोह अज्ञान बिबशता उत्पन्न हो जाती, उनके असन्मुख में नहीं।

प्रश्न—तिस वासना से छूटने का क्या उपाय है।

उत्तर—अन्तर बाह्य एकान्त, स्वरूप स्थिति अभ्यास दृढ़ इत्यादि साधन कहे गये हैं, देखो साखी सुधा के अन्त में ॥

प्रश्न—पूरा मन स्वबश हो जाय वह क्या उपाय है।

उत्तर—आप चाहते हैं-थोड़े परिश्रम या अपरिश्रम से मन सदा के लिये कुचाली छोड़ दे। तो सुनिये ? सहज से सहज साधन बनाने से बन जायगा, करते करते अक्षर अभ्यासवत रस्ता चलनेवत, सब सदाचरणों का अभ्यास करिये। शूल रोगी फाँसी संशय ग्रसित उपाय करते ही रहता है-तद्वत।

प्रश्न- हानि लाभ क्या है ?

उत्तर- मात्र हानि असत्कर्म कामादिक बासनायें, अज्ञान जिससे सर्व दुख खड़े होजाते हैं। और लाभ-सत्संगादि शुभकर्म स्वबश विचार धारा प्राप्त करना बासना अज्ञान बन्धनों का नाश। प्रमाण-हानि लाभ निज जीव की बन्धन छूटन केरि। इस साखी को मनन करो।

प्रश्न—परमार्थ पथ में मन न हिचे, न रुके साहस हीन न बने—यह उपाय कृपा करके कहिये।

उत्तर—साधक-बाधक जिसे सुसंग और कुसंग कहते हैं। उनमें सुसंग का ग्रहण कुसंग का सदात्याग होना, मन में भी बड़े बड़े कुसंग हैं, जो पल में बुद्धीभ्रान्त कर देते हैं। उससे बचने के लिये-सदा सद्गुरु का ध्यान-जप-पठन-मन द्रष्टा का अभ्यास स्वरूप बल स्मृति, निर्णय, इसमें दृष्टान्त—यह है—जैसे भ्रान्त रूपी सुखानदं चाहेकम मिले अथवा विशेष तो भी अज्ञानी मनुष्य विषयानन्द का लक्ष ध्येय साहस प्रयत्न नहीं छोड़ता, परवशता से रुक कर फिर बेगवान होता है तैसे ही इधर निश्चय कर ले चाहे सैकड़ों वर्षलग जाँय किन्तु हम जड़ाध्यास त्याग कर सदा स्वरूप स्थिति दृढ़ करने के ही प्रयत्न में लगे रहैंगे।

साखी—बन्धन छूटन ध्येय इमि, तजि ममता निर्मान।
डरै न सो परिश्रम से, नहि सुख हाथ बिकान॥

प्रश्न—कभी कभी मनोद्वेगों की आँधी मानो अन्ध कर देती है- ऐसा न हो तभी कुशल है, नहीं तो तमाम दिन का परिश्रम क्षण में खाक हो जाता है मैं बिनय करता हूँ। घबराता और उकताता हूँ बहने डूबने से आप ही बचाइये?

उत्तर—इसमें सयंम साधन सावधानता की कमी है कमी अंगो को दृढ़ चिन्वा युक्त गहते जाओ घबराने उकताने का काम नहीं है हाँ दृढ़ ग्लानि युक्त साधनो को पूरा करने का प्रयत्न करते रहो, क्या कोई ऐसा पथ साधन श्रेणी भूमिका है कि

योग्य यत्न न करे, तहाँ ठहरे न, और वह प्राप्त हो जाय ? फिर क्यों । पुरुषार्थ कमी करते हो । अंध होने के पहिले ही सावधान रहो "पंच नियमों को अमृत समान सेवो बस अन्ध न बन सकोगे । पाँचो नियमो को जागृती शिक्षाप्रवाह में विस्तारहै पढ़ो-सत्यज्ञान प्रकाश में भी विस्तारहै मनन कर लो" साखी-दृष्टि परीक्षा चाहिये, अरु कुसंग को त्याग । सुख विषयन में दुःख गुनि, वीर सुसंगहि पाग ।" अथवा त्रिज्या निर्पक्षादि ग्रन्थ और भी पारखी सन्तों के ग्रन्थ सत्संग द्वारा विराग भावपुष्ट कर लो ।

प्रश्न—सूक्ष्म अभिमान त्याग कैसे हो ?

उत्तर— स्वरूप से सर्व भासमान शुभाशुभ साधन वृत्ति पृथक समझ के-उदासीन रहा करो । क्या कोई ठग बीच अग्नि सर्प सम्पन्न होकर प्रमाद करेगा ?

प्रश्न—हर्ष शोक सुख दुख मिलन बिछुड़न-में मैं न डिगूँ यही चाहना आप पूरी करैं-और किससे कहूँ ?

उत्तर—अधिक से अधिक एकान्त प्रेमी बनके द्रष्टापना का अभ्यास करिये इसी का बिवेचन मुक्ति द्वार के शान्ति शतक स्थिति प्रसंग से पुष्ट कीजिये । यदि ऐसा पूर्ण न सधे तो सन्तों के सत्संग से गुरुकी सेवा से और सर्व सदाचारों से ऐसा प्रेम जोड़ो की अन्य लक्ष्य शांत हो जाय, तदनन्तर इसाक्षी दशा पुष्ट हो जायगी ।

प्रश्न--मानसिक कुसंग क्या है ?

उत्तर—जिन मननों से सुखाध्यास पुष्ट हो वे सब मनन,

कुसंग हैं। काम कला का बड़ा बिस्तार युवक युवती का परस्पर क्रिया भोग क्रीड़ा प्राप्ति अपने मन ही मन बिस्तार करके आसक्ति बना कर पुनः बाहरी कुसंग में प्रवृत्ति बढ़ाय नष्ट हो जाना, और क्रोध बेग लोभ मोह मद मत्सर बेग में मनन द्वारे पचते रहना ही मानसिक कुसंग है। यहाँ तक कि शिक्षक को भी शिक्षा करते करते बोलते बोलते सोचते सोचते भी काम का या क्रोध के बेग के बश जरूर-जरूर ही होना पड़ता है, इतना शिक्षक में कमी है शिक्षक हो या न हो सर्व को रोकना चाहिये।

प्रश्न—मानसिक कुसंग का सर्वथा विनाश हो वह क्या उपाय है?

उत्तर—विशेष अपने या दूसरे मन से अपने जीव को अलग करने का अभ्यास बनावे यही एकान्त है एकान्त रहे भी एकान्त जीवन, जिससे पाँचो ज्ञानन्द्री के बिष न भरे।

२—निज स्वरूप का गुण लक्षण मुक्त स्वरूप का सदा स्मृति रक्खे। जिससे अपने को अजर अमर समझ के लड़ने में हिम्मत न हारे निज में स्थित प्राप्त हो।

३—सदगुणों को विवेक फौज में बर्णन किये गये हैं- उनके गुण लक्षण लाभ समझ के याद किया करे जिससे उनके गहने में ढिलाई न प्राप्त हो।

४—सुख को विवेक के पैने धार से मुर्जें मुर्जें काट डाले जिससे कामुक भावना संग प्राणी आदि में कहीं भी सुखाभास न हो

५—मन द्रष्टा के अभ्यास को बढ़ाता रहे जिससे सूक्ष्म स्थित

और दिव्य तथा वैराग्य दृष्टिको पुष्टि होकर जीव निर्वासना रहे

६—निर्णय ग्रन्थ पठन, मुखाग्र सत्य शब्द का पाठ, भीतरी प्रत्येक स्मरणों को अलग करने का विवेक द्वारा चौकसी रक्खे वही विवेक है, नहीं तो नहीं। जिससे मन की दुर्वासना में मिलने का अवकाश ही न मिले।

७—मन पर निगरानी, जिससे कभी असद्भाव न प्राप्त हो सद्भाव जीव का और असद्भाव मन का है मन ही असद्भाव है

८—खान पान बाहरी व्यवहारों की कमी रखते हुये आवश्यकता में हर्ष मद रहित रहे—जिससे सदा मन निर्वासना रहे

९—गुरु संत की भक्ती-जिससे रक्षा और दिव्यदृष्टि प्राप्त होती रहे। अभिमान त्याग होता रहे।

१०—जीव का नित्यत्व, वासना बश पुनर्जन्म, वासना त्याग से मोक्ष स्थिति, जगत प्रपंच अनादि और जड़ चेतन के भिन्न भिन्न गुण लक्षण, गुरु-गुरुवा, काल दयाल के भिन्न भिन्न भेदों का रक्षक--भक्षक आचरणों का ही सत्संग द्वारे जान मान ठहर लेना परम कर्तव्य है। जिससे अपना सत्य ध्येय से कभी चलित न हो। मन कुसंग के सर्वथा नाश करने के लिये ये दस निर्णय सूक्ष्म रूप बतये गये हैं। इच्छा हो तो आप सब धारण करके जीवन्मुक्ति का लाभ लेवैं।

प्रश्न—जगत अनादि, स्वरूपज्ञान, वासना बंध और वासना त्याग से मोक्ष इन सब बातों को निर्णय करने कराने का क्या प्रयोजन लक्ष्य-ध्येय सिद्धान्त है।

उत्तर—जैसे भोजन करने से क्षुधा निवृत्ति-विद्यादि पढ़ के नौकरी चाकरी द्वारा धन प्राप्त होना और धन का उद्देश्य लक्ष्य निर्वाह तथा अधिक अधिक सुख को प्राप्त होना है। उसी प्रकार मानसिन विषयों की तृष्णारूप प्रचण्ड भूँख की तृप्ति होना और इस यथार्थ बोधरूपी विद्या पढ़ के गुरु देव की सेवा चाकरी द्वारा निज स्वरूप महान धन मिलना और स्वरूप बोध के रक्षक व्यवहार आचरण में शील सत्य अहिंसा-ब्रह्मचर्य प्रियवचन-यथार्थ न्याय से निर्वाह करते हुए मनोमय जीत कर स्वरूप ज्ञान में निवासना स्थिरता बना के आप परम सुख शांत होना और जनता समूह को सहज भाव से निर्भ्रान्त शान्त सदाचरण युक्त सुखी करना, यही गुरुपद अंगों को निर्णय करने कराने का प्रत्यक्ष फल लाभ है। यह कौन नहीं चाहता कि मैं स्वतंत्र होऊँ ? क्या विषयासक्ति और मन जीत बिना कोई स्ववश आजाद चैना चैन हो सकता है ? कोई नहीं, क्या कोई अतृप्ति इच्छा की अपूर्ति कबूल कर सकता है ? क्या कोई अभागा मनुष्य पछतावा द्वारा दुश्मनों की बृद्धि चाहेगा ? क्या कोई कुटिल दुष्ट और हिंसकी बाघ सर्पों से अपना रक्त चुसायेगा या अपने को कटवायगा। क्या कोई ऐसा मतिमंद होगा कि आँख मूँद के खन्धक में गिर के हँसै अपना सौभाग्य सुदिन मनावे ? क्या कोई पागल दिवाना चंचल उधमजी मनुष्य बारूद गोलों के बीच में या पेट्रोल की टंकी में चारों तरफ घिरा हुआ फिर तम्बाकू या बीड़ी सिगरेट आदि का तनिक साधन न करके

जरा सी देर में बीड़ी सिगरेट पीकर उसी में डाल दे तो जलते हुए हा हा करके पछता के जल न जायगा। फिर इन सब को अज्ञान या पागल बन कोई करने लगे यह उल्टा देख कर दूसरा उसको समझा बुझा कर सावधान करने लगे। इस पर वह कहे कि तुम्हारे समझाने का हेतु क्या है? तब समझदार कहता है कि भैया। समझने समझाने का प्रत्यक्ष फल है १ आपत्तियों से बच जाना।२—सरल और सुख शान्ति जीवन अपना और समाज का व्यतीत होना। ३—अन्तिम में सदा के लिये कृत कार्य-कल्याण विश्राम मिल जाना। ४—उलटी समझ अज्ञान द्वारा जो दुराचरणों से अनन्त कष्ट होते रहते वह यथार्थ ज्ञान से ही तो छूट कर जीव परम सावधान होकर असत्कर्मों का पागलपन त्याग कर सदा हल्का प्रसन्न स्वस्थ पूर्ण तृप्त हो जाता है क्रोधादि शत्रु रहित परिणाम शोची बन के मन इन्द्रियों के विषयों में न पड़कर अविनाशी नित्य अजर अमर पद प्राप्त हो जाना ५—अन्याय छल दम्भ हिंसा क्रूरता आदि में सर्व समाज बिनाशक है उनका सहज ही त्यागकर यथार्थ पुरुषार्थ में मन लग जाना। ६—जीवन्मुक्त सहित विदेहमुक्त प्राप्त होना इत्यादि जीवन का लाभ ही गुरुपद निर्णय करना कराना चलना चलाना तहाँ स्थिर होना है। प्रमाण—

जो जानै यहि भेद को, भरम हानि पद प्राप्त।
सफल तवै पुरुषार्थ सब, उल्टा मार्ग तजाप्त॥

प्रश्न—कामना उठ के सर्व दुख हमें प्रत्यक्ष भोगने

पड़ते हैं, इस लिये दुख से छूट कर निष्कामता की सदैव प्राप्ति रहे वह उपाय निश्चय साहस स्थित कृपया बताया जाय?

उत्तर---गुरु सत्संग की जितनी आवश्यकता है-उनकी सेवा भक्ति आज्ञा पालन की और सदग्रन्थ पद के पाठ अर्थ मननाकार वृत्ति बनाने तथा साधन सयंम करने स्वरूप ज्ञान मनन करने की जितनी आवश्यकता है, उसको पूर्ण समझ के नेम व्रत प्रतिज्ञा सत संकल्प बना लेवै। अर्थात्-"कामिहिनारि पियारि जिमि" के समान ही अन्तस में सदा पारमर्थिक पुरुषार्थ बना ही रहे, इन पुरुषार्थों में मृत्यु पर्यन्त ढिलाई कमजोरी न आने दे, जिस कोयला पानी से इञ्जन तेज है-उसको न देने से इञ्जन नहीं चलता। इसी प्रकार निष्काम साधन बोध-उपासना सत्य निर्णय का पुरुषार्थ छोड़ने से सदबुद्धि प्रकाश नहीं करती तब जीव अन्ध असूझ बन के सकामी बन के गुरु पद से पृथक हो जाता है। वहिइन्द्रियों से ऐसा सद पुरुषार्थ की स्टीम आवेग भरे कि सूक्ष्म अन्तस में वही सदसिद्धान्त सद उपासना सद वैराग्य भाव नित्य भरता रहे, बस हो चुका, आप इन्हीं सूत्रों को विस्तार से मनन कर लेवैं विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है।

[दिव्य दृष्टि विख्यात-छन्द]

सब संत सदाहि चेतावत हैं, गुरदेव कबीर भि गावत हैं
निज बुद्धि हुँ बोध से दीखत हैं, सद शास्त्र सुग्रन्थ हुँ टेरत हैं १
गुरुदेव विशाल भि शिक्षत हैं, सब सज्जन भक्त भि लक्षत हैं

सब जीवन के दिल बात यही, जेहि भाँति हमें दुख होय नहीं २
कहुँ हानि व विघ्न कमी न रहे, सब ओर से लाभहिं लाभ चहे
सब ऊपर बस्तु को नाहिं चहे. पर आपको भूलि के तुच्छ गहे ३
अस कौन भला निज घात करे, निज को दुख कौन स्वीकार करे
ह्वै अन्ध असूझ परार वशी, अस कौन चहै मोहि शत्रु गंसी ४

[बड़ी महान सुकृती उदय जो संसत्ग मिला]

जहाँ कहीं विवेक वैराग्य युक्त पारखी संत विराजते हैं उन्हीं की कृपा से हम लोगों को उन्हीं का योग साधन सेवा, जप तप, ज्ञान, ध्यान, हम सबों को अवश्य वहि साधन करना सदा योग्य है। सद्उपासना द्वारा निर्वासना होकर स्वरूप स्थिति के तरफ बढ़ना अपने को मुक्तकरना है। भारत जैसा सुस्थल विशेष उत्तर प्रदेश मण्डल व मध्य प्रांत देश में जत्र तत्र निर्ममता पूर्वक विचरण करने वाले परम एकन्त वासी, कभी बागों में, कभी जगलों में, कभी नदियों के तटस्थल कभी ग्राम्य निकट स्थल कभी पैदल पथिक कभी घाम में कभी छाया में बैठे कभी चलते हुये दिखाई देते हैं। साथियों के शंकाओं को जड़ मूल से खोद के ढहाने वाले सब को निर्विवाद, क्षमा-शांत निर्वासना को पाठ देने वाले समता और सजगता से दीन अनारी जीवों के प्रेम को निपाट कर शरण में स्थिर करने वाले भक्त सज्जन सन्तों द्वारा सेवित सब के मर्म को जानने वाले सदा मन इन्द्रियों द्वारा पवित्राचरण पूर्ण निर्मान ज्यों का त्यों कमी बढ़ती रहित

स्थिर पद पर स्थित, पुर्ण ब्रह्मचारी, कहाँ तक कहें, जहाँ चाहिये तहाँ तिसी प्रकार परमार्थ दृष्टि से शीतलता पूर्वक व्रत कर सब जीवों को सत्य सन्देस देने वाले परमविरक्त साधु सदगुरु विशाल देव सब पारखी सन्तो के मर्यादा रक्षक हम सबों को कृतार्थ करने के लिए ही आपका पदसरोज इस क्षिति पर शुभागमन है । क्या आज जैसा अवसर बार बार मिलेगा। ऐसा जान के अपना कल्याण शीघ्र करे वही अपना काम है । वही धन्य धन्य वही जप तप योग उपकार देश सेवा तथा जन सेवा और उत्तम अक्षय स्वरूप ज्ञान यही है जिससे आप पुरुषोत्तम आदर्श रहस्य वान वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु विशाल देव व तदनुसार लक्षण लक्षित संत जन के दर्शन पर्शन सेवा सत्संग सिद्धांत में आरुढ़ होने का मौका निकाला जा सके, आज्ञा पालन करके कल्याण किया जा सके, ।

लाभ कवन बड़ि भक्ति हमारी । हानि न भज्यो मोहि तनुधारी ॥

(विश्रामसागर)

[समाधि दर्शन]

समाधि इच्छुक हो अगर, एकान्त में विचरण करें ।
निर्वासना साधन जगह, स्थीर हो बैठा करें ॥
स्थूल को ठहराय कर, सुक्ष्म मनोभव डाल दे ।
प्राण श्वासोच्छास को, लखि भिन्न हन्ता टाल दे १
प्राण जड़ तम भास सन्मुख, साथ मन भव भास हो ।
प्राण भिन्न बिचारते ही, शीघ्र मन भव नाश हो ॥

निरयत्न स्वासा चल रही, प्रारब्ध के अधार से।
चलत लक्ष जु श्वास युत, लखि भिन्न ताहि उदास से २
तन श्वास मन क्रिय भिन्न लखि, आप ज्ञाता रहि खरे।
अभ्यास जब दृढ़ होय यह, आसक्ति बस तब ना चरे॥
बाहरी मोहक कुसंगों से, सदा दूरी रहे।
ठीक निश्चय परख बल से, साधु प्रिय सद्गुण लहे ३
समाधि इच्छुक हो अगर, एकाग्र वृत्ति बनाय ले॥
निर्वासना पुष्टक सकल, अंगों में प्रीति बढ़ाय ले;
सद्ग्रन्थ अर्थ में लीनता, गुरु भक्ति प्रेम से पूरिता॥
निजरूप शुद्ध स्वतृप्तता, लखि कामना सब ध्वंसता ४

हृदय शान्त तब होगया जब साधन बोध ग्रहणहोगा

शान्त--सन्देश

यदि साधना यह साध ले तो काम सब पूरा बने।
अविचल स्वस्थिति, एक रस सब काम रुज चूरा ठने॥
विद्वता औ मान्यता धन धान्य की न विशेषता।
वैराग्य भक्ती हो न जब तक शान्ति सुख की कहँ पता॥

अपना सुधार-पारख विचार साधु-सत्यपाल साहेब

प्रश्न निःसंदेह सुखी कौन है? उ०-सदाचारी सद्बोधरत पंच विषय विकार त्याग करने वाले १-सद्गुरु को खोज लगाने में २-सत्संग द्वारा जड़ चेतन अनादि जान बूझ के अलग करके स्वबश चेतन ठहरने में सद्गुरु के शरणागत होने में, सहन

करने में निज अवगुणों को त्याग करने में-आदत लत त्यागने में, स्वभाव अच्छा बनाने में, शुभ गुण हंस गुण धारण करने में, हंस गुण या मनुष्य गुण के सर्वांग शुभगुण रहनि पालन या धारण करने में ! नीर क्षीर या जड़ चेतन को निवेरा, विवेक करने में ! सद्गुरु की भाव भक्ति सेवा तन मन वचन धन आदि आदि से प्रसन्नता पूर्वक सर्वांग सेवा भक्ति करके-सार शब्द सार सिद्धान्त पारख विचार जनाने में-विवेक विचार करने में-पारख निष्ठ सद्गुरु से सत्संग करके सत्या सत्य पहिचान के सत्य स्वरूप में शांत होकर जीवन व्यतीत करना ही कुशल मूल है । यथा-चौपाई--

'दूसरे दिन चहुँ भोजन पावै, परवश होय न ऋणी रहावै ।
भजै राम तजि काम कुकर्मा, सोइ जन मुदित न संशय भर्मा ॥

निर्भय स्थान अक्रोध पद

स्वार्थ रहित अक्रोध यह, परमारथ को कोप ।
मनुष्य मात्र को भय हरै, जो यहि बसै पड़ोस ॥

॥ क्षमादत्त की कथा ॥

दृष्टांत--एक ग्राम में क्षमादत्त शर्मा नामक एक मनुष्य सदाचारी गृहस्थाश्रम में शुद्ध नीति पूर्वक रहता था । वह सम्पत्ति शाली था यथा नाम तथा गुण भी उसमें बिराजमान थे । वह कभी किसी पर क्रोध नहीं करता, परन्तु उस के घर के समीप महान दुष्ट प्रकृति के दो चार पड़ोसी थे । वे क्षमादत्त के धन ऐश्वर्य सुख सम्पत्ति को देख-देख जला करते और बात-बात में

सताने की कोशिश करते रहते। क्षमादत्त कभी संतों के सत्संग में जाता, कभी सद्ग्रंथ पढ़ता, कभी सद्अभ्यास में जुटता, परन्तु वे विरोधी लोग भेंट हो जाने पर इसे बड़ी खराब-खराब गालियाँ देने लगते। यदि क्षमादत्त कुछ कहे तो उसे पीट भी देते, परन्तु क्षमादत्त इससे अपना हित मान कर कहने लगता "धन्य है आप लोग! मुझे सताकर सोना के समान शुद्ध बनाना चाहते हैं। सचमुच में आप लोग परम उपकारी हैं। "देव देव गाली आप गाली वन्त हैं। काहू द्रव्य वन्त, काहू शक्तिवन्त, आप गाली वन्त हैं॥ जौन जहि पास होत तौन वाहु दंत हैं! शशा शृंग काहि देत सो विचारिये श्रीमंत हैं।" कईबार वे खोटी प्रकृति वाले मनुष्य सब माल धन क्षमादत्त के यहाँ से चुरा भी लाये। पता लगने पर भी क्षमादत्त ने उन्हों पर कुछ भी कार्रवाई न किया, होनहार होता ही रहता है, धन-जन का यही हाल है, वे आते-जाते ही रहते हैं, परन्तु हमारा सब सुख हेतु क्षमा गुण अटल रहना चाहिये। वह कष्ट परे पर यही बिचार करता कि क्षमारहित असत मार्गी पुरुषों का स्वभाव तुच्छ होता है। पानी भरे लघु कटोरा में जरा सा कंकड़-पत्थर पड़ जाय तैसे ही खलबला कर पानी गिरने लगता है। क्षमावान पुरुष का स्वभाव समुद्र के समान गम्भीर होता है, चाहे उसमें विविध विघ्न रूप पहाड़ के पहाड़ आ पड़ें तो भी वह घटता-चढ़ता नहीं। ऐसे ही क्षमादत्त की दशा थी। संयोग बश वे खोटे प्रकृति वाले अत्यन्त दरिद्रता से

व्याप्त हो भूखों मरने लगे ! यह देख क्षमादत्त को क्षमायुक्त दया आई और उनके अपकार को बिलकुल भुला करके। उन्हें भोजन वस्त्र से पालन कर उन सबको कुछ उद्यम में लगा दिये, फिर भी वे निर्दई लोग क्षमादत्त को सताना नहीं छोड़े-कुछ शक्ति पाते ही फिर सताना आरम्भ कर दिये। क्षमादत्त कुछ दिनों से शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा था, जिससे उसके पारमार्थिक विचार बढ़ते जाते थे। अब आगे का हाल सुनिये पूर्व राग दशा में उत्पन्न क्षमादत्त के एकी पुत्र था जो बारह वर्ष का था वह खेलते-खेलते पास के बन में पहुँच गया, इसे अकेला पाकर वे खोटी प्रकृति वाले पड़ोसी पुत्र को जान से मार कर एक दो आभूषण था सो ले लिये। कुछ ऐसा संयोग बना कि उधर ही चरवाह लोग दूर से ये तमाशा देख रहे थे वे जाकर गाँव में हल्ला मचा दिये। गाँव के सब लोग दौड़ आये सबों ने देखा तो क्षमादत्त का पुत्र है। खोज करने पर ठीक-ठीक ज्ञात हुआ कि अमुक-अमुक बिरोधियों ने इसे मार डाला है। अतः गाँव के पाँच-पंच मिलकर इन खोटे मनुष्यों को रस्सा से बँधवा दिये। इतने में आस पास के चार छः गाँव के मनुष्य आगये गाँव के अन्य मनुष्यों ने क्षमादत्त और उन दुष्ट प्रकृति वालों का सब हाल पंच लोगों से बयान किये, सब लोगों की राय हुई कि इन दुराचारी मनुष्यों के हाथ पाँव काट डाले जायँ अथवा ये जान से मार डाले जायँ, या नदी में पत्थर बाँध कर ये दुष्ट डुबा दिये

जायँ क्यों कि ऐसे सरल संत पुरुष को इन लोगों ने सदा सताया है। इतना सुनकर क्षमादत्त एकाएकी घबरा के रोने लगे, अपने दुख से क्षमादत्त कभी आँसू न गिराये थे परन्तु आज एका एकी आँसुओं की धाराएँ बह रही हैं। लोगों ने कहा ए महान पुरुष! धीरज धरिये, पुत्र अब गया आने वाला नहीं, पुत्र का मोह करना व्यर्थ है। क्षमादत्त बोला-मुझे पुत्र का शोक रंचक नहीं है क्योंकि सब जीव अपने अपने कर्म भोगने वाले पंथी हैं। उनका एक जगह रहने का नियम नहीं। मुझे दुख इस बात का है-एक तो ये बिचारे अपनी दुर्बुद्धि कृत नीच कर्तव्य करके नीच संस्कार से रात दिन बेचैन भयभीत हैं। दूसरे आप लोग उनको मार डालने या हाथ काटने का विविध कष्ट देने को कहते हैं मेरा नाम क्षमादत्त आप लोगों ने रक्खा है, क्षमा में तो अपने को सुख शांति सुबुद्धि मिलती ही है, साथी को भी वैसा ही होना चाहिये। परन्तु आश्चर्य है कि मेरे इन स्वजाति साथियों के लिये ऐसा दुख मय क्यों परिणाम होना चाहिये? पाँच पंचों ने कहा—ये आप का दुश्मन है या साथी? क्षमादत्त ने कहा—पढ़ाने वाले तथा धन की रक्षा करने वाले को आप लोग साथी मानेंगे या दुश्मन! पंच बोले-हितैषी साथी ही माना जायगा। क्षमादत्त बोले-फिर ये मेरा हित करने वाले साथी क्यों नहीं। पंच बोले-क्या आप पागल बन गये हैं? ये लोग हित किये हैं या पग-पग में आपको कष्ट दिये? क्षमादत्त बोला-सब की दृष्टि

में अवश्य हम पागल हैं। परन्तु हमारा निश्चय है जो दूसरे को मन-कर्म से पीड़ा पहुचाने का संकल्प तक नहीं करता, उसको दूसरे की तरफ से कष्ट मिल ही नहीं सकता और जो मिल रहा है, वह अपने शरीर का प्रारब्ध भोग है, उसे हर हालत में भोगना ही पड़ेगा। दूसरी बात नित्य सद्स्वरूप से पृथक सब उपाधि पूर्ण वैसे ही हैं जैसी दशा जो कुछ आप दुनियाँ में देख रहे हैं। देह धर के शत्रु-मित्र, हानि लाभ, अपन-परार, राग-द्वेष, दिन-रात के समान आया-जाया करते हैं। परन्तु धीर पुरुष उसमें क्रोधित नहीं होते। तीसरी बात- क्षमायुक्त सब दुख द्वन्द सहन करके मनुष्य दुनियाँ को दुख पूर्ण अनुभव करता, जिससे उस दुख मंदिर के भीतर से प्रबल उपरामता वैराग्य, विवेक ये सब साथी मिल जाते हैं। चौथे-उद्वेग गत सहन ही स्वरूप स्थिति के समीप है, स्वरूप स्थिति सर्वो- परधन है। पाँचवें-शोक यह है कि जिस कारण से दुख पहुँचाने वाला दुख पहुँचाता है उन कारणों की पुरौती नहीं कर मिलती और वे अनहोनी को होनी मानकर एक तो वैसे ही सब द्वन्द भोगने वाले हैं। दूसरे हम लोग जान बूझ के उन्हें क्यों कष्ट दें? ऐसी बातें सुन कर पाँच पंचों ने कहा फिर आप की क्या राय है? उन दुराचारियों को क्या दण्ड दिया जाय? क्षमादत्त ने कहा—आप लोग करेंगे? सबों ने कहा—हाँ! हाँ! अवश्य। क्षमादत्त ने कहा—आप लोग इनको बंधन से मुक्त कर दीजिये और इन्हें हमारे घर की कुछ सम्पत्ति दे दीजिये, शेष में

हम निर्वाह कर लेवेंगे। लोग आश्चर्यित होकर बोले—आप क्या कह रहे हैं ? क्षमादत्त—हम जो कुछ भला—बुरा कह रहे हैं "हमारे संतोष के लिये, कर रहे हैं अतः हमारी तरफ से आप लोग वैसा ही कीजिये। आप लोगों की समझ से और मेरी समझ से बहुत-बहुत अन्तर है। आप लोग ने स्त्री पुरुष पुत्र घर धन, मान बड़ाई को सत्य-सत्य समझ के दाँतों से पकड़ रक्खा है, इसकी हानि होते ही जरा भी आप सह नहीं सकते, शीघ्र ही क्रोधित होकर जान देने पर तैयार हो जाते हैं परन्तु हमारी दृष्टि में ये पदार्थ तृण के समान हैं जिनको त्याग कर हम क्षमादि सद्गुणों को पुष्ट करते हैं। बहुत कहने से क्या ? आप लोग वैसा ही कीजिये। पंचलोग उन दोनों को बन्धन से खोल दिये और कुछ आधी सम्पत्ति देने को तैयार हो गये। परन्तु यह पूर्व सब सम्वाद नीच प्रकृति वाले सुन ही रहे थे, जिससे उनका पत्थर सा कठोर हृदय पानी-पानी हो गया और वे लोग पाँच पंचो के आगे रोते हुए बोले—अहो ! हम लोग अब कभी क्षमादत्त के साथ ऐसा न करेंगे' हम लोगों को दण्ड अवश्य मिलना चाहिये जिससे हमें चेत रहे। हाय ! एक तो हम वैसे ही दुर्बुद्धि से महान पाप करते रहे, दूसरे इन उपकारी पुरुष का धन-माल लेकर हम लोगों का कहाँ ठेकाना लगेगा ? ऐसा कहते-कहते क्षमादत्त के पैरों पर वे दुर्जन लोग गिर पड़े। क्षमादत्त उन्हें एक-एक को हृदय से लगा कर बोले—आपलोग क्यों दुखी हो रहे हो ? शुद्ध जीव ही तो हो परन्तु देह इन्द्रियों

के साथ से यह विपरीत निश्चय आप लोगों को हो गया है, इससे क्षमावान की तो कोई रंचक मात्र हानि लाभ नहीं क्योंकि क्षमा के पास बाहरी हानि के दर्शन का गंध तक नहीं होता। उसकी हानि कोई करे तो क्या ? ऐसे ही सब प्राणी–पदार्थ बिछुड़ ही जाते। क्या वे एकरस हैं ? कभी नहीं। हाँ ! अपना ज्ञान स्वरूप एक रस अचल है तिसको कोई किसी प्रकार भंग नहीं कर सकता। इत्यादि वचन सुनकर उन दुर्जनों की मुंदी आँखे खुल गई। उस दिन से वे सब उनके सच्चे सेवक बन गये, और अपने पाप कर्मों पर पश्चाताप किये। सब लोग दंग रह गये। वास्तविक क्षमा की महिमा उस दूध से भी उज्जल है जिसे कि खूब तपाते पुनः जमाकर मथानी से खूब प्रहार दे के मथ तिस पर भी उन प्रहारों को सहता हुआ प्रहार कर्ताओं के लिये वह उसमें से स्नेह रूप घी ही देता है।

"संत असंतन को इमि करनी, जिमि कुठार चंदन आचरनी।
काटे परस मलय सुनु भाई, निज गुण देइ सुगंध बसाई॥

इससे भी बढ़कर क्षमावान होते हैं। जैसे क्रोधी का सारा तन मन धन असहन प्रमाद के लिये है, सब कुछ जाय पर अपनी हठ रहे। तैसे ही क्षमावान की सारी सम्पति सहन क्षमा के लिये है। मान-धन, पूज्य-प्रभुता सब कुछ अपने भले छूट जायँ पर अपने भीतर तीनकाल में किसीको मन कर्म वाणी से कष्ट देने का भाव न उठे, उल्टे दूसरे के ही दुखों के छुड़ाने पर ध्यान जुट जावे, ऐसे पुरुष ही निर्मल श्रेष्ठ सुख शांति का

अनुभव करते हैं। कहा भी है--

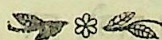
क्षमाशील धारण किहे, दुर्जन को न उपाय।
पावक तृण नहिं पाय तो, आपे सो बुझि जाय॥
जरी बरी बहु दिनन की, गई क्षमा के पास।
सबै अंग शीतल भये, अब कछु रही न आश॥

॥ क्षमाप्राप्ति हेतु गुरुदेव से प्रार्थना ॥

हाथ जोड़ गुरु पद में पड़कर रजकण माथ में मलता हूँ।
गुरु प्रसन्न अनुकूल होइये रहनी ऐसी चहता हूँ।
क्षमाशील सद्‌गुण भर जावें जिससे स्थिति लहता हूँ।
जीवन होय सफल तब मेरा प्रेम भक्तिपथ गहता हूँ॥
क्षमा गहि कुसंगति त्यागै, सोइ पद शान्ति सदा अनुरागै।
सार-कुसंग त्याग, बिचार अनुराग क्षमा धार। दुर्गुण को टार॥

स्वार्थ रहित अक्रोध यह, परमारथ को कोष।
मनुष्य मात्र को भय हरै, जो यहि बसै परोस॥

टीका--स्वार्थ-विषयासक्ति मोर तोर रहित अक्रोध है अर्थात् धन, जन, इन्द्रिय सुख, हानि में संतोषवृत्ति रखने से ही अक्रोध ठहरता है, सो अक्रोध परमार्थ का तो कोष-खजाना ही है! इससे कि अक्रोध में सब सद्‌गुण ग्रहण हो जावे हैं। नर नारी, गृहस्थ विरक्त नीच ऊँच कोई भी क्रोध रहित दशा धारण करे तो उसके डर भय का लेश भी न रह जावेगा, जो कोई भी अक्रोध के छत्र छाया निकट जावे।



उत्कण्ठात्रयोदश रहस्य केन्द्र चार दृष्टान्तविभातिज

अध्याय–५

(विशाल विवेक विन्दु)

(ममता मोह निवारण उपाय लीजिये)

[गुरु वाक्य]

प्रश्न- --प्राणी पदार्थ वियोग जनित मोह कैसे दूर हो

उत्तर–जो छुटने वाला है वही छूट जाता है अपने आप नहीं। जैसे घड़ी या पैसा खो गये लूट गये, खर्च हो गये, नहीं मिले या नहीं रहे, दूर हो गये या नष्ट हो गये तो उनका कर्त्ता मैं भी खो गया, खर्चा हो गया अथवा हम नहीं रहेंगे या हम से दूर या नाश हो गये–कदापि ऐसा सम्भव नहीं क्योंकि निज-निज से दूर नहीं होता, अतः स्वरूप बोध के मनन द्वारा ही सर्व मोह जनित चिन्ता शांत कर देना चाहिये।

[कर्तब्य स्मृति पदावली]

पारख पद में चलने वालो, सन्त गुरू पद याद रहे।
नर तन मध्य सुधरने वालो, तारण तरण सु याद रहे॥ टेक
परम तोष निर्चाह स्वरूपम, दृढ़ विवेक वैराग अनूपम।
तम तामस को दमने वालो, मनो चाल हनि याद रहे १
देह को पालन शुद्ध दशा से, यथा उचित शुचि लोक प्रथासे।
बोध प्राप्ति फल लहने वालो, गुरु आदेश सु याद रहे २

बोध रहस्य में नहीं पछड़ना, आज काल दो पल में मरना,
हंस वृत्ति गुण गहने वालो, शील क्षमा गुण याद रहे ३
शुभ संतन की सम्मत गहना, निज पद दृष्टि सम्हल के लहना।
जीवन्मुक्ति के लहने वालो, प्रेम स्वतः पद शांत रहे ४

धारण सहित हम अपने मन और इन्द्रियों को शांत रखकर आरब्ध कृत दुख गरीबी पन जैसी हो, तैसे ही यथा तथा-सन्तोष पूर्वक भोगते हुये अंतःकरण की सुद्धि के कार्य में लगे पगे रहेंगे उनसे कई गुना अच्छे रहेंगे यहि धारणा रह के सज्जन पुरुषों को यही बनाना चाहिये अपने अपने देह व्यवहार का फैलाव देह भोग, देह रोग का टहल, आशा को पूर्ति के कार्य तो करते करते कभी किसी को छुट्टी मिली नहीं मिली तो भी सब आसक्ति बढ़ा रहे हैं यही अज्ञान है। जगत प्राणी इसी में अस्त व्यस्त पस्त मस्त है। इनके मोह से समय निकाल कर यदि हम नित्य २–३–४ घंटे मनो शांती वासना विजय करते करते कल्याण कार्य में यदि अटूट लग जायँ। तो हम नदी में तैरने वत या नौका पर बैठ के पार पाने वत स्वरूप में शांत हो रहें। नहीं तो हमरी हानि होगी, हर्जा खर्चा लगेगा, तृष्णा बढ़ेगी इससे हानि रूप पंच सुखाशक्ति त्याग कर लाभ रूप ज्यों का त्यों सत्य स्वरूप स्थिति कर्तव्य है सोई नियम फिक्र सहित विशेष चाव से सबको करते रहना चाहिये।

कवित–जोई जोई फुरना उठत उरमाहिं वेग ताहि देखि देखि कर तहाँहि बिठाइये। वासना प्रवाह बेग बहिये न ताहि माहिं पारख

स्वरूप दृष्टि मन को मिटाइये। औषध समान तौल तौल व्यवहार राखि बोध हूँ के पीछे करतव्य यहि चाहिये ॥ १ ॥ इति ॥

प्रसंग-[पारखी सन्तों द्वारा-पारख स्थिति हेतु, अनेकों प्रसंग वर्णन] हुवा है तिसमें आज हंस के आठ गुण वर्णन किये जा रहें हैं]

साखी-सकलो दुर्मति दूरकर, अच्छा जन्म बनाव।
काग गवन गति छोड़ि के, हंस गवन चलि आव ॥

जीवन मुक्त के लक्षणः-स्वरूप में तो एकरस स्थिति हेतु ही संत महात्मा तथा इस प्रयत्न में लीन, जिज्ञासु भक्त, मुमुक्ष का लक्ष रहनी रहस्य, बोल, चाल, बर्ताव, निश्चय सर्व परख परख के यथार्थ की तरफ हुआ करते हैं। और दृढ़ भावना क्यों त्यागें? स्वरूप शक्ति को भुलाने से ही तो ये सब आपत्ति हैं। अत बारम्बार संसार दुख द्रष्टा के अभ्यास में ला ला कर परमार्थ में ही सुख लाभ स्थिति मनन कर परमार्थ ही में टिकाने का निश्चय करने से सर्ब विघ्न अपने आप हट जाते हैं। सुख न मानना तवही निराश निवृत्ति निराधार अपने स्वरूप को प्राप्त होगा स्वरूप से पृथक्क कोई भी पदार्थ का अभिमान बोझा लाद कर वृथा राग द्वेष प्रपञ्च कामना में पड़-कर गुरु पद से पतित होना नहीं चाहिये।

गुरु सीढ़ी से ऊतरे ......॥

हे शिष्य गुरु पारख अपनावो। जाते ठहरि हंस पद पावो ॥

पंथ ग्रन्थी ॥

अपने को जैसा बोध प्राप्त हुआ है, उस पर ठहर रहने के लिये दया शील सन्तोष, क्षमा हंस रहनी आदि धारण करने पर और अपने अवगुणों को त्याग करने के लिये हमेशा यत्न करते रहना, इसका नाम है. लगातार एकरस कार्य करते रहना। हे मुमुक्षु जनो। इतने घेरे में रहना चाहिये। १–खान पान में साधन करते रहना, अधिक देह को सुन्दरता गठन की कामना से रसदार की आसक्ति से सभी विकार और राग द्वेष खड़े हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष है। २–पहिरने, ओढ़ने आदि समय अनुसार कपड़ा पात्र रखना इससे विशेष चमक दमक की क्या आवश्यकता सादा मोठा आवश्यक मात्र पात्र से काम चल जायेगा। अधिक गन्दे, भद्दे और विशेष चमक दमक दोनों उपाधि मूल हैं मध्य वर्ती वही शांत मय है।

दोहा–चमक दमक सुख छोड़ि कर, दोही रूप बिगार।
देखि न कोई मोहि हैं, ना होवे लगवार ॥१॥
शुद्ध सात्विकी पात्र पट, शुद्ध अचार विचार।
विच्छेप रहित तन भूमि गृह, गंध सँभारि सुधार ॥२॥

३–संग दोष से अपने को वैसे ही बचते रहना जैसे आवश्यक में भोजन बनाते हुये भी आग से बचना। ४–समय समय पर सत्संग और विरागी सन्त दर्शन इस लिये करते रहना कि।

नित खर सान लोहा घुन छूटै, नित की गोष्टि माया मोह टूटै।

५–अपने से विशेष साधन युक्त स्वरूप स्थित पारख निष्ट

संत गुरु से दूर दूर रहके-सामन्य वर्गों में सदा भ्रमते रहने से विवेक विराग बली हो तो भी बलिष्ठ नहीं होता। अथवा स्वयं विवेक वैराग्य में एक जगह विशेष दिन न रहना भ्रमण करते रहना, अथवा रहने के स्थान में आसक्ति रहित रहना। दोनों के हानि लाभ को सन्मुख रखना। इससे कहीं भी बन्धन न बनेगा॥

दोहा–विरक्त बोधै देह निज, मैथुन त्यागै अष्ट।
ठहरै रमता भूमि पर, बोधि कालता कष्ट॥
पंच ग्रन्थी॥

६–न तो बैर ही बढ़ाना और न तो–दूसरे के अंतःकरण खींचने में अधिक पड़ना। समता से अपने को सब से पृथक समझना (तजो जग बैर प्रेम दुख दाई॥) ७–पंच विषय आदि में दोष दर्शन देखते रहना अपने स्वरूप में स्थित रहना। करि हरि मीन कुरंग पतंगा। इक इक बशि बिसरत सब अंगा॥

८–दृष्टापना बनाना। दुसरे से सेवा लेने का भाव त्याग करना, सन्त गुरु इष्टदेव के मन कर्म वचन धन से सेवा करते रहना, सदगुरु के मनसाय अनुकूल चलना।

दोहा–इच्छा सेवा लेन की, दीजै सबहीं त्याग।
तब सुख लहे विराग को, मोह नींद से जाग॥

इन रहस्यों के धारणा बनाने में 'महिमा आहि विराग की पाई तन करि धूरि॥ ९–ठहर करके मनन सहित निणय के सद्ग्रन्थ देखना। इससे चित्त की चंचलता दूर होगी, जो

चंचलता शांत दशा में नितान्त बाधक है। १०-सेवा, भक्ति करने में आलस्य रहित श्रद्धा सहित करते रहना। जब तक तन मन का सम्बन्ध है, तब तक पतन होने का भय है। इसलिये सेवा भक्ति रूपी प्रबल मित्र रखना। पार वही होता है जो पारख प्रभु से मदान्ध नहीं होता। ११-काम, क्रोध, लोभ मोह, भय, आसक्ति आदिकों के केवल एक अंग ज्ञान मात्र कथन से जीतने का अंह भाव न रखना प्रत्युत सर्व अंग मनुष्य के गुण लक्षण सहित रहना परीक्षा दृष्टि विवेक, विचार वीरता, वैराग्य सहित, और दाँव पेंच सहित माया पदार्थ से अपने को बचना चाहिये।

दोहा-सनमुख भिड़त पछारती, गरज से दीन बनाय।
दावानल सादृश्य है, परसत देय जलाय॥

१२-तितिक्षा श्रद्धा समाधान, मुमुक्षु दशा आदि धारण करते रहना। १३-परमार्थ साधनों में अपने दर्जा शक्ति को हिसाब लगा करके तिहद्दा (साधन) बनाना और उसी के अन्दर रहना, इन तेरह घेरे के बाहर न जाना, जो इन घेरा केन्द्र मध्यान्तर्गत रहेगा- उसका अवश्य कल्याण होगा और जो अपने को स्वतंत्र समथ समझ कर इस परिधि-घेरा के बाहर जावेगा वह पतन भये बिना नहीं रहेगा, इसलिये अपने को वासना वश समझ कर सम्भलते रहना, घेरे के बाहर न जाना मुमुक्षुओं का परम पुरुषार्थ और कर्तब्य है। गुरु सीढ़ी यही है। केन्द्र कहो घेरा कहो विश्राम धाम ये ही रहस्य हैं॥

सकल कामना छोड़ि के, पारख पद पर थीर।
जुटै न पावै और कोइ, राखि बिरति के भीर॥
मानुष देह दुलभ संसारा। जाते आवागवन निवारा॥
संसय सब जग खण्डिया, संशय न खण्डे न कोय।
संशय खण्डे सो जाना, जो शब्द विवेकी होय॥ बी०
निर्णय सो सबके हितकारी। जेहि परसे जिव होय सुखारी॥
(पंच ग्रन्थी)

१–दृष्टांत–कुछ दुख स्मर्ण कर एक मनुष्य रोता था, वहाँ एकांत स्थल था दूसरी ओर अर्थात् उसके पीठ, पीछे एक बड़ा भारी भयंकर सर्प फण को फनफनाते हुए, मनुष्य को डसना चाहता था–कि इतने में उसकी दृष्टि उधर घूम गई–वह झट जान लेकर भागा। गिरते परते हाँपते काँपते बड़ी दूर जाकर मार्ग में ठहरा-उसी बीच एक संत आ गये। संत ने कहा–तुम दुखी क्यों दीखते हो। वह मनुष्य पहिले के दुख को बताते हुये फिर सर्प दुख का हाल बताया। संत ने कहा—इससे यह अनुभव ज्ञान करो कि तब तक अल्प ही विशेष प्रतीत होता है, जब तक विशेष का आगमन नहीं होता, जब विशेष दुख आ गया, तब उसकी निर्वृति जीव करना चाहता है। यों ही स्त्री मर जाने पुत्र न हो धन मान बड़ाई नष्ट होने देह रोगी होने से सब दुखों को अल्प ही हैं बार बार देह धरने और छोड़ने के महान कष्ट के आगे यह देह संयुक्त सर्व दुख एकबार नहीं बल्कि बारम्बार प्राप्त होते रहते हैं। अतः समझदार मनुष्य अपने और

अन्य के मायिक अल्प दुखों से दुखी न होकर अपने लिये बार बार देह धारण करने रूप दुख को, भयंकर सर्प से भयभीत हो जगत सुखों से एक दम पीठ देकर जगत प्रपंच से भाग कर ज्यों त्यों सत्साधन द्वारा गुरू मार्ग पर ठहर कर अपनी जान बचाते हैं। और इस अज्ञान और अज्ञान जनित भयंकर जन्म मरण सर्प दशन से बच जाते हैं। इसलिये भवयान में कहा है:—टीका सहित खूब मनन करो। "भ्रम भूल संशय शूल दलि सुखध्यास तजि निज का रहै। तजि पराई भास जड़ पारख स्वतः रखता रहै" इसकी टीका विस्तार सहित भवयान में पढ़ो और ग्रहण करो॥

२–दृष्टांत–एक सत्संगी का मित्र ने अपनी देह का खुब फैसन बनाय नित्य बड़े भारी दर्पण से अपनी सूरत देखकर घन्टों मग्न होता, और बाल वस्त्र आदि संवारने में बहुत अमूल्य अवसर खो देता अपने काम धाम में ढिलाई रखता सत्संगी मित्र यह बात जानकर एक दिन उसका दर्पण कहीं दृष्टि ओट रख दिया—वह नित्य समयानुसार दर्पण के पास गया, तो वहाँ दर्पण है ही नहीं तब तो वह बहुत दुखी होकर मित्र के पास उदास बैठा रहा। सत्संगी मित्र ने उसके दुख का हेतु पूछा वह दर्पण गायब की सब बातें बताते हुय घबड़ाने रोने लगा सत्संगी ने कहा। हे मित्र! देखो तुम्हारी देह मिट्टी पानी आदि की बनी क्षणभंगुर रग रग मलीन दुख पूर्ण है। विचार तो करो पहिले तुम छोटे-छोटे लड़के थे अब मोटे बड़े हो गये धीरे धीरे वृद्ध

होकर अन्त में यह शरीर तत्वों में मिल जायगा और तुम इसके द्रष्टा जीव पुनः इसकी बासनानुसार देह धरोगे तब तुम्हें फिर देह श्रृंगार में दुखी होना पड़ेगा। अतः तुम ऐसा काम क्यों न करो जिससे तुमको खास सत्य अपने स्वरूप का ज्ञान बोध होकर तुमको अनन्त सुख अनुभव होवे। जब चमड़ी मिट्टी की विजाति देह में इतना सुख तो वास्तविक शुद्ध स्वरूप जानने में अनन्त सुख क्यों न मिलेगा। अवश्य-उसे पारखी सद्गुरू सत्संग रूप दर्पण से विवेक दृष्टि से सबसे पृथक अपने को सर्व परीक्षक देख कर स्थिर रूप परम सुख शान्ति का अनुभव करो। देखो भवयान में कहा है—"यह जड़ देह जीव के सनमुख"। इसकी टीका विचारने से तहाँ देखो-और बारम्बार दृढ़ अवलम्ब करो जिससे स्वरूप ज्ञान युक्त अथाह सुख शान्ति मिले॥

३—दृष्टांत—दो मनुष्य लड़ते थे, तीसरे मनुष्य ने कहा भय्या गम खावो लड़ने वाले में से एक मनुष्य ने कहा गम खाय वो जो डरपोक कमजोर या कमजोर दिल हो। हम लोग वैसे नहीं—ऐसा कहकर दूसरे लड़ने वाले को वह जान से मार कर भाग गया। मृत्यु पुरुष के साथी बराती दौड़ आये सरकार में मुकद्मा चलाये। भागने वाला वांरट से पकड़ा गया। लड़ते लड़ते मारने वाले को फाँसी का हुक्म हुआ अब वो एक एक आँसू बहा बहा कर फाँसी पर लटक रहा है। इससे तो अच्छा समझदार पहिले से कमजोर डरपोक बना रहे जिससे कि कधी

झगड़े में भी न पड़े कोई उपाधी (खैंहश) भी न लागे। देखो भवयान में विस्तार से क्रोध न करौ बुद्धि भ्रम होई-इसकी टीका मनन करो और दया क्षमा धारण करो ॥

(परिणाम दर्शी बनो)

४—दृष्टांत-दो मनुष्य परदेश गये ! अपनी बुद्धिमानी से लाख लाख रुपये की माहवारी में नौकर हो गये—एक तो घर का अमीर आराम तलब था। दूसरा गरीब। अमीर घर पर रुपिये की आवश्यकता न समझ सब रुपिया दुनियां के नाच रंग ऐशो विलाश सिनेमा मद्यादि ब्यर्थ लतों में खो देता। दूसरा खास देह गुजारा मात्र द्रब्य खर्च कर बाकी सब रुपियों को सावधानी से एकत्र करता कई वर्ष के बाद दोनों की नौकरी छूट गई-दोनो घर को आये असावधान अमीर की नौकरी का द्रब्य सब वहाँ ही उड़ गया था और कर्ज लेकर आया था यहाँ घर पर उसके गरीबी दरिद्रता ने डेरा कर रक्खा था अतः अपनी असावधानी से भूखों मरने लगा। सड़ियल कुत्ते के समान अन्य आदतों के वश तड़फते और पछताते ही उसके दिन कटते रहे। और दूसरा जो कि पहिले गरीब था वह अब बली धनी तथा धन से धर्मानुसार सुखी हुआ यह सावधानी और आराम तलबी एवं विलाशों से वचने का महान फल है। अतएव भययान की बात स्मृत रक्खो 'लतन बनावै रहै मनमारे।

(भौतिक देहाभिमान ग्रन्थिछेदन के लिये एक तीव्रशस्त्र-शुद्ध चैतन्य अहंका भान)

देह—इन्द्रियानन्द—अहं-मैं हूँ-यह अबोध दृष्टि जैसे सर्व सुखाशक्ति करके ग्रंथि बंधन रूप है। तैसही उसके उलटे स्वरूप दृष्टि रखके नीरीच्छ होते हुये मुक्त शांत रूप है।

वासनत्रों, कामनाओं, उलझनों के विघ्नों को दमन करते रहें। भूल की धारा मध्य बहते रहने से भूल सहज ही प्राप्त है। निर्मूल होने के लिये छोटे बालक के पुष्ट होने वत कुपथ, काम, क्रोध, लोभ मोह मद मात्सर्य इर्षा राग द्वेष तृष्णादि मन रोगों का आक्रमण हमारे ऊपर कितना है। और मैं कितना उनको स्ववश करके शांत रहता हूँ। यह भली प्रकार दृष्टि में रख कर जीवन पर्यन्त-सत्साधन पथ पर चलते रहिये हमारा स्वरूप निःसम्बन्ध निर्विकार है, निर्भय निराधार है। क्यों कि तन मन प्राणी और सर्व दृश्य भास का देखन हार जानन हार सर्व से पृथक केवल शुद्ध है। अहो—धन्य धन्य मेरे सौभाग्य हैं जो कि गुरु कृपा से इस विश्राम ठौर को मैं पाया हूँ।

(एक बात ग्रहण से परमपद की प्राप्त कीजिये)

खाते पीते, चलते घूमते सोते जागते उठते हर समय, हर हालत में स्वरूप बोध की स्मृति रहे। ये ही एकरस रखने से विजय प्राप्त होता है। इसे एकरस रक्खो। यही एक बात

ग्रहण है ।। यह महान वह संपति है। जिससे कोई भी कामना कष्ट नहीं देती ।

(गुरु निर्णय की ओर मनन-महन्ता ग्रहण करना ही जीवन्मुक्ति है)

जिसका अधिक मनन होता है वही पुरुषार्थ बन के तदनुसार फल भी प्राप्त होता है। अतः निर्विघ्न गुरु मार्ग के मनन में लगें रहें। और सकल प्रेमी वर्गों को चाहिये कि नित्य नित्य सत्य निर्णय शब्दों का कमल भ्रमरवत रस पान करने में न थकें न उबें अपने में कितने अवगुण हैं। तिसके त्यागने की चेष्टा उसी प्रकार करें जैसे नित्य बर्तन पात्र-माँज माँज के स्वच्छ रक्खा जाता है ।। स्वभाव प्रियकर होने से छोड़ा नहीं जाता, बारम्बार जब हानि देखा जायगा तभी भाव त्याग होंगे यहाँ ऊबने की गंधभी न लीजिये-लगे ही रहिये चाहे लाखों बार भूल हो-पुनः उठिये-निज स्वरूप निर्मल निर्विकार, ज्ञान मात्र जान कर सदा शांत स्वतः रहे। साखी----

'अरि' रण में विश्राम लखि, रणहिं तजे दुख घेर।
यह धरि निश्चय आप में, अरि को जीत सबेर ।।

जीवन पर्यन्त संतगुरू की, सेवा समाज का सहन मनोद्वेग मारन, सत्य शब्द रटन करना, ही मेरी मुक्ति है यही निश्चय ।।



❀ विशाल विवेक बिन्दु ❀

अध्याय-६

सद्‌गुरु श्री विशाल देव द्वारा परमार्थ मार्ग के आचरण से शिक्षांग रहस्यवान पारखी संतो की महानता परिचय संग्रह

[सम्मति—संत्रण]

यह जो प्रकरण मैंने हे मित्र आपको मनन करने के लिये दिया—आपने—मनन किया ! हाँ-अवश्य-मैं बारम्बार इसे अध्ययन कर इस फल को आस्वादन कर रहा हूँ जीवन में दो विद्यायें हैं एक देह-पोषण की-दूसरी मनोवृत्ति शान्ति की ! दोनों की पदार्थ रहस्य की इससे सन्देश पाया, अब मेरा अनुभव-इस प्रकार झलक दे रहा है—शुद्धाचार-शुद्ध व्यवहार द्वारा शरीर रक्षा रखते हुये एकान्त वासी-होकर निष्प्रपंच जीवन व्यतीत करना कर्तव्य है जो राजसी तामसी वहु विषय स्वादी को स्वप्न में सुख नहीं मिलता इच्छा चिन्ता राग द्वेष की मार काट, मार काट ही रक्त शोषित करती रहती। वह सुख स्ववश-एकान्त वासी स्वरूप स्थित-निष्प्रयंच महा विरक्त को बिना परिश्रम प्राप्त हो जाता है। वही शम सुख मुझे प्राप्त हुआ जिसके आगे संसार की समस्त पुज्यत्य मान एवं ऐश्वर्य पंच स्वाद आमोद

प्रमोद गहन अंधकार में भटका भटका तीन ताप रूपी कूप में पतन कर व्यथित करा रहा है आगे कराता रहेगा अब मैं इन दुःखों से इसी शब्दों के अनुचिंतन के प्रभाव से मुक्त हुआ अचल हूँ धन्य ! अब मैं अपने प्रेमियों को बारम्बार इस बोधामृत बचनों को पान करने की मंत्रणा देता हूँ ॥ और आपसे मुहु-र्मुहु (बारम्बार) यही मंत्रणा लेता रहूँगा !

किसी ने पूछा-आप क्या करते हैं ?
गुरूवर विशालदेव की साखी—

साखी—मोह बाद औ फिक्र तजि, शिक्षत सज्जन भक्त ।
रमत अवनि तन मन परखि, त्यागि उपाधी जगत ॥ ६ ॥

६—निःस्वार्थ भाव से सर्व हितकारी और सर्वस्व त्याग रूप तप, ये दोनों संत के प्रधान अंग हैं। आप में ये प्रबल अंग प्रत्यक्ष हैं। भययान मुक्तिद्वार आप ही स्पष्ट कर रहे हैं।

साखी—सन्त सहायक जीव के, सन्तहिं पार लगाय ।
औरन से यह होय नहिं, जो भ्रम भूल भगाय ॥

साखी—उपकारिन में उपकार गुरू, दानिन में गुरुदान ।
रक्षक में रक्षक गुरू, गुरु सम अन्य न आन ॥

आप एकान्त में चलते घूमते बैठते जो जो प्रसंग कथन किये हैं। उसका कुछ अंस वर्णन किया जाता है। जो गुण ग्राहियों के लिये परमार्थ पथ में बलदायक होगा।

आपने एक समय निर्णय किया कि मनुष्य को रोग का चिंतन तृष्णा शोक और मोह अनुकूल और प्रतिकूल राग द्वेष

का चिंतन सहजिक होते रहने से उसकी धारा बन गई है। उससे पार पाने के लिये-सत्संग सद्ग्रन्थ सत्साधन अपने अनुभव में सदैव लगे रहने की आवश्यकता है,

'आसक्ति जीति अभ्यास, अभ्यास वही जेहि जाय दुख।
लहै शान्ति नैराश, विषय दुःख को भय समुझि॥

प्रबन्ध-आप एकान्त में बैठे हुये सघन वृक्ष हैं। भाँति भाँति के वन जन्तु जहाँ तहाँ दृष्टि गोचर होते हैं, अनुकूल अधिकारी पाकर निर्णय झड़ी कानों को पवित्र करती हुई अन्तस में प्रवेश कर रही है। आपने कहा किसी का एकरस व्यवहार निपाटने में, अपने को गम खाने में, क्षमा, समता और हितैषीपना की अधिक आवश्यकता है' बड़ाई देकर, आप नम्रता लेकर, हित बर्ताव द्वारा परस्पर का झगड़ा रागद्वेष सब शांत हो जाते हैं। इस प्रकार भक्त सज्जन जन कुछ अपने स्वार्थ सुख की हानि भी सहन कर परमार्थ हेतु दूसरे के कल्याण में सहकार होते हैं।

दोहा—'स्वार्थ रहित अक्रोध यह, परमारथ को कोष।
मनुष मात्र को भय हरै, जो यहि बसै परोस॥

आप नदी तट पर घूमते फिरते एक समय कहा मनुष्य समाज में धँसे और गँसे रहने से अंतःकरण भार रहित स्ववश नहीं रहता (समता सजगता के) बोध से लदे रहना पड़ता, जब जब संसर्ग से पृथक चलो रहो बैठो तब निर्भार होकर सहज ही स्थिती रहती है। 'बिन एकान्त न आनन्द कबहूँ। मिलै

अब्धि लौं पृथ्वी सबहूँ।" पुनि एकक एकान्त सँचारी। स्वातम चिन्तौं सब सुखकारी।

प्रबन्ध—आप एकान्त में चलते हुये समय समय पर कई बार कथन किये—मुझे रास्ता चलने में विशेष स्ववश और स्वतंत्र शान्ति की प्रतीति होती है। जहाँ से चलो उधर का भार उतर जाता है। जहाँ जाने को हो उधर का अभी सम्बन्ध न पड़ने से कोई हानि लाभ नहीं नैराश्य विवेक युक्त मार्ग ही अपना निर्भार घर है। इसी लिये सदग्रंथ में आज्ञा भी है।

विरक्त बोधै देह निजु, मैथुन त्यागै अष्ट।
ठहरै रमिता भूमि पर, बोधि कालता कष्ट॥ पं०॥

प्रबन्ध—पंथ चलते हुये एक समय आप निर्णय किये आज कल की विद्या विज्ञान शोधन का झुकाव इन्द्रिय और विषयानन्द उपभोग के लिए हैं वह झुकाव यदि सत्य सिद्धान्त ज्ञाता पारखी सन्तों के तरफ हो जाय, तो सत्यासत्य निर्णय में वही विद्या सहायक बन जाय, किन्तु सत्संग प्रेम से पृथक अविनाशी स्वरूप बोध तो दूर रहा बोध के साधक ब्रह्मचर्य—सत्संग मन इन्द्रियों को सतमार्ग गामी बनाना अहिंसा ब्रत आदि परस्पर नौतिक सात्विक सर्वहित प्रद चरित्रता भी बिनष्ट होते जा रहीहै अतः भौतिक भोग रक्षा मात्र लेकर चिन्त को मोड़ते हुये सत्संग सदग्रन्थ में मन देना, केवल बिद्या ऐश्वर्य प्रमाद में ही धोखा न खाना। हाँ यदि लौकिक विद्या के साथ सत्संग में प्रेम हो जाय तो वही विद्या शोधी हुई औषध के समान गुण कारी हो जाय।

विद्या वाणी को सत्य की ओर साधक बनाने के लिये अवश्य किसी सुद्गुरु जो सत्य स्वरूपस्थ हों भले ही कुछ न पढ़े हों, पर दृढ़ विवेक विराग स्थिति हो तो आपकी सेवा भक्ति द्वारा सत्य सिद्धांत पर स्थिति बना लेना चाहिये।

दोहा—तिनही पढ़े तिनही सुने, तिनही सुमति प्रकाश।
जिन आशा पीछे करी, गहे जगत नैराश॥
जग की सब विद्या पढ़े, विषय भोगि अनजान।
जो न ज्ञान निज रूप को, भूँकत श्वान समान॥

साथियों से जो बैर होकर विरोध ज्वाला जलाती है उसके
शान्ति प्रति मनन। प्रतिकूल विध्वंसनी। गुरु विशाल
साहिब राग द्वेष जनित कामनावों के छूटने का
उपदेश कर रहे हैं उसे आप सब श्रवण करें।

प्रश्न—१-किसी से अपने मनमें उलझन प्रतिकूलता या द्वेष भाव तथा विविध असमञ्जस पडते हों तो उसके निवृत्ति का क्या उपाय।

उत्तर—सुनिये ? प्रारब्ध २ पुरुषार्थ भेद ३ मानंदी भेद ४ समझ भेद ५ समझ के मन को प्रतिकूलता मिटा डालनी चाहिये।

२—जिस तरह हमारी सब प्रतिकूलता क्षमा करके गुरुदेव शरण में रखते हैं। उसी तरह गुरुदेव का आधार जितने लिये

हैं। फिर हमें समाज में किसी के भी प्रतिकूल अक्षमता किस हिसाब से रखनी चाहिये ? अर्थात सब के साथ क्षमा समता का भाव रखना आवश्यक है।

३—हमें तो केवल गुरु आज्ञा पालन करना कर्तव्य है। इसी में हमारा कल्याण है। सबको निभाने वाले सद्गुरू हैं। जैसा उनको विवेक युक्त दर्शता है तैसा उसके प्रति-दूर निकट कुछ करना न करना आदि निदेशन करते हैं। फिर हम दूसरे दिन साथियों से क्यों अनख मानें ? यदि मानते हैं। तो हममें भक्ति का हिसाब कहाँ रहा।

४—गुरुदेव परस्पर राग द्वेष कलह वार्ता और वैसी क्रिया से असन्तुष्ट होते हैं संतुष्ट करने ही के लिये हम सब सेवा करते हैं। फिर एक तरफ से सेवा दूसरी तरफ कुल्हाड़ी, यह कहाँ तक ठीक है। यह बात सबको बहुत लज्जा जनक तथा हानि प्रद है। अस्तु समाज प्रति निर्वैर सेवा शील नम्रता से पेश रहे तथा सर्व प्राणी मात्र निर्वैरता से बर्तें।

५—अभिमान करके प्रत्येक प्राणी को दूसरे की कसर बहुत दिखाई देती, अपनी ओर कुछ नहीं परन्तु शोधने से अपने को सर्वथा निर्भूल और पूर्ण मान कर उद्विग्न रहना यह भी भूल अभिमान काही पूर्ण चिन्ह है, दूसरे की भूल कसर से अपनी कोई हानि ही नहीं फिर भी दूसरे तरफ का ही स्मरण होता रहता है, यह महा भयंकर अज्ञानता है इसीं से तो बुद्धि-

वान को भी अपनी बात बात में सोच समझ के कार्य करना पड़ता है। इतने पर भी यह सोच होता है। कि यह कार्य हम इस रीति से करते तो अच्छा होता। भूल हो गई, कुछ कसर रह गई बोलने चालने लेने देन करने धरने त्यागने गहने संग करने इत्यादि में इस रीति से अपने में भूल रोग प्रत्यक्ष कम विशेष होते हुये देख देख कर सन्तोष क्षमा सहज ही ग्रहण हो जाती है। जब कि दूसरों को किसी प्रकार हमारी प्रतिकूलता सहनी पड़ती है इस प्रकार सबको प्रतिकूलता हमें भी सहना चाहिये ॥

६—गुरु दरबार में सबसे अपने को बड़ा मानि के या पटैती समझ के दुसरे से प्रतिकूलता विच्छेपता अड़चनें पड़ती हैं सो सब से अपने को बड़ा न माने पटैती न करे, इस लिये कि हम सद्‌गुरु देव के दास हैं। दूसरे तन मन प्रकृति इन्द्रिय आदि भवार्णव में डूबते हुये पार होने के लिये शोकातुर एक महान दुखिया जीव हैं।

७—अपना सुधार विचार मानसिक भावना शान्त शुद्ध रखना अपने सत पुरुषार्थ आधीन है। दुसरे का उसमें कुछ लेश नहीं। दूसरे के साथ अपना मन कर्म वाणी सरल सच्चा हितैषी बना लेवै। बस अपना काम तयँ, दुसरे के काम दुसरे के भाव पर निर्धारित है। फिर हम क्यों खिन्नता मानै इत्यादि।

८—समाज में किसी न किसी अंग से सबके तरफ से अपने को जो सहायता मिलती है। विवेक से ऐसा पुष्ट रक्खे बल्कि अपने तरफ से यह यह सोचे कि जैसा चाहिये वैसा हम समाज प्रति सहायक नहीं होते हैं। ऐसी समझ दृढ़ रखने से फिर किसी से उद्वेगनता न होगी ॥

[द्वितीय-प्रसंग]

(१) राग द्वेष मिटाना हो तो उसके विरोधी विच्छेद वाली बात पीठ पीछे न करे। सामने में क्षमा समता नम्रता गुण लेकर बर्ताव करो ॥ (२) मान दो मान न चाहो। (३) सेवा कर दो सेवा न चाहो। (४) सन्मुख सर्व समयों में उसके हितैषिता से ही बर्तिये। (५) उसकी खोटाई का भाव भूल कर भी हृदय में कभी न टिकाइये। (६) कुछ हितैषी सेवा आदि बर्ताव उसके प्रति किये हों तो उसको जिह्वा पर लाकर कभी उसे कृतज्ञ मत बनाइये। ताना उलहना तो भूल कर भी न दीजिये इत्यादि गुणों के गहने से कैसा भी हृदय हो शीतल पड़ जायगा, अपना तो कल्याण निश्चय है।

दोहा—शुचि सुशील सेवक सुमति, कहु प्रिय काहि न लाग।
वेद पुराण कह नीति अस, सावधान सुन काग ॥

सिद्धान्त विरोधी हो तो संग त्यागे समय संयोग साथ पड़ने पर कोमल मधुर बोल चाल रख के अपनी तरफ से उसके प्रति विरोधी व्यवहार न करे बड़ा छोट सामान्य दूर निकट

विजाति स्वजाति सबमें से कुसंग त्याग—सत्संग अनुराग स्वरूप ज्ञान शुद्ध व्यवहार गुण ग्राही बन कर वर्तना चाहिये। क्योंकि
(बैर विरोध किसी से नाहीं, दो दिन है जग में रहना ॥
कैसर चतुर होइ किन कोऊ। नीच संग करि बिगरत सोऊ।

अतएव दुर्बुद्धि दुराचरण वाले के संग से उपरामता ही कल्याण पथ में साधक है।

साखी—संगहि से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख होय।
कहहिं कबीर तहँ जाहिये, जहाँ अपनी संगति होय॥

सवैया

जो हित मंत्र दियो हो दया कर, वा हमको सब धारण होवै।
धारे बिना कछु काम न देवत, केते समय सब व्यर्थ बिगोवै॥
हमहूँ खुब नाचत मान बसी कहँ, क्या न सहे दुख में नित रोवै।
श्रीगुरुदेव सुबोध दिये जब, ये मन को दलि काम बनोवै॥१॥

देहेन्द्रिय सुखों में विश्राम मान लेना महा भूल है। उस भूल से प्रतिकूलता-शूल दे रहीहै। विचारिये विलम्ब मत कीजिये।

(१) देह की प्रतिकूलता देखकर देह की सुन्दरता में मत फूलिये। (२) इन्द्रिय की प्रतिकूलता देखकर इन्द्रिय सुख लम्पट मत होइये। (३) मन की प्रतिकूलता देखकर मन माने मत बड़े बनिये। (४) प्राणियों की प्रतिकूलता देख कर अपनी स्वबशता का प्रमाद तत्क्षण तजते रहिये। (५) ब्रह्माण्ड की प्रतिकूलता समझ के ब्रह्माण्ड में मत

फूलिये इन प्रतिकूलता में सब प्रतिकूलता आ जाती है। अतएव-निज द्रष्टा साक्षी परीक्षक अपरिवर्तनीय निर्विषय सत्यके पृथक जहाँ तक भासमान दृश्य भान होता है। तहाँ तक लक्ष्य घुमाय निज बोध में शांत रखने से प्रतिकूलता केन्द्र देह जेल से छुट्टी मिल जाती है।

❋ कल्याण के लिये प्रतिकूल विरोधी तत्व ❋

[सत्सग विरोधी भावनावों का दर्शन]

(१) मन वसिता प्राणी प्रतिकूल।
(२) निज तन प्रतिकूल।
(३) मन प्रतिकूल है।
(४) विषय पदार्थोंमें सुख-दुख की निश्चयता प्रतिकूल है।
(५) मदान्ध पुरुषार्थ प्रतिकूल है।
(६) भूल कादरता सुख, सुख निश्चय प्रतिकूल है।
(७) तिनसे रचित अभ्यास प्रतिकूल है।
(८) स्वतन्त्र निश्चय ही गाफिल जीव को शूल है।

सब देश के सर्व सत्यन्यायी रहस्यवान संतगुरु समाज की विशेषता वर्णन।

॥ गुरु विचार वर्षा ॥

सद्गुरु श्री कबीर साहेब से लेकर आजतक सर्व सत्यन्यायी पारख निष्ठ सन्तों के सत्य निर्णय रूप प्रकाश की निर्मल महत्व वर्णन।

(१) नर नारी बाल वृद्ध युवा सर्व वर्ग तरफ गुरुदेव की दया रूपी अपार किरण बुन्दों की वर्षा ? उसे अन्तःकरण रूपी पात्र में चौकसी पूर्वक ग्रहण करो। (२) जहाँ पर कोई दुख उपाधि विक्षेप नहीं है।

[विचार बर्षा का आप सब पान करें]

प्रश्न--वह कौन सा ग्राम्य एवं देश है ? स्थिति भूमिका है। जिसे प्राप्त कर स्थित होने पर सर्वथा प्राणी दुःख विमुक्त हो जाता है ?

उत्तर--यही है कि निज शुद्ध चैतन्य सर्व साक्षी स्वदेश ही एक ऐसा ग्राम्य देश भूमि स्थिति है। उस देश को कैसे प्राप्त हो ? उ० वह तो नित्य प्राप्त ही है। मात्र गुरुदेव की शिक्षा श्रद्धा मनन करते ही स्वयं स्वरूप से जो बोध मात्र परीक्षक शेष चेतन्य जीव सत्य है, वही तो निज स्वयं प्रकाश भूमि है। उसकी विस्मृति मात्र हुई है। पदार्थ दूर नहीं है। वह स्वयं ही है अपरोक्ष स्मृति मात्र से लक्ष ठहराते ही उसे स्वयं देश की प्राति हो जाती है। प्राप्ति का अर्थ स्मृति हो जाती है। उसी स्वयं स्मृति भाव के बल से सर्व कल्पनायें तृष्णायें उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं। जैसे प्रकाश होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, जड़ देश से मन को हटाय चैतन्य देश में स्थिर करो इससे शीघ्र जन्म जन्म के क्लेश विनष्ट हो जाते हैं। यही पारखी संतों की शिक्षा रचन वचन दीक्षा शैली सिद्धान्त है। कौन रंग है जीव का" उ० जागृत रूपी जीव है" ॥

क्या ब्रह्म जगत गति तीक्षण ज्वाला मय की परीक्षा आपको नहीं होती है। इसी से वृत्ति चंचल हो तो दुख दर्शन में तीव्र भावना करो तब चैतन्य देश विचार में मन संलग्न हो जायगा।

१–क्या वे प्राणी पदार्थ मनोधारा देह गेह जगत ब्रह्म कल्पना वही है। जिसमें मैं अनन्तकाल रह आया हूँ। सब उलझनें सहन करते आरहा हूँ अब तो मुझे विवेकी बन के सद-रहस्य बनाय पारख प्रिय होना चाहिये, इसके लिये सत्य निर्णय उत्तेजक भावना जागृति करनी चाहिये। २–गुरु देव की कृपा अपार है। सन्त जन भी सहकार हैं। अपना भी उद्धार करने का विचार है। बस निश्चय पूर्वक सद्अभ्यास के लग्न से ही निस्तार है। ३–जैसे बड़े बड़े विघ्न हैं, बड़े बड़े छल बल कलर हैं। फिर भी तैसही इधर बड़े से बड़े महान पुरुषोत्तम मर्यादा पालक जन उद्धारक सद्गुरु शरण का आधार है। जीव भी त्रिकाल दर्शी है। फिर क्यों नहीं सर्व मनोविकार के विघ्न विनिष्ट होते रहेंगे अवश्य ? गुरुदेव के शरण गहते ही सम्पूर्ण बाधायें न मालुम कहाँ चली जाती हैं।

(जीव सहज ही परम पथ गामी बन जाता है)

४–विशेष बातों से क्या ! अपनी शक्तिसे पुरुषार्थ साधना से ही अनन्त विचार प्रगट होते हैं। निरन्तर निर्णय शब्दों का विचार आचरण करते रहना। सन्त गुरु सद्ग्रंथ तो मात्र आप के तटस्थ लक्ष दर्शायक हैं। ५–बोधक देव गुरुवर के बचना-

मृत सार गर्भित सर्व वचनामृत सत्य मधुर रस पूर्ण हैं। उसे एकाग्रता से सदा अर्थाकार वृत्ति करना परम कर्तव्य है। सकारी वचन।

तेहि साहेब के लागहु साथा। दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा॥

पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार॥ कबीर देव
जेती दैवी निधि अहैं, सो सब करतल आप।
गुण सिन्धू गुरुवर भरे, मन्द महा किमि नाप॥

१—निज स्वरूप के ज्ञान और तदाकार स्थिर वृत्ति बनाये बिना सम्पूर्ण चतुराई विद्वता, विज्ञान और व्यापार अनुसंधान उसी तरह समझो। कि जैसे शूल पीड़ित रोगी को शूल वर्धक मीठी औषधी शूल बढ़ा देवे। अथवा महलों मध्ये पुष्प शैय्या पर सब प्रकार के सुखी भूपाल को अग्नि लगते जल में डूबने अथवा व्याघ्र भालू सर्प वृश्चिक आदि से काटने का भय स्वप्न में हो जाय तो जब तक वह जागृत न हो सके तब तक कोटि उपाय से भी उसका दुख दूर नहीं हो सकता, अतः हमें निज स्वरूप समझ और ठहराव की उतना ही नितान्त आवश्यकताएँ हैं जितनी देह रक्षा की, देह रक्षा तो शूकरादि भी कर लेते हैं। किन्तु देह रक्षा अनन्त चेतन्य देश स्थिति के ही लक्ष से करना ही मानवता पूर्ण है।

प्रश्न—सद्गुरु कबीर देव के पारख सिद्धान्त निर्णय ग्रथों में क्या क्या स्पष्ट वर्णनन है ?

उत्तर—(१) नम्रता युक्त भक्ति का विधान स्पष्ट है। गुरु सन्त की भक्ति मित्रवत है। (२) मोक्ष प्रकरण आदर्श है, जो दुख द्वन्द दमन का पूर्ण शस्त्र है। (३) विषयों में दोष दर्शन की अनेक स्पष्ट युक्तियाँ हैं। 'चन्दन वास निवारहु, तुम्ह कारण वन कटिया' (४) मन के जालों की स्पष्टता तो इतनी है कि मानो सेंध पर चोर पकड़ लिया गया हो। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' मनोमय की खूब परीक्षा पारखी संतों ने करायी है।

५–इच्छा कामना में दुख छल बंधनों की उसपर विजय पाने की इतनी परीक्षा करायी गयी है कि मानो सूर्य प्रकाश में चोर डाकू को पकड़ लेना। यथावत घट पट गेह का ज्ञान करना। समस्त इच्छा कामना पर विजय प्राप्त करना॥ ६–सुख भास मार मिथ्या है। जैसे स्वप्न सृष्टि जागृत में मिथ्या है। ७–जगत में प्रपंचों की प्रबल धारा है। रागद्वेष कपट हिंसा उत्पात अन्याय सबका मूल भोगासक्ति ही है—दृश्य जड़ जगत देहो में सुख प्रियता और तिन्हीं को प्राप्त कर बड़ा होने का गर्व ही का संहार किया गया है। ८–इस लिये वैराग्य पथ ही अक्षय शान्त पद पूर्ण है। ९–समस्त अनुमान अदृश्य कल्पना खण्डन करके गुणधर्म युक्त नर पशु अण्डज उष्मज के देहधारी चेतन आज अमर अनन्त निर्णय किया गया है॥ सब काल सब देश सब हेतु समस्त प्राणी का यहाँ निस्तार बताया गया है। संकुचित परम उदार सर्व प्यार सर्व सारे

विचार वर्णन है। १०–परमार्थ साहस में शक्ति प्रदान के लिये। ११–स्वरूप ज्ञान स्वपष्ट निर्णय के लिये १२–जड़ तत्व और वृक्षों में चेतन जीव के निषेध करके नर पशु अन्डज उष्मज में अविनाशी जीव प्रतिपादन के लिये—१३–विलक्षण वाद साहस भौतिक वाद खण्डन के लिये पुनर्जन्म कर्मफल, जगत अनादि, वासना त्याग से मोक्ष १४–और भी संत रहस्य सम्पूर्ण मानव चरित्र, पावन समाज, शुद्ध व्यवहार आचार विचार सहित परमार्थ प्राप्ति के क्रमशः उपाय के लिये पारखी सन्तों का समस्त उपदेश और व्यवहार पाइयेगा। यहाँ तक कि–१५–गृहस्थ-विरक्त, मुमुक्षु नर नारी सबको गुरुवर श्रीकबीर देव और अनेक पारखी सन्तों द्वारा जो सर्व सद्ग्रन्थ रचे गये उनकी सद सम्मति सहित आप के दर्बार में–स्वरूप ज्ञान का परिचय देकर सत्य न्याय सिद्धांत चेतन पक्ष रविवत घोषित-स्वष्ट प्रकाश आज भी सब देश के सत्य न्यायी पारखी सन्त देते रहते हैं–। यह प्रत्यक्ष अनुभव है। १५–मुख्यतः बीजक के पारख सिद्धांत स्थिति सन्त भक्त चरित्र प्रकाश के लिये। १७–पूर्ण शांत मय जीवन पथ बनाने के लिये समस्त सत्य न्यायी विवेकी पारखी-वैराग्य निष्ठा पूर्ण संतगुरु के मुखाग्र निर्णय और सद्ग्रंथ निर्णय प्रवाह चला चलता है चलता रहेगा तभी तो बीचक फल में स्पष्ट कथन है—

साखी–पारख बिन परिचय नहीं, बिन सत्संग न जान।
दुबिधा तजि निर्भय रहै, सोई सन्त सुजान॥

देखै बीजक हाथले, पावे धन तेहि शोध।
याते बीजक नाम भौ। मन माया को बोध॥

सार–वर्तमान में पारखी सन्तों का सत्संग विचार ग्रंथ मूल है।

(सद्‌बोध प्राप्त लक्षक निर्णय की महानता वर्णन)

देश काल औ पात्र बिचारी। गुरु संत निर्णय सब धारी॥
नये पुराने ग्रंथ औ गुरु जन। तेहि ते काज बने सब के धन॥
कोई बीजक शब्दन के द्वारा। कोई निज उक्ति युक्ति बहुधारा॥
कोई दृष्टांत कहै कोइ नाहीं। कोई प्रसंग बहु विस्तृत लाहीं॥
कोई संक्षिप्त कोई निज अनुभव। कोइ कहत सब पर के पदलव॥
यहि बिधि सबके कहनि में भेदू। पर सिद्धांत भाव निर्भेदू॥
बचन विभेद अर्थ नहिं दूजा। यथा इन्दु शशि अर्चन पूजा॥
है सिद्धांत लक्ष जो एकू। केहि विधि भेद भयो वहि टेकू॥
अनल जलावन की गुण एकू। नामों सहस्रो भेद अछेकू॥
रुचि औ भाव जु शैली सबहीं। सबकोइ बोध देन को चहहीं॥
बिन सत वस्तु लक्ष्य के राखे। कौन ग्रंथ को केहि बिधि भाखे॥
तेहिते सर्व ग्रंथ संकेता। अंगुली लक्ष चन्द्र लखि लेता॥
अंगुली पद सब वानी निर्णय। जो कुछ बोधवान कथि वर्णय॥
सो वर्णन पद हू भयो दूरी। जब निज पदिक स्वबोध हजूरी॥
स्वयं बोध धन पदिक व शब्दी। चेतन अकृतिम देव सु अब्दी॥

जौ लो देह पटल संबंधा । तौ लौं सत्य निर्णय निर्बन्धा ॥
नीयम पाठ पठन करु अर्था । परख दृष्टि करि पुष्टि समर्था ॥

दोहा—पारख के सिद्धांत जो, कहे पारखी संत ।
सो सबहीं शिर मौर हैं, बीजक लाभ लहन्त ॥
पारख के सब ग्रंथ जो, पाठ पाठन के योग ।
जो जेहि भावै सो पढ़े, अपनी रुचि उपयोग ॥
सुनिके गुरु सत्संग को, होय स्वरूप को ज्ञान ।
उक्ति युक्ति तिनकी तहाँ, शिष्य को बोध लहान ॥

[वैराग-गीतांजलि]

वैराग्य दाया है तेरी, करता है तू सबको निहाँ ।
करता तूझे तृष्कार जो, दुरभाग्य उसकी है महा ॥टेक॥
बैठे हुये आरण्य में गाते हैं उत्तम गीत को ।
मालो जर की क्या जिकर, नहिं दोश दुश्मन है जहाँ ॥ १
निर्दोष मन जाकर कहीं, करते हैं भिक्षा अन्न की ।
पीते हैं जल सरितान सर, या हो कहीं झरना जहाँ ॥ २
नींद आई सो गये, समसान या गृह सुन्य हो ।
अचिंत सुख उस नींद का, तोषक व तकिया में कहाँ ॥ ३
मरने से पहिले मर लिया, प्रकाश मरना फिर कहाँ ।
प्रारब्ध बस तन डोलता, अब छूट जा चाहे जहाँ ॥ ४



॥ गुरु रहस्य माला ॥

अथ वैराग्य परिष्ट पारखी सन्तों के विशद आचरण वर्णन

रहस्यज्ञान सन्त गुरु इष्टदेवके गुण समर्थ स्थिति का दिव्य दर्शन

गुरुवर चरित सुधामय बूटी । ग्रहण करै सो भव से छूटी ॥
क्षमा सजग निर्वाह रहावैं । दूरि दर्शिता सोचि गहावैं ॥
भीड़ विगत नित स्ववशहिं धीरा । दुख दर्शन शुधि रोच गँभीरा ॥
निर्णय बर्षा बरषत रहहीं । परि हरि कुसंग अहिंसा गहहीं ॥
संयम नियम अचार उचित से । सुख मिथ्या नैराश्य मुदित से ॥
समता रहन अभार बिरागी । बिचरण भूमि उदार अदागी ॥
सद्उपयोग यथावत त्यागी । रक्षपाल निर्माण सु पागी ॥
जन मन ताप जुड़ावन वारे । शंशय बृक्ष ढहावन हारे ॥
यथा रीति सम्यक शुभ धारे । मध्य वर्ति निज दक्ष सम्हारे ॥
दम्भ दिखावा दूरहिं तजि कै । अविचल शांत समक्ष हि रजि कै ॥
धीरज चाल न हल चल कोई । मनन शील दीरघ सम वोई ॥

दो०—नित्य तृप्त निर्वासना, निराधार गुरु रूप ।
निर्विकार जड़ पार प्रभु, पारख शुद्ध अनूप ॥

मुक्त अंग में बड़ पुरुषारथ । देह मार्ग प्रारब्धहिं सारत ॥
देह थकी तउ निश्चय प्रबला । मन रिपु पर जय कीन्हें सबला ॥
जीवन त्याग भई चलि पूरी । संत नीत शुभ बेष सु भूरी ॥
जेहि फल शोक न वाको करहीं । प्रथमै युक्ति सहित अनुसरहीं

पछड़ न मुक्ति दशा के अंगा। नय नागर कायरता भंगा ॥
ब्रह्मचर्य गहि बचन संभारे। देखत मन गति लक्ष सदारे ॥
योषित दूरि तजे मन कर्मा। उक्तिवान हित पक्ष स्वधर्मा ॥
जग तरंग में खिंचत न कबहूँ। गुण ग्राही संकोची गुनहूँ ॥
भार देत नहिं काहुइ स्वामी। निजबलनिजहिंसाँभरि अभिरामी
जेहि जस भाव यथारथ ज्ञाता। निज बल दै बहु जीवन त्राता ॥
दो०-सदा सु साहिब शुद्ध पद, दास मनो बस देखि।
निज बल आप निबाहिये, निज रहस्य दै शेषि ॥
मन द्रष्टा एकान्तहिं भावै। शंका नहिं लव शेष रहावै ॥
रक्षण हित सिद्धान्त महाना। कहनी गहनी रहनि प्रधाना ॥
परख समाधि प्रौढ़ करि धारे। आश बीज दहि मोक्ष दिखारे ॥
कर्म बीज बशि पुनि पुनि जन्मा। अस कहि शिक्षत सबको धर्मा॥
साधक बाधक दृष्टि प्रकाशी। बदला लेत न कबहु निराशी ॥
सजग साधना दृढ़ बल भारी। सदा एक सम ध्येय अधारी ॥
मान देत पर हेत ये बाना। अभय अशत्रु अफिक्र के थाना ॥
नहि मोहित नहिं रुठत स्वचेता। भूलेउ अनभल करत न हेता ॥
दृश्य अहं मद स्ववशहुँ तजि कै। राग रोष नहिं सपनेउ भजिकै ॥
कहि मुखाग्र या निर्णय ग्रन्था। पुष्टि कियो पारख सत पन्था ॥
प्रभु विषमहु पर हितता धरहीं। जगत अनादि सदा से कहहीं ॥
दो०-हानि तो इक अज्ञान की, लाभ कियो सब केर।
बिन समझे शिशु कोइ दुख, तदपि मातु हित हेर ॥
धर्म राज्य पालक सु यथेशू। सह विवेक सब सैन्य बरेशू ॥

प्रेरि यथा सब तारन तरना । प्रभु अदैन्य सब विघ्नहिं हरना ॥
मन दुख मेटन इच्छुक सबहीं । सो मन जीति स्ववश गुरु रहहीं ॥
वर लक्षण युत गुरुवर देवा । जेहि पद गहत सकल दुख छेवा ॥
जीव वाद सर्वोच्च सनातन । सोइ कबीर पद परख प्रकाशन ॥
सम सब सन्त सुदेव अनूपम् । सोइ बिशाल पद लक्षित रूपम् ॥
नाथ साथ रखि भार निबाहे । सो पद किमि लघु कहत न दाहे ॥
रहनि सिन्धु बोधक गुरु शरणाँ । जो न गहै ते केहि विधि तरणाँ ॥
कहाँ सिन्धु कहँ बुन्द समाना । तदपि गुनत गुण हृदय जुड़ाना ॥
जय जय जय हो बोध प्रकाशी । परख समाधि रहस्य बिकाशी ॥
दोहा—सद्रहस्य प्रेरक प्रभू, कर्णाधार विचार ।
नमो नमो शरणाँगती, धन्य निवाहन हार ॥
चहौ दूरि चहौ निकट रखि, जस बिचार सरकार ।
सो मति प्रथक न प्रेम से, सदा भाव निरधार ॥

॥ फल रूप छन्द ॥

यह चरित सुमाला, कहेउ कृपाला, सकल सिद्धि दातार ।
हिय बिच धारे सबके प्यारे, राग द्वे तम क्षारा ॥
अति दिब्य सुहावन, परख सु पावन, अचल अभय अविकारा ।
जेहि दर्शन जागे, जीव सुभागे, जय जय गुरु निरधारा ॥ १ ॥
जय जय गुरु निरधारा, मम प्रिय प्यारा, आप छोड़ि गति काहा ।
जो आप न मिलते, तब हम जलते, नहिं कुछ पावत थाहा ॥
पुनि पुनि जग धारा, संकट सारा, असह दुखन में दाहा ।
अब गुरवर मेले, परख गहेले, मिल्यो परम पद राहा ॥ २ ॥

जबलो तन बन्धन, तब तक धंधन, देवत रहौ सहारा।
नहिं मारग त्यागूँ, पद अनुरागूँ, चहौ जौन दुख भारा॥
प्राँणहुति करिकै, नाहिं पछरिकै, लै विरक्ति वर अंगा।
अब देर न लाऊँ, भूल हटाऊँ, रंगि जाऊँ गुरु रंगा॥ ३॥

जागो, लोगो चोर !

दृष्टांत--'एक लक्षाधिपति धनपाल की श्रेष्ठ कुमारी पुत्री घर के तीसरे छत पर रात्रि को सावधानी से लेट रही थी। उस दिन धनपाल अवश्यकीय काम के हेतु कहीं गये थे घर के रक्षक गण पहरेदार और मुनीम ये सब बाहर और भीतर पुत्री के अलवा और कोई भी घर में न था। जहाँ धन तहाँ धनी ब्याधियाँ लगी ही रहती हैं उसी दिन दो पहरेदार बाहर के तीसरे एक चालाक मनुष्य को बुलाकर धनपाल के धन हरण के विचार से तीनों छत के ऊपर चढ़ गये। सयानी पुत्री जाग रही थी। वह भीतर से चौतरफ फाटक को भले प्रकार बन्द कर रक्खी थी तो भी कई जन ऊपर घूम रहे हैं ऐसा उसे अनुभव हो गया। हो न हो ये चोर ही हैं ऐसा सोचकर पुत्री कुछ विचार कर घबराहट जैसे शब्द कुछ जोरो से कहने लगी-"वह कह रही है "अम्मारी अम्मा, अम्मारी अम्मा, अब मैं सयानी हो गयी हूँ, अब मेरी शादी करदे पश्चात मैं पति देव की भाँति भाँति सेवा करके प्रसन्नता से रहूँगी फिर पति जन्य बहुत काल में जब मेरे सौभाग्य से पुत्रोउत्पन्न होंगे तो एक नाम मैं 'जागो' रक्खूँगी

और एक नाम 'लोगो' रक्खूँगी पुनः तीसरे का नाम चोर करके पुकारा करूँगी। जागो लोगो चोर ऐसे विचित्र नाम सुन के लोग हँसेगे, और मैं अपना सौभाग्य मनाऊँगी, अम्मा कब मुझे संलग्न करेगी ऐसे निसंकोच वचन सुनकर चोरों ने जाना कि लड़की को स्वप्न हो रहा नहीं तो जागृत में कोई भी कुँवारी कन्या अपनी माँ से ऐसे वचन निकाल नहीं सकती थी अतः वे चोर चुपके से जहाँ तहाँ छिपकर उसके पास आ गये। स्वयं कौतुक की श्रवण लालसा में लग गये इधर चतुर पुत्री जागो लोगो चोर यही कहते कहते आगे जीना ऊपर छत पर चढ़ कर जोरों से बारम्बार आवाज देते हुये कहने लगी "जागो लोगो चोर, जागो लोगो चोर जागो लोगो चोर" ये चोर अभी स्वप्न की विचित्रता में ही गाफिल हो रहें हैं कि इतने में बाहर के लोग दौड़ आये आधीरात बीत चुकी थी छत पर चढ़ के देखा तो तीनों को चोर रूप में लोगों ने पाया। उन्हें पकड़ सवेरे राजा साहेब के यहाँ उपस्थिति करा दिया। राजा सब हाल ठीक ठीक जान कर पचास कोड़े और छ छ महीनो जेल भुगतने की कठिन आज्ञा दी। सबों के ऊपर जब कोड़े पड़ने लगे तब दो तो जोरों से रोने लगे—और एक हँसने लगा—इतना ही नहीं बल्कि ज्यों ज्यों चपाचप कोड़ा पड़ते जायँ त्यों त्यों वह और लगे कहके हँसता ही जाय। राजा अति कष्ट में हँसने के हेतु को पूँछा। वह बोला—सरकार भूल चूक की आप से माफी माँगता हूँ। हाल मेरा यह है

एक बार मैं बिशाल नगर के किनारे होकर निकला। वहाँ मनुष्यों की बहुत भीड़ लग रही थी सब यथा योग्य बैठे थे। एक संत जो कि सबको शिक्षा कर रहे थे उनकी परम प्रिय बाणी मानो मनुष्य के हृदय में चुभती जाती थी मेरे भी उसमें उनकी दो बातें प्रवेश हो गईं वे कह रहे थे। यथार्थ साधु गुरु के सत्संग से हृदय के बिवेक वैराग्य रूप नेत्र खुल जाते हैं। जिस नेत्र के सहारे दिब्य शुद्ध सत्य स्वरूप का दर्शन निश्चय होता है तब जाना जाता है कि जगत बिल्कुल क्षण क्षण परिवर्तन होने वाला अनस्थिर परबशता और प्रतिकूलता युक्त दुख पूर्ण है। जैसे जड़ तत्व क्षण क्षण में और तौर होते रहते हैं, तैसे तिनमें आसक्त शरीरधारी का मन भी क्षण क्षण में बदलता रहता है—शत्रु मित्र पलटते हुये प्रत्यक्ष देखे जा रहे हैं। सब मनोमय के स्वप्न से कायल दौड़ते और एक एक को भक्षते नजर आ रहे हैं फिर भी मूढ़ मन उसी में मोह को प्राप्त हो रहा है। सचमुच में वे बड़े मन्द मति के हैं जो अपना अक्षय सरल स्वतंत्र अभय स्वरूप स्थिति त्यागकर धन धाम द्वारा कीर्ति और सबको मन अनकूल करने के लिये तथा बाहर के द्वेषियों को मिटाने का प्रयत्न करते रहते हैं। मार्ग के गोबरौड़ा के समान उनका प्रयत्न सर्व निष्फल है, अहो मुझे हँसी इस बात की आ रही है कि तब मेरा संत बचन में बिल्कुल बिश्वास न आया पर आज वह बात प्रत्यक्ष हो रही है, सत्यतः यह बंधनरूप संसार मनोमय रूप अनित्य ही है। देखिये हम चोरी

नहीं करते थे पर इन चोरों के लोभ दिखाने पर नवीन मित्रता के कारण ही चोरी करने गये तहाँ सेठ पुत्री के कल्पना कृत "जागो लोगो चोर" ऐसे बचन ने आश्चर्य के मोह से आज हमें पचास पचास कोड़े और छ-छ महीने की जेल भोगने का अवसर आ गया, तो भला जो सच्चे माने हुये कल्पित स्त्री पुत्रादि में फँसते होंगे उन्हें न जाने कितने जन्म मरण की फाँसी और देह रूप जेल तथा पड़ापड़ त्रिबिधि डन्डों के चोट से व्यथित होना पड़ता होगा–"अहो सेठ पुत्री की चतुरता भी बिचित्र और हम लोगों की अज्ञानता की भी हद है कि लोभ बश कुवांरी कन्या के प्राँण हरने वाले थे—और सत्संग का असर भी महान जो कि किसी न किसी समय बिस्तार से फल-दायी अवश्य होता है। राजा इन बचनों को सुन उसे कुछ दण्ड देकर छोड़ दिया बाकी दोनों को पूरा दण्ड दिया। इसका सिद्धांत यही है कि एक लोभ बश पर द्रब्य न हरने की इच्छा से दुर्गति ही होती है। दुसरा अज्ञानी कोई भी अपना मित्र नहीं है, देखो धनपाल के रक्षक ही उसका बिनासकर धन लूटने वाले थे अतः सबसे सजग रहना चाहिये तीसरा अपना अपना मनोमय ही कृत अपना अपना बन्धन है जैसे कल्पित पुत्रों की वाक्य से श्रवण मात्र से द्रब्यार्थी को सजा और कोडों का पड़ना। चौथा जगत के अधिक धन धाम ही से सब वैरी बनने लगते हैं, अतः ये सब पदार्थ उपाधि रूप जानकर तिन्हैं त्याग की दृढ़ भावना बनानी चाहिये, पाँचवा-संसार शत्रु मित्र

राग द्वेष अपन परार और विक्षेपों से पूर्ण है अतः इससे भिन्न इसका साक्षी सत्य स्वरूप में ठहराव बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। छठा किसी भी हालत में सत्संग की बात निष्फल नहीं जाती–अतः सत्संगरत रहना।

दृष्टान्त–एक युवक पुरुष की स्त्री बे सहूर, फूहर नासमझ और कण्टाइन थी, वह लोक निन्दा का भी परवाह न कर नित्य अपने पति को दस जूता मारा करती, यह बात आस पास में फैल गई जो कोई उनके पुरुष से कहे कि तेरी स्त्री तो तुझे जूते मारती है तुझे लज्जा नहीं आती? एवं अपनी स्त्री की अपकृत सुनकर स्त्री प्रियता के कारण उससे सहा न जाता वह कहता ऐसा तो नहीं है, कभी कभी क्रोध में कुछ एक दो बात कह देती है ऐसे ही तो सबकी स्त्रिये हैं। इसके एक कन्या बहुत रूपवती थी कन्या के बिबाह के लिये वर के खोज में वह निकला, एक जगह योग्य बर ठहराय बिबाह की तिथी नियत कराय वह पुरुष लौट आया लोक नियमानुसार बिबाह होने के साथ ही लड़की बिदा कराने की ससुराल वाले तैय्यारी किये लड़की के बिदा होते उसकी कण्टाइन माता ने कहा–हे प्रिय पुत्री! तू मुझसे जनी है, अतः मेरे लक्षणों को लेते जाइयो। एक नवीन मजबूत कील युक्त जूता देकर बोली मैं दस जूते पीट कर पति को वश करती हूँ तू भी कम से कम रोज पन्द्रह जूते मारकर पति पर हुक्म चलाना, पुत्री ने कहा माता अवश्य तेरी आज्ञा मुझे मंजूर है। अतः डोली में एक

जूता भी रख लिया, घर में पहुँचने पर डोली से उतर कर पत्नी तो घर चली गई, और सामान उतारने के साथ एक जूता भी मिला, घर में लाकर उससे पूँछा गया यह एक जूता किस हेतु से रक्खा गया है—स्त्री बोली—पति को पन्द्रह जूते नित्य पीटने हैं। मेरी माँ मेरे पिता को नित्य दस जूते मारती है मैं उसकी पुत्री हूँ, उससे बढ़कर ही होना चाहिये, इसका पुरुष समझदार और परिणामदर्शी था इस बात का पता पाकर एक मजबूत कीलों और नालों से युक्त जूता लेकर उस स्त्री को एकाएकी धड़ाधड़ पीटते हुये कहने लगा—मेरा पिता मेरी माता को दस जूते रोज मारता था तो मुझे उससे विशेष होना चाहिय कम से कम नित्य तुझे बीस जूते लगाऊँगा आज प्रथम दिन है अतः तुझे चालीस जूते लगाकर दम करूंगा, स्त्री के ऊपर जहाँ जूते पड़े तहाँ खाल सहित उधड़ आवै इस तरह जूतों से स्त्री के अंग अंग तोड़ दिये, स्त्री हाथ जोड़ पाँव पड़ गिड़-गिड़ाके बोली—मैं इस बात का नाम भी न लूंगी अब मैं माता का अनुकरण न करूँगी, कृपया मुझे आप जीवन दान दीजिये बहुत कहे सुने पति ने मार डालने से छोड़ा और स्त्री जीवन भर उससे डरती रही, कभी पति के प्रतिकूल न चलकर आज्ञा में रहने लगी।

सिद्धांत यह है कि जीव पुरुष की जगत ब्रह्म की बासना वह दश इन्द्रियों द्वारे चंचलता कराय दश इन्द्रियसमूह देहो-पाधि कृत सब दुर्दशा जीव को कराती है इससे मन बासना बड़ी

कण्टाइन फूहर दुख दाइनि है पर जीव को उसमें ममता होनेके कारण बासनाओं से दुख हुये भी दुख दोष नहीं दिखता गुरु के दुख दोष दिखाने पर भी जीव को मनोमय दुख रूप मिथ्या नहीं दिखता। खानी बासना से उत्पन्न हुई बानी बासना भी वैसे ही दुख दाई है जब सदगुरु मिलते हैं किसी सुकृत से जब सद्गुरु में ममता बढ़ने लगती है तब जगत बासनाओं की ममता कम पड़ने से उसमें के दुख दोष कपट दीखने लग जाते हैं तब तो जीव मन इन्द्रियों से ही शीघ्र चवगुना चपट से सत्साधन सत्संग करने लगता है, फिर उसकी जगत प्रपंच की मनोबासना निकल कर गुरुदेव की ओर लगकर जीवन मुक्ति में साधक हो जाती है। अतएव इस अपनी परायी मनोबासना के चक्कर में न पड़ना।कहहिं कबीरते ऊपरे, जाहि न मोह समाय।' जैसे चोटी गिरि शृंग ऊपर पहुँने के दृढ़ लक्ष से नीचे पग उठा उठा कर आगे बढ़ा जाता है। साथ ही जो जो दृश्य सामने पड़ते हैं। उनमें ममता हन्ता रहित चोटी ही पर पहुँचने की दृढ़ उत्कण्ठा हृदय में लगी रहती है। यह बात हुई नीचे श्रेणी में रह कर आगे बढ़ने के लिये।

आगे बढ़ना क्या है! दुर्गुण का त्याग, सदगुणों का ग्रहण, और स्वरूप को सदा शांत रूप जान कर बीच के आये हुये हानि लाभ राग द्वेष कामनावों को तथा निन्दित और मोह कृत क्रियावों का त्याग, और अंतस में हानि लाभ रहित सदा स्वस्थ समान स्थिति। संसार में सबको निज रुचि अनु-

सार करने की चेष्टा भी महान बन है। हाँ स्वयं गुरुपद के सिद्धांत अनुसार ढल जाने में कुछ कठिन नहीं है, केवल दृढ़ निश्चय में बलवान होना चाहिये, देखने में यह आ जाना चाहिये, कि हम कितना गुरु पद लक्षणों में तदगत रहते हैं कितना नहीं। त्रुटि है भी तो कमी अंगों को पूर्ण करते हुये स्वरूप ज्ञान में ही बारम्बार शांत होते होते वही शिखर में पहुँचना हो जाता है। दुखों का कारण अपना दोष दुर्गण ही है, अन्य का नहीं। अतएव निज दोष मिटा देना ही सबसे बड़ा कार्य कुशलता है

साखी—सद मग गामी शूर जो, साहस दिन दिन दून।
कादर बनौ न भूलि कोई, सिद्धि काज दुख भून॥

उचित साधन में लगे पगे रहने से विशेष एकरस शांत दशा बन जायगी तब स्वाभाविक सहज ही जगत प्रपञ्च से मन ऊब डूब घबराय प्रपंच के हठ रहित, शांत दशा पर ही हठ करके चलेगा, और स्वरूप भाव में कमल भ्रमर वत रमण करेगा, किन्तु यह बात तभी होगी जब वैराग्य मूर्ति सदगुरु संत का आश्रय मिलता रहेगा। उन्हें सर्वस्व जान कर भक्ति भाव श्रद्धा पूर्वक तत्परता से सत्य शब्द का मनन धर्म भक्ति शील तथा नम्रता को ग्रहण करेगा! सार सिद्धांत यह है कि अपने कल्याण का दृढ़ ध्यान गुरुदेव के बताये हुये सब ,सदगुणों का ग्रहण होना विवेक, युक्त शांत रहना, प्राप्त हुये तन धन प्राणी पदार्थ का सद्उपयोग में लाना, बस निर्वासनिक स्थिति रूप श्रेष्ट चोटी में सदा शांत युक्त बिराजना इन सबों का

मनन विशेष (करना) मुख्य गुरुदेव की दया की भूमि पर ही वे सब पूर्वोक्ति अंकुर फूल फल प्राप्त होना निश्चित है॥

छन्द–आगे जन्म में मुक्त होऊँगा, ए आशा सब छोड़ दे।
दिन रैन एकाकार रहि, मन स्मरण को तोड़ दे।
ऐसा समझ दृढ़ यत्न कर, तू मुक्त का ही रूप है॥
है मुक्त होना आज ही, ऐसा समझ दृढ़ यत्न कर।
तू मुक्त का ही रूप है, जल्दी से अपना काज कर।
हाँ मोह की महिमा प्रबल, सन्तो रहो हुशियार हैं।
बहु विघ्न तोड़कर आए हुये यहि द्वार हैं॥
आधी तो मुक्ती हो चुकी, आधे में तू करले सम्हर।
मन वेग को तू त्याग कर, जल्दी से अपना काजकर॥

वैराग संजीवनी–

गुरु उपदेश-विवेक उद्बोधन सहित गुरुपद स्थिति वर्णन और परम पद का विवेक संसार स्वर्थ पूर्ण स्वप्न वत है, देह दुख मय दो दिन की है। मनो वासना वन्धन रूप यही मुख्य बेड़ी है, आकर्षण करने में चुम्बक बन है। इनसे पृथक मैं नित्य अविचल द्रष्टा शांत स्वरूप ही हूँ। शुद्ध चैतन्य अखण्ड निर्विकार सदा सम अपने आप है एवं शुद्ध चैतन्य के एकरस लक्ष बोध प्रकाश सन्मुख रक्खे विना कौन ऐसा सज्जन या साधु या मुमुक्षु है कि उसकी कल्याण की धारा एकरस चला सके, दुख, सुख, हानि, लाभ, मिलना विछुड़ना सबके मन तमाम विकार ऐसे हैं कि जो पल पल में डिगाते रहते हैं।

उन्हीं स्वरूप दृष्टि से ही शांत स्वबश रख के कल्याण में स्थिर रह सकता है,

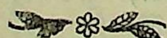
[गुरु शिक्षा मनन—अतः सदा चैतन्य बोध मनन करें,]

१—गुरु सन्त से किसकी अनन्त भ्रान्ति का अन्त नहीं हुवा।
२—गुरू पारख की शरण आने से कौन मुक्त नहीं हुवा।
३—सदगुरु के सत्य सिद्धांत पर चलने से कौन सुखी नहीं हुआ। ४-गुरु रहस्य दया क्षमा शीलादि हंस गुण आदि दैवी सम्पत्ति वा मनुष्य गुण सहित सेवा सत्यादि शुद्ध रहस्य धारण करने से कौन नहीं जीवन्मुक्त हुआ। ५-सदग्रन्थ पढ़ते रहने से मन किसका चंचलता नहीं छोड़ता। ६-निज स्वरूप को यथार्थ स्मरण करके कौन नहीं मुक्त हुवा। ७-शुद्ध हंस ग्रहण करने से कौन नहीं सुखी हुवा। ८-सदा सर्वदा सावधान रहकर कौन नहीं जागृत हुवा। इन सब बातों को सोच समझ विचार कर सदा इन रहस्यों से संयुक्त होना चाहिये, तब भूल नहीं होगी वही जीवन्मुक्त कहा गया है। जिसकी उल्टी समझ और उल्टी क्रियावों का परित्याग हुवा। परम सम्पत्ति स्वरूप ज्ञान है,। १-परम लाभ विषय त्याग है। २-परम कार्य स्वरूप स्थिति है,। २-परम साधन सत्संग सम दम है,। ४-परम धर्म अपना उद्धार है,। परम आचरण समता, क्षमा, नैराश्यता है,—समता, क्षमा, दया, निर्वैरता, निर्मानता, अक्रोध निर्दम्भ हितैषिता, अहिंसा, सरलता, सहनशील, नम्रता, निरभिमान—ये उन्नीस रहनि॥

[ध्यान-सद्भाव पत्रिका]

ध्यान धरूँ मैं दुख जग माहीं। विषय भोग अध्यास सुखाहीं॥
ध्यान धरूँ मैं स्वतः अनादी। जड़ चेतन दोउ भिन्न प्रसादी॥
ध्यान धरूँ मैं जड़ से पारा। ज्ञाता ध्याता स्वबल संभारा॥
ध्यान धरूँ मैं शील क्षमादी। सकल शुद्ध गुण लहत समाधी॥
ध्यान धरूँ मैं गुरुवर स्वामी। सब प्रकार पालत निष्कामी॥
ध्यान धरूँ मैं सन्तन केरो। परम विरागी निर्णय टेरो॥
ध्यान धरूँ मैं गुरु कबीरम्। पारख पन्थ चलायो बीरम्॥
ध्यान धरूँ मैं निज पद केरो। स्वयं पारखी पारख हेरो॥
ध्यान धरूँ मैं मन से दूरी। मनोवेग लखि भिन्न हजूरी॥
ध्यान धरूँ मैं तृप्त अचाहा। सकल कामना दुखप्रद दाहा॥
ध्यान धरूँ मैं सबसे भिन्ना। व्यापक व्याप्य रहित पद चीन्हा
ध्यान धरूँ मैं सुख सब सपना। भासमात्र कलिपत दुख रचना॥
ध्यान धरूँ मैं मुक्त स्वरूपा। निज निराश ज्ञाता पद भूपा॥
ध्यान धरूँ मैं निज निरधारा। निज निज में नहिं अन्य मिलारा॥
ध्यान धरूँ मैं गुरुपद भाऊँ। सत्य शब्द लखि लक्ष टिकाऊँ॥

दो०– एक पल घंटा दिवश निशि, मास वर्ष भर आयु।
ध्यान ध्येय क्षण चलित नहिं, गुरुपद स्वतः सदायु॥
चलत फिरत एकान्त में, बैठत ध्यान जमाय।
कामादिक राक्षस भगैं, प्रेम मुक्त ह्वै जाय॥



शान्ति सद्भाव पत्रिका

शांति स्वतः लहि नहिं कुछ चाहा । दौड़ धूप तजि निजनिज राहा ॥
शांति स्वतः लहि क्रोध न दाहा । क्षमा सहन मन मारि निबाहा ॥
शांति स्वतः लहि पर अघ बाता । राग द्वेष सब बोझ दुराता ॥
शांति स्वतः लहि नम्र अमानी । सब विजाति तजि बोध समानी ॥
शांति स्वतः लहि मन क्रम बानी । भोग सुखन तजि निज ठहरानी ॥
शांति स्वतः लहि देह न हन्ता । रहित उपाधि बसत एकान्ता ॥
शांति स्वतः लहि शोक न हर्षा । सुख दुख मनोभास तजि कर्षा ॥
शांति स्वतः लहि निज अविनाशी । जड़ाध्यास कर्त्ता भ्रम नाशी ॥
शांति स्वतः लहि निज रमणा । देखत भिन्न मिलत नहिं तर्णा ॥
शांति स्वतः लहि छोड़ि कुसंगा । चाव सकल परमारथ अंगा ॥
शांति स्वतः लहि तजि जड़वादा । सरल पारखी पारख आदा ॥
शांति स्वतः बिन सुख बेकामा । आदत दुख अध्यास लगामा ॥
शांति स्वतः बिन सब विज्ञाना । यंत्र कला मन रोग बढ़ाना ॥
शांति स्वतः बिन पाँखी माखी । जरत फँसत दुर्गुण सब चाखी ॥
शांति स्वतः बिन अर्थ न कोई । स्वप्न मनोमय में सब रोई ॥

दो०- महल सेज नारी बिचौ, स्वाद शौक विज्ञान ।
सोवत शपना आगि लखि, जरत करत हा ठान ॥
रोग बासना बढ़त लखि, सुबुध भोग सुख त्याग ।
शांत स्वतः पद पाय करि, सर्वोपरि बड़ भाग ॥

कीर्तन शब्द—४५

जपाकर-जपाकरगुरूजीगुरूजी, जपाकर-जपाकरगुरूजी गुरूजी ॥टेक

गुरुजी लखाये जगत ये अनादी, उभय धर्म शक्ति अनादी बतादी
गुरू जी गुरू जी २ ॥ जपाकर जपाकर
गुरुजी बताये जो तू सर्व ज्ञाता, ये जड़ देहसे भिन्न साक्षी जनाता
गुरू जी गुरू जी २ ॥ जपाकर जपाकर
गुरूके प्रसादौ गहे सद्गुणोंको, अहैं शील सत्यादि रक्षक सबोंको
गुरू जी गुरू जी २ ॥ जपाकर जपाकर
सत्संग सद्ग्रंथ एकान्त साधन, निश्चय व साधनसे होगा स्वबशमन
गुरू जी गुरू जी २ ॥ जपाकर जपाकर
गुरूकी कृपा अब सकल आश पूरी, रहा प्रेम गुरुपद स्वतः जोहजूरी
गुरू जी गुरू जी २ ॥ जपाकर जपाकर

कीर्तन शब्द

समझ समझ मन मेरा, करले सतगुरु का अब ध्यान ।
कोइ नहिं साथी जग में तेरा, करले सतगुरु का अब ध्यान ।।टेक
मन भव बन्ध छुड़ाने वाले, दोनों जाल परखाने वाले ।
बन्दीछोर है गुरु का इससे नाम, करले सतगुरु का अब ध्यान ।। १
सर्व कुसंग छुड़ाने वाले, अहिंसा धर्म चलाने वाले ।
इससे गुरुका विघ्न विनाशक नाम, करले सद्गुरुका अबध्यान ।। २
जगत अनादि बताने वाले, जड़ से पृथक चेताने वाले ।
इससे गुरु पारख ये पावन नाम, करले सतगुरुका अबध्यान ।। ३
स्थिर पंथ लगाने वाले, धीर कबीर कहाने वाले ।
यहि विधि जागृत करता है भवयान, करले सतगुरुका अबध्यान ।। ४

॥ भजन ॥

तुम काहे न मानो कबीर, भाई गुरुवरसे साँची न्याय सुनो ।
गह लो अन्त में अब धीर, भाई गुरुवर से ॥ टेक
जीव जमा जो सत्य पिछानै, जड़ चेतन आनादी मानै ।
तो कबीरको क्यों नहिं मानै, दिली भाव जब इकसा जानै ॥
तुम कैसे कहे हो अधीर, भाई गुरु गुरुवर से ॥ १
जो बीजक नहिं मानै भाई, तो जीव जमा हम कैसे पाई ।
जोकहो पृथकसे जानि गयो है, मनमत कोऊ बताय दयो है ॥
याको भी निर्णय हीर, भाई गुरुवर से ॥ २
जो हम पृथक से जाने भाई, जीव जमा कस गुरुमत गाई ।
जीव जमाजो बीजक शिक्षा, फिर मनमत तुम क्योंकहि दिक्षा ॥
कइयो जो दीपक जलीर, साँची न्याय सुनौ ॥ ३
बोली भेद पदार्थ जो आगी, काभयो भेदजो जलत जलागी ।
नीर छीर का करै निवेरा, कहहिं कबीर सोई जन मेरा ॥
अब तो परख पद थीर, साँची न्याय भयो ॥ ४

॥ भजन ॥

गुरुपद ऐसो है महान ॥ टेक ॥

भूल औ निर्भूलपद दुई, इक दुखद इक शान्त ध्यान ॥ १
बोध रवि के उदित होतै, दुख प्रद अबोध को भयो हान ॥ २
इक ओर भ्रम से बिकल जिव, गुरु के चरण में विनय ठान ॥ ३
गुरू परख देव दयालु हो निज, युक्ति उक्ति सब भ्रम दहान ॥ ४

जड़भास भिन्नहि परखि डाले, निज परखगुरुपद सुजान ॥ ५
जिमि जौहरी के संग दृष्टी, दृष्टि सम नहिं भेद आन ॥ ६
ज्यों दीप दीपहिं लेशि समसम, बोध रहनी सम प्रमान ॥ ७
ज्यों शिक्षकों विद्यार्थी दुइपद, सैकड़ों तहँ पढ़ि पढ़ान ॥ ८
गुरु शिष्य त्यों पद उभय ही में, होय सहस्रों पद प्रधान ॥ ९
याते सु उच्छेद न होत धारा, सब सन्त गुरुको यहि प्रमान ॥१०
सब ग्रंथ है गुरु शिष्य बिच, सब बोध निर्णय कहि ठिकान ॥११
भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख स्वतः पद दे दृढ़ान ॥१२
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी कहि सोइ प्रेम यान ॥१३

॥ अन्तिम स्मृति कर्तव्य पद ॥

गुरु जी गुरु जी गुरु जी जाप, अन्तिम तक मेरा ये ध्यान । टेक
मैं चेतन हूँ, देह से न्यारा, सदा अखण्ड शांत पद सारा ॥
कर्ता धर्ता तज अनुमान, अन्तिम तक मेरा ये ध्यान ॥ १ ॥
सुख नहिं रंचक जग के माहीं, गुरु पद कमल सुगुण मिल जाहीं ।
गुरु हित कार हृदय न भुलाना, अन्तिम तक मेरा ये ध्यान । २ ।
जग की ममता फाँसी तोड़ूँ, निज पद प्रेम निरंतर जोड़ूँ ॥
जीवन सफल परख पद ध्यान, अन्तिम तक मेरा ये ध्यान । ३ ।

चन्द्रही को चातक विपुल, चातक चन्द्रहिं एक ।
हमरे सम तुम्हरे अधिक, तुम्हरे सम मम एक ॥
रवि के कमल अनेक हैं, कमलन के रवि एक ।
हम सद्गुरु के अनेक हैं, गुरु सम हमरे एक ॥

(सद्गुरु स्वागतम्)

गत वर्ष में जब सद्गुरु देव नेपाल पधारे थे बालाज्यू कुछ काल रहकर जब तारेश्वर तरफ जा रहे थे वहाँ का एक दृष्य सम्वादः-आज प्रेम बहादुर (सन्त सनेही) के मकान पर कैसी भीड़ भाड़ है, हे मित्र वहाँ सब उच्चस्थान पर भद्र विरति मुद्रा सम्पन्न कौन महा पुरुष स्थित हैं ये सब उनके सामने चारों तरफ से कर बद्ध स्तुति कर रहे हैं। आरति पूजा कर के उसी प्रकार गुण गान कर रहे हैं। मानो किसी न्यायी नृपाल के आगे सब अनुचर गण ! ऐसे गुण ग्राही नामी की महान महिमा कह कर गुण गान कर रहे हैं। हे मित्र यहाँ तो आकर समस्त दुख विस्मृत होते जा रहे हैं। ज्ञाता मित्र बोल रहा है। हे तात ये सब के शिरमौर पूज्यपाद महिमा मूल वैराग्य मूर्ति स्वामी सद्गुरु विशाल देव हैं। ये अवध प्रान्त उत्तर प्रदेश से यहाँ के प्रेमियों की विशेष आग्रह करने पर हिम प्रदेश के जनता पर असीम कृपा कर आप दर्शन दिये हैं। आप का सिद्धांत ये है। अहिंसा धर्म--स्वरूप बोध अमृत स्थिति-सबके साथ धर्माचरण शील सम्वन्धन इन्द्रिय मन को वहिरप्रपंचों से निरोध करके निष्प्रपंच होकर अपना उद्धार करना साथही साथी जनों को सत्मार्ग पर चलने का संकेत करना जगत अनादि जड़ चेतन दोनों भिन्न-वासनावों का दमन करने से मुक्त, सद्गुरुदेव की भक्ति तन मन धन वचन से जीवन पर्यन्त

सेवा। दृढ़ विवेक. वैराग्य सहित, सत्य शब्द रूप जीवन्मुक्त, सदा के लिये निराश वृत्ति सहित प्रारब्धांत में अचल स्थिति हो रहना, तात्पर्य यह है कि समस्त दैविक धर्मों का सार तत्व लेकर आगे बढ़ते हुये सर्व परीक्षक एकरस पारख सिद्धांत में स्थित रहना आपके समाज में नेमी प्रेमी भक्त जिज्ञासु नर नारी समस्त धर्म प्रेमी बन्धु वर्ग हैं। सभी मिल करके देखिये ये कैसी सुन्दर स्तुति प्रार्थना कर रहे हैं। मानो एकता रूपी सूत्र में बँधे हुये सीधे मुक्ति के आदर्श मार्ग पर चल करके स्वयं सबको संकेत कर रहें हैं।

निजी जीव के जीव प्रभु, पारख धन्य सुठाँव।
नमों नमों शरणागती, विशद भाग्य गुरु पाँव॥ १॥

हे मित्र ! सुना देखा आपने देखिये कितने उत्साह से सर्व भक्त गण महाप्रभु को पूजा करके अन्तर भाव शुद्धि युक्त स्वरूप स्थिति के अधिकारी हो रहे हैं बात यह है बीस बाइस दिन रह कर आज गुरुदेव तारेश्वर में जाकर एकान्त स्थल में विराजेंगे ! कुछ देर के बाद ताम्र दान में गुरुदेव बैठे हैं। सभी जनता करबद्ध नियमानुकूल विनम्र हो बन्दना भाव करके कह रहे हैं:—

जय जय सदगुरु देव मंगलमय प्रारब्ध जय जय जय सदगुरु देव साथ में सभी 'जो जैसहिं तैसहि उठि धावा। बाल बृद्ध कोइ संग न लावा॥' गुरु आगमन सर्व शिरे जान मान कर गुरुदेव के साथ साथ आगे पीछे सब चल रहे हैं। गुरुदेव की बारम्बार

आज्ञा से जनता लौटती है। मुख्य सेवक सन्त वर्ग साथ चलते हैं। आगे चलते हुये धरमस्थली ग्राम के चौतरा में किंचित विश्राम कर वहाँ के जनता से पूजित हो गुरुदेव आगे बढ़ते हुये तारेश्वर की फेदीं तलहट्टि जीतपूरमें पहुँच गये हैं, वहाँ एक बाजार है गुरुदेव वहाँ से मील भर उच्चस्थान तारेश्वर लक्ष से चढ़ते हुये जा रहे हैं। यह पहाड़ की चढ़ाई है, कभी पैदल कभी ताम्र दान से—

चौपाई

चलत नाथ साहेब तहँ कैसे। मानहु धीरज तन धरि ऐसे ॥
घूमि-घूमि गिरि भाग निहारहिं। मानो प्रकृतिदशा लखि पारहिं॥
जहँ तहँ करि विश्राम बिराजे। फेरि चलत मानो सुख साजे ॥
चलत चलत तारेश्वर आयो। हिमगिरिके गिरि मध्य सुहायो
सुन्दर दारु पषाण कुटीरा। संत सहित जसँ सतगुरु बीरा ॥
झरना झरहिं सु पावन धारा। जल प्रपध्वनि करत अपारा ॥
भाँति-भाँति के बृक्ष सु फूले। चारु सुगन्ध सु पल्लव मूले ॥
त्रिविधि वायु बन हरितल पावन। उच्च शृंग लखि हृदय जुड़ावन ॥
कहँ स्नान ध्यान कहुँ करहीं। कहुँ समाधि मय शांत सहजहीं ॥
कहँ सयन कहुँ बैठि सुखासन। कहुँ बिचरहिं कहुँ शब्द विकाशन
यहिबिधि चार मास चलि भयऊ। मानो पलक समानहिं ठयऊ ॥
तब वै सकल भक्त जन आवैं। भाँति भाँति करि प्रेम निभावैं ॥
सुन उपदेस बने सब हंसा। अस गुरुदेव प्रताप बरंशा ।
सोइ प्रताप लखि अजहूँ प्रानी। कोटि कोटि भव तरत अमानी ॥

दो०—सो विशाल गुरुदेव जी, पूजित सम्यक इष्ट ;
जय जय मंगल मय रमत, जिनके कुछ नहिं कष्ट ।

चौपाई

अजहुँ ध्यान धरि गुरु गुरु जानै । तेज प्रताप विपुल यश मानै ॥
परख बोध रहनी सब पूरे । केवल भक्तन के हित सूरे ॥
जो भवयान महान बनाये । मुक्तिद्वार कहि परख सुझाये ॥
सत्यनिष्ठा सम्यक सब शोधे । जानत ही सब दुक्ख निरोधे ॥
अस गुरुदेव के दर्शन पाये । ते सब धन्य जे निष्ठा लाये ॥
करिहैं ते कल्याण सुहाये । बिघ्नराग दलि गुरुपद पाये ॥

(गुरु पद में ढीले या मन्द पड़ने पर उठने का आदेश)

साहस हिम्मत पुरुषार्थ की कुञ्जी भर देनी चाहिये क्या घड़ी धीमी पड़ती हुई देख के पुनः कूकी नहीं जाती है । क्या मनुष्य कहीं चलते हुये थक कर बैठ गये तो फिर उठकर चलता नहीं ? क्या शत्रु से, रोग से, सूल से, संकट से, दर्द से धोखे से एक ही बार बचने का प्रयत्न किया जाता है । कदापि नहीं सब दिन सब समय मरने तक मनुष्य मात्र बाधकों से बचने और साधकों रक्षकों से पूर्ण होने का प्रबन्ध साहस उक्ति प्रयुक्ति करते ही रहते फिर गुरु पथ में आकर-गुरु-भक्ति करना एवं प्रपञ्चासक्ति का त्याग, स्वरूप शांति की धारणाओं को शिथिल क्यों पड़ने दिया जाय ! शिथिल हो तो तीव्र करने का उपाय क्यों न किया जाय ? सकल संत चेताते गुरुदेव जोर

लगाते साहस हिम्मत पुरुषार्थ बढ़ा देते और इष्ट मित्र साथी संगति सभी तो हमारी भलाई चाहते हैं। अहोः यहाँ तक कि शत्रु रोग पीड़ा निन्दा गिरे परे शत्रु प्राणी कहाँ तक कहें नदियों की धारा बीज वृक्ष जड़ सृष्टि से भी तो अवधूत दत्तात्रय के न्याय शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

जल चल पावक रूख तृण, मानुप पशु खग खान।
गुण ग्राहक सबसे गहे, शिक्षा गुरु वत जान ॥

लीजिये कितनी सहायता चाहते हैं। किंचित दृष्टि तो दीजिये।

फेर परा नहिं अंग में, नहि इन्द्रियन के माहिं।
फेर परा कछु बूझ में, सो निरुवारेहु नाहिं ॥

शिक्षा सार—

'जब कोई आकार कहता कि अमुक मनुष्य मर गया, तब गुरु विशाल देव कहने लगते—'इसीसे अपनी जिन्दगी में सत्यन्याय भक्ति वैराग्य पूर्वक अपना काम बना लेना चाहिये। प्राणी-पदार्थ समाज सेवक सब तो न जानें कल किसके थे, आज ऊपर से तुम समझते हो हमारे हैं? भीतर उनके अंतः करण में क्या है? कल किसके रहेंगें? पता नहीं अतः अपने में ही सन्तोष पूर्वक अपने ही कार्यों में तत्पर रहना चाहिये। इत्यादि ॥

आपने कहा—

यदि थोड़ी देर के लिये प्राणी पदार्थ—स्ववश माने भी

जायँ, तो अन्तिम बिछुड़न होना तो निश्चय ही है—वह अन्तिम इसी क्षण से दूसरे क्षण में निश्चित ही है। फिर स्वयं विवेक वैराग्य उपासना में पुरुषार्थ किये बिना मानसिक रोग की निवृत्ति भी नहीं हो सकती। जब तक मानसिक रोग नहीं त्याग होगा तब तक जीवन में अक्षय शान्ति भी नहीं मिल सकती। भले ही सब आज्ञा तत्पर हों-हृदय में जलन ही रहेगी। अतएव इसी क्षण से विवेक बढ़ा कर वैराग्य भाव में एक चित्त से विश्राम लेना परम पुरुषार्थ है। आश्चर्य तो यह कि जो जन्म जन्म में दुख दिया, दुख दे रहा है, आगे देता रहेगा, ऐसे मनोमय रिपु को जीतने के लिये परिश्रम नहीं करता, जो क्षणिक रिपुता करता है तिसी के विनाश में लगा रहता है यह भारी भूल है—इस भूल शूल को परख के मिटाना चाहिये।

(आपने कहा)

कुछ कुछ अन्धकार में जहाँ तक दृष्टि जावे वहाँ तक चले जावो पुनः वहाँ से आगे दिखाई देगा-देखी ठौर में पुनः पैर बढ़ा कर चले जाइये फिर वहाँ से उतना ही आगे दिखाई देगा इसी क्रम से आप जहाँ जाना चाहें जा सकते हैं। किन्तु एक ही दौर से बहुत दूर देखना चाहें अंधेरा में ऐसा नहीं हो सकता इस प्रकार जितना अनुभव हो उतना मन कर्म वाणी से सत्य वर्ताव करिये स्थिर होकर आगे विवेक कीजिये तहाँ तक विवेक प्राप्त हो पुनः उस पर स्थिर होइये-ऐसा करने से आप

धीरे धीरे निःसन्देह स्वरूप विचार में सदा के लिये शान्त पद प्राप्त कर लेंगे ॥ ५—महान विराग मूर्ति गुरुवर विशाल देवका अनुभव है कि—छोटे छोटे कार्य व्यवहार बोल चालों का प्रथम सुधार हो जाय तो बड़े और सूक्ष्म कार्यों का भी सुधार सम्भव है बड़े गंभीर चिन्तन सहित छोटे बड़े कार्यों को साधन का ढंग सीख कर स्ववश होना चाहिये।

(आपने पुनः कहा)

कुछ सज्जन कहते हैं—हमारे पीछे बड़े बड़े अधिक उपाधि व्याधि रगड़े झगड़े लगे हैं, इससे स्वरूपज्ञान प्राप्त करने ठहरने का अवसर न मिलता, दूसरे कहते हैं, हम परमार्थ अंगों में बढ़ना चाहते हैं पर मनोवेग की आँधी-हमें बढ़ने नहीं देती। तीसरा कहता है हम बड़े भ्रम में पड़े हैं किसको मानें किसको नहीं ? इत्यादि ये सर्व भ्रम मान्यता रोग शोग शूलवत पीड़ा दे रही है तो आप सब इसकी औषधि क्यों न करें। निश्चय ही ठीक ठीक रोग ज्ञाता के निकट जाय पारख औषध सेवन से इन रोगों से छूटे हुये कितने भक्त सज्जन संत जन प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, तैसे ही आप सब भी प्रयत्न करें। आगे प्रश्नोन्तरी पर ध्यान देवें ॥

प्रश्न—निज कार्य पूर्ण करना क्या है ?

उत्तर—आप सद्‌गुरु का उपदेश ऐसा है मेरे प्रिय जिज्ञाशुओं ! अपने हृदय में विचार करिये कि इस संसारमें क्या सार

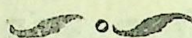
है क्या असार है। जड़ क्या है चेतन क्या है? मैं कौन हूँ? जगत क्या है, यह देह क्या है? इसमें मेरा सम्बन्ध क्या है? कैसे छूटेगा। सुखदायी व दुखदायी क्या वस्तु है? इत्यादि बातों को दिन रात विचारना चाहिये। क्योंकि ऐसा विचार न करने ही से यह अनादी काल से दुख उठाया गया है। उठा रहा है और आगे भी उठायेगा, जैसे सिंह अपने को भूल गदहा मान के लादी वाला बन बैठा। तैसे यह जीव अपने स्वरूप को भूलकर विषयों की इच्छा करता है। तो इसको सुख कैसे मिलै क्योंकि अपना स्वरूप अखण्ड अजर अमर अविनाशी एकरस त्रयकाल रहने वाला है, और जो तत्वों के सम्बन्ध से बनी हुई वस्तुयें हैं, परिणामी चञ्चल औ नाशमान है। वह नदी के वेग समान हैं।

क्षण क्षण में परिवर्तन होती जा रही है। जैसे मर्कट कभी वृक्ष की एक डाली पर ठहरता नहीं। जैसे वेश्या एक पुरुष के पास नहीं रहती। जैसे खुली हुई आककी रूई स्थिर नहीं रहती, जैसे जाती हुई रेल छाया, तथा बादल की छाया थिर नहीं। पवन के वेगसेचालू रहती है,जैसे तड़ित चमकस्थिर नहीं रहतीहै, दूध फेन बालू घर जल दुलबुला, घास ओसथिर नहीं, इसीप्रकार से संसार की सर्व विषय भोगों को तथा कुटुम्बियों को समझो कि ये कभी मेरा साथ नहीं पुरावेंगे, क्यों कि मैं तो अखण्ड सदा काल एकरस हूँ, और ये सब क्षणिक हैं, सो अपना अखंड पद छोड़कर क्षणिक वस्तुओंको मैं सुख मानकर क्यों पकड़ता हूँ,

क्या अखण्ड से इनमें अधिक सुख है, नहीं नहीं यदि अखण्ड से अधिक सुख होता तो सभी लोक अपनी अखण्ड स्वरूप को छोड़कर विषय भोग भोगते हैं। तो उनको सुख ही होना चाहिये, सो तो होता नहीं यदि होता तो महा पुरुष उसको त्याग कर क्यों हटते हैं। ताते ग्रन्थों द्वारा सत्संग और अपने अनुभव से प्रतीत होता है कि इनमें सुख नहीं, १-रात दिन सब सुखों का भोगी किसी न किसी प्रकार इतना व्याकुल है परवश है दुखी है पीड़ित औ उत्पात घात पूर्ण है कि वह इनसे सुख न देख कर देवी देव ईश ब्रह्म खुदा अल्ला ईशा मूसा योग यज्ञ जप-तप ध्यान अनुमान कर्म उपासना योग ज्ञान विज्ञान आदि की शरण लेना चाहता है। अब विवेक यह करना है कि जो मैं जीव चेतन न होऊँ तो—यह सब भास आस। नाना कलायें हिन्दू मुसलमान स्वर्ग-नर्क देवी-देव ब्रह्म-ईश्वर कर्त्ता-धर्त्ता लोक लोकान्तर तीर्थ व्रत दान धर्म यज्ञ जप तप उपासना भक्ति योग ज्ञान विज्ञानादि ग्राह्य-अग्राह्य शुभाशुभ कर्तव्य दोनों प्रकार से कौन निरूपण करे? 'नाना कला कल्पना है मनुज की। तुम्हारा नहीं तो तुम्हारे अनुज की काशी साहेब भी प्रकाश दे रहे हैं।

सब सिद्धांत कौन किय जग में, आदम मानुष तुम्हीं तो हो ॥टेक
ईश्वर खुदा जगतका कर्त्ता, कल्पना किया सो तुम्हीं तो हो ॥ १
वेद शास्त्र विद्या कलादि, बानी बनाया तुम्हीं तो हो ॥ २
कर्म उपासना योग ज्ञानादि, मारग चलाया तुम्हीं तो हो ॥ ३
खानि-बानि स्त्री-पुत्र धनादि, मायामें फँसाता तुम्हीं तो हो ॥ ४

विषयानन्द अध्यास तजि के, मुक्त होनहारा तुम्हीं तो हो ॥ ५
पारखी गुरु का खोज लगा के, पारख पाया तुम्हीं तो हो ॥ ६
काशी कहैं कहाँ लो कहिये, सब जाननहारा तुम्हीं तो हो ॥ ७



अध्याय-७

अविचल-सदन, जीवन गति की एक मोड़

सुखाशक्ति विघटन, चैतन्य महिमा

प्रश्नोत्तरी

शुभ संत देव शिक्षा देते हैं हे जीव ! जैसे घर में अग्नि लग गयी जो गृह जलने लगा और बड़े बेग से आँधी चलने लगी। वह्नि भूमिका उड़ने लगी तो जान बचने के लिए बाल बच्चा, धन-जन दौलत सम्पूर्ण की आशा त्याग करके संवेग ही। भाग करके प्राणी अपना जान बचा लेते। तैसे ही अपना कल्याण करने में हे भाई ! प्रतिज्ञा पूर्वक जुट जाना चाहिए। क्योंकि श्वाँस बाहर निकल कर भीतर आवे या न आवे। दू अक्षर के शब्द बोलने लगा एक अक्षर बाहर निकला दूसरा अक्षर भीतर रह गया प्रारब्ध समाप्त हो गयी। देह अंत भया इतना तक भी

इस देह का भरोसा नहीं। देखो जड़ के कार्य बने हैं यत्न करने पर घर मशीनादि कुछ दिन रह सकते हैं। किन्तु चेतन संबंधी देह का इतना भी भरोसा नहीं। सो जान के स्वयं मोक्ष साधन शीघ्र कर लो। क्या अचल अमर है और दुक्ख रहित पद, उसको प्रश्नोत्तर समझ के स्थिर होना चाहिये—

प्रश्न— दोहा—

को है अविचल अमर सद, मिलन बिछोह न काह।
दुःख रहित सद भूमि जो, गुरुवर कहिये ताह॥

उत्तर— चौपाई—

सुनहु सकल परमारथ बाता। जो भवयान कहेउ विख्याता॥
जेहि जाने जेहि माने ठाने। जीवन्मुक्त उदार प्रमाने॥
सो रहस्य सब कहउँ अनूपा। जो पद अचल गहहु गुरु रूपा॥

रहस्य युक्त स्वरूप स्मरण—

स्वतः सत्य तू जान जीव। पंच विषय जड़ भाव कीव।
यहि के परे और नहिं कोय। जड़ प्रियता तजि दुख को खोय॥
सुनहु शिष्य गुरु शिक्षा येही। दुख सुख रहित तु अमर अचेही।
धीर क्षमा संतोष दया। सत्य शील गुरु भक्ति लया॥
गुरुदेव नमन करि शरण गहौ। सत्पथ लै यहि रहनि रहौ।
समता सरल सजगता धारे। ह्वै उदार निज कष्ट निवारे॥
गहै नहीं कोइ बंधन जगके। भूलि न जाय मोह में धँसिके।
दोहा—तन उदास सब भोग तजि, सद विवेक मन काज।
ताहि कराओ प्रेरि अब, जेहि न सजै दुख साज॥

(भवयान)

चौपाई

औरहु सकल विवेकी संता । कहत रहत गुरुपद अतियन्ता ॥

झूलना

वैराग्य को आशन विवेक कि माला, शांति हिये दृढ़ धरना जी ॥
परख करु मणका सुरति का धागा, नास्ति माया को फेरना जी ॥
परख प्रकाशी हंस सत्य है, जाप सो हरदम जपना जी ॥
काया बीर कब्बीर कहावै, बीजक का यहि कहना जी ॥

[निर्पक्षसत्यज्ञान०]

[पंचग्रंथी गुरुबोध प्र०]

काल कला बहुतक प्रचण्डा । जाकी डर कम्पै ब्रह्मण्डा ॥
सो गुरु पारख लहत नशाई । पारख लहै दृष्टि फरियाई ॥
हे शिष्य गुरु पारख अपनावो । जाते ठहरि हंस पद पावो ॥
लखै जाल सो थीर पद पावै । फेर मिटै ना जुइ निभरमावै ॥
सुधरे गुरु सेवा शिष्य होई । परख लहै दृष्टि पारखी सोई ॥

दोहा—हंस द्रष्टा पद थीर लहि, परखाये सब जाल ।
सदा सुखारी पारखी, नजरे नजर निहाल ॥
पारख सबको थीर पद, ठहरि रहे सत्संग ।
मन माया कृत गुणन को, देखै मिथ्या भंग ॥
गुरु साधुहिं सन्मानहिं, मिथ्या जालहिं त्याग ।
साँच हृदय दाया सहित, निज सुख गुरु अनुराग ॥

बीजक साखी

जो तूँ साँचाँ बनियाँ, साँची हाट लगाव।
अन्दर झाड़ू देय के, कूरा दूरि बहाव ॥ ७४ ॥
काला सर्प शरीर में, खाइति सब जग झारि।
कहहिं कबीर ते बाचि है, जो रामहिं भजै बिचारि ॥१०१॥
"कहहिं कबीर सुनो सन्तो हो रमैयाराम।
परखि लेहु खरा खोट हो रमैया ॥"

[शकुन, बैत०]

लाभ लालच छोड़ के, सत्संग हरदम कीजिये।
आवागवन के फाँस को तुम परख कर तजि जीजिये ॥
"करौ अभाव विषय सुख जग का।
साँच विराग न राखै कोई दुख का ॥" भ०

[जीवन गति की एक मोड़, विरागपथ की ओर]

एक बार आप निकट वर्ती से विराग पथ पूर्ण की सामग्री प्रश्नोत्तर-देने की निम्न प्रकार कृपा किये प्र०-आवश्यक क्या है ? उत्तर-विराग पथ रूप अभय साम्राज्य प्राप्त कर तहाँ स्थिति होने के लिये विराग के सभी अंग धारण करने होंगे सभी अंगो का वर्णन सत्संग सद्ग्रंथ-निज अनुभव संत सद्गुरु सम्मत से मनन चिंतन पुष्टिकरण करते रहिये। और करना ही क्या है ? जैसे अज्ञ जीवों को इन्द्रिय सुख लेने के लिये सब कुछ उसका निछावर है। तैसे कुछ भी समझदार विवेकी जनों का सबकुछ इन्द्रिय रहित बासना वर्जित मनक्रदन-विगत-अक्षय

स्वरूप स्थिति रूपी महा लाभ के उपलक्ष्य में सर्वस्व निछावर है भेट एवं बलि होकर जीवन गति की समस्त मोड़ रुख भाव सजोरत्व बना कर इसी जीवन में निष्कामी निष्क्रोधी निर्लोभी निर्मोही निद्वन्दी निर्दोषी, निःशोकी हो जाना है। प्र०—हमारी प्रतिज्ञा और विशुद्ध जप क्या है। उत्तर— हमारा सबकुछ हमारी शांत की ओर होकर प्रारब्ध पूर्ण होवै। हमारी सर्वस्व गति मति अशान्त से हट कर स्वरूप बोध में अस्त होवै यही नित्य जाप करके ध्येय पूर्ण में वीर गति लेना उज्ज्वल पथ है।

[चैतन्य बोध महिमा बीजक वित्त प्रदान]

जो महा पुरुष चैतन्य बोध विधि से स्थिर रहते हैं। उनकी दिब्यमय जीवन ज्योति सबके सन्मुख प्रत्यक्ष जगमगा रही है वे किस लक्ष्य से क्या करते हैं? यह तो आपही महात्मा पुरुषोत्तम का संग करके परीक्षा प्राप्त हो सकती है संकेत मात्र कहा जा सकता है। वाक्य से चाहे जितना कहा जाय हृदय भाव सदा उससे ऊपर रहेगा-भाव चाहे जितना ऊँचा हो भाव जिसके लिये और जो करता दोनों का चैतन्य स्वरूप सदा-सर्वदा-बोध प्रकाश अनादि सत्य ही रहता है। इसलिये बोध वान विवेक वैराग्य संयुक्त हों तो उनकी सदैव निश्चित निर्विकार स्थिति होती है क्योंकि जो तनमन प्राणी जागृत सुषुप्त-निवृत्ति प्रवृत्ति चल और थीर वृत्ति सर्व का परीक्षक सर्व से न्यारा है-वही महिमा मूल है।

उसे पाँच प्रकार से यहाँ मनन करते हैं।

१—एक तो जो जिसे जानता है—देखता है वह उससे घट-द्रष्टा न्याय पृथकही रहता है यही हेतु है कि चैतन्य जड़ पिण्ड

ब्रह्माण्ड मनोवृत्ति से पृथक ज्ञान मात्र अखण्ड है। क्योंकि वह सर्व ज्ञाता साक्षी है।

२—जो जिसमें का होता है उसके गुण उस कार्य में अवश्य रहते हैं जैसे चार जड़ तत्व निर्मित-सर्व कार्य यंत्र घड़ी आदि सर्व अज्ञात हैं। किन्तु चेतन चेतनरूप होने से जड़ से पृथक् स्वतः अनादि है।

३—अपने से पृथक् ही का त्याग होता है। रोगी वृद्धादि संकट में सभी देह मन प्राण का साथ त्यागना चाहते हैं—इससे सर्व त्यागक चेतन सबसे भिन्न है।

४—स्वयं जीव निःसंबंध-शांत अपरिवर्तन होने से ही परम शांत होना चाहता है। इसीसे वह "खोजत ज्यों का त्यों ही।"

५—सर्व पारख स्वरूप में शांत रहने वाले राग द्वेष कामना आसक्ति के छेदन के लिये उतनाही प्रयत्नवान होते हैं जैसे कामासक्त नारी की ओर।

यथा- सुखाशक्ति विघटन की युक्ति वर्णन]

दृष्टान्त—(काम पर)—एक पुरुष को बहुत सुन्दर स्त्री प्राप्त थी, वह केवल उसके रूप दीपक पर निछावर था। स्त्री का हर प्रकार से प्यार करता, फिर भी स्त्री का मन उलटा था। वह जैसी कुलीन स्त्री होती है तैसी न थी, बल्कि पति वंचक थी। एकबार वह स्त्री अपने पुरुष को अपने अच्छृङ्खल मार्ग में रुकावट समझकर मार डालने के लिये शस्त्र लेकर उसके गर्दन को टोने लगी, वह पुरुष बोला-क्या खेल रही हो

उसने कहा—हाँ ! ऐसा कहते ही वह खड्ग चला दिया—पुरुष के गर्दन पर से लग कर छाती भाग में वह खड्ग धँस गया। ऊपर से रजाई पड़ी थी नहीं तो बहुत घाव हो जाता, यह पुरुष उठ बैठा और बोला—अरे सरले। विमले !! तैं कौन सा खेल रच रही है ? इतने में फिर पीठ पर खप्प से शस्त्र चला दिया। पुरुष उठकर खड़ा हो गया, फिर एक जगह वार कर दिया, वह पुरुष हृष्ट पुष्ट बलवान था, चाहता तो स्त्री को पकड़ के ठीक कर देता, परन्तु ममता वश 'यह क्या कर रही हो ! बस इतना ही वाक्य उससे निकलता रहा। अंत में वह भाग कर जान बचाया, मानो खून से वह नहवाया गया—ऐसा भयंकर बना हुआ वह काम किंकर अपने दूसरे कुटुम्ब के घर में हाय-हाय करते-करते गिर पड़ा मूर्च्छा आ गई, भाई लोगों ने उसकी दवा पानी करके अच्छा किया। और सबों ने पूछा—कहो ! इस स्त्री को दण्ड दिया जाय या निकाल दिया जाय ? वह बोला—मेरी स्त्री मुझे बहुत प्यार करती थी मगर किसी नशा के वश में होकर ऐसा काम किया है—ऐसा कह कर फिर उसी की शरण गया। वह खूब जानता था कि स्त्री मुझ से राजी नहीं है तो भी उसीमें निछावर था। निदान वह स्त्री किसी नीच के साथ चली गई—यह पुरुष भी उसीके पीछे सिर्री बन गया। हाय ! हाय !! कहाँ पर ? हाय-हाय कहाँ पर ? इसी जाप में उसका जीवन नष्ठ हुआ। सोचिये ! जब अनमिलता में इतना बिरह बियोग नेम प्रेम-तो दिल मिलान अनुकूल हो तो फिर उसकी

बिवशता का तो वर्णन ही असक्य है। सच है 'बिकट नारि पाले परे'' सुखाशक्ति उन्मत करती है। इस प्रकार यह अविनाशी जीव मनोवृत्ति से प्रेम करके—

चौपाई—

तजत गहत अनादि ते देहा। सुख के हेत करत जिव नेहा ॥
तजत देह संसृत रहि जाती। पुनः देह तैसी उपजाती ॥
माया के कारज के द्वारे। माया में तूँ पुनः पधारे ॥
माया के गुण में जो मोहै। लै कै चली गुणी में तोहै ॥
माया चंचल को जो ध्यावै। तेहि को माया नाच नचावै ॥
है प्रवाह सम्बन्ध बिजाती। पारख पद पाये छुटि जाती ॥
देह ते करम करम ते देही। पुनः पुनः ऐसे धर लेही ॥

सवैया—इन्द्रिन के वशि भूलि पर्‌यो खुद पंच विषय महँ जा लपटान्यो। ज्यों करि मीन पतिंग फँस्यो मृग त्यों अलि पुष्प में जाय भुलान्यो ॥ ज्यो शुकश्वान छछून्दरि सर्प ने जाय ग्रस्यो निज प्राण नशान्यो ॥ त्यों लपट्यो मति मंद विषय सुख देत नहीं निज रूप पिछान्यो ॥१॥

छन्द—

अपने निजरूप को भूलि परा, माया पर लक्ष लगाया।
माया से चित्त को खैंचि लिया तब, निज स्वरूप लखि पाया ॥
पूर्व ब्याल के संस्कार ते रजु, में सर्प देखाया।
निज रूप (हैता) के संस्कार ते, जड़ में प्रीति लगाया ॥
भर्म छुटै गुरु ज्ञान मिले जब, तिमिर दोष तब नाशे।

तुर्त यथारथ ज्ञान होत ही, स्वयम प्रकाश प्रकाशे ॥

इतना कह कर गुरुदेव ने कहा हे शिष्य तुझे क्या निश्चय हुवा । शिष्य बोला गुरुदेव–

दोहा–मुझे नेत्र देखै नहीं, गंध लेत नहिं घ्राण ।
मुझे श्रोत सुनती नहीं, नहीं चलावैं प्राण ॥
मुझे त्वचा जानै नहीं, ठण्ड गरम की शीत ।
वाक्यादिक कहि ना सके, मैं हूँ इन्द्री जीत ॥
मुझको मन मानै नहीं–निश्चय करै न बुद्धि ।
चित्त चिन्तन करती नहीं, अहंकार ते शुद्धि ॥
मुझ में नेत्र न श्रेष्ठ है, त्वचा पाणि पद नाहिं ।
मन बुधि चित्त मो में नहीं, बिमल रूप मम आहि ॥
मुझ में वाक्य न प्राण कछु, ये सब मम आधीन ।
मो में देहादिक नहीं, मैं हूँ देह विहीन ॥
शब्दादिक पाँचो विषय, मो में लक्ष अभाव ।
प्रकृति रचित सब चरित जो, मो को लखनाहिं पाव ॥

चौपाई–

संत पारखी कहत सो जान्यो । अपनो रूप समुझि पद ठान्यो ।
सुखाध्यास तजि पारख पाऊँ । सदा एकरस प्रभु ठहराऊँ ॥

॥ प्रार्थना ॥

॥ सद्गुरु शरण छन्द ॥

जय परम विरागी, निज में जागी, जनहित लागी शब्द कहे ।
जय परख प्रकाशी, निर्णय राशी, सजग सदासी सत्य कहे ॥

जय साधु स्वछन्दा, तजत जु फन्दा, दरश अनन्दा शान्त लहे।
जय सतगुरु मेरे, शरण हुँ तेरे, प्रेम से टेरे प्रेम चहैं ॥ १ ॥
जय विनय सुनीजै, अब मोहि लीजै, विलंब न कीजै दर्श मिले।
जय अंतस ज्ञाता, जसकछु बाता, मोहि न आता विनय भले ॥
जय निज जीवा, जान सदीवा रक्षक सीवा भाग्य मिले।
जय गुरु सेवा, पाऊँ मेवा, अवसर हेवा दुःख टेर ॥ २ ॥
जय हित शिक्षक, जीवन रक्षक, मन मति ध्वंसक कुसंग टरे।
जय पियूष प्रबन्धा, सुन गुन संधा, होय अबंधा जीव चरे ॥
जय संशय चूरे, पारख पूरे, चंचल दूरे भागे परे।
जय भाग्य विधाता, दर्शन पाता, गुरुपद दाता नमत खरे।३।

दोहा—इमि अनन्त शुभ गुग सहित, गुरु विशाल सिर मौर।
जिनकी कृपा कटाक्ष से, मंगल हो युग और ॥

[काम क्रोध मद मर्दन करने की सरल युक्तियों का प्रकाश]

एक ही निर्णय शब्द को हजारों बार प्रियता युक्त रटे तो मन रुक जायगा। भोगाशक्ति में दुःख दर्शन के पश्चात् लाखों बार वैराग्य उत्तेजक यत्नों की प्रचन्ड ज्वाला बढ़ाइये। एक ही सत्यनिर्णय शब्द का धुन बाँधे और उस बन्धनात्मक भासमान शब्दों अर्थों, गतियों का द्रष्टा पृथक परख के पारख रूप स्थित रहे। सुख कोई पदार्थ नहीं। न सुख किसी में है कोटियों बार क्रिया और मनन के कारण सुखका आभास बन जाता है। स्त्री आदि विषय कौन नहीं जानता ? नर्क विषय, मल-मूत्र का भण्डार भोग है। किन्तु मनन करते करते अ

सरीखा यहाँ तक कामी का तो जी जानमाल हो गया है। ऐसे ही निवृति पथ में सुख भाव एकरस पुष्ट करना चाहें तो निवृत्ति प्रेरक क्रियाओं मनन वचनों को बार-बार आवृति करते सो जाना। फिर जागते ही वही प्रण चालू करें। प्रबल अग्नि व बहिया के समान इतना निर्णय शब्दों का झकाझोर संकल्पोंको उत्तेजित करे कि काम क्रोध मद कला का कोई अंग सामने ही न पड़े। चौबीस घंटे दिन-रात मदपी-विरहीवत निर्णय शब्द के पाठ अर्थ मनन लक्षाकार वृति बनाने से सर्व अशान्तिाँ नष्ट हो जाती हैं। सबसे उत्तम मनुष्य चोला पाय के काम बन जाय मेहनत चाहे जितनी हो कार्य पूरा होते ही परिश्रम की कीमत पूरी हो जायेगी।

अतः सत्य साधन निर्णय मनन में आलस्य न करे तब जीवनमुक्त स्थित हो जायगी।

॥ गुरु कृपा सद्भाव प्रत्रिका ॥

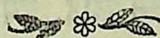
गुरु पारख मम संत सहायक। जिनकी कृपा दृष्टि पद पायक॥
सो गुरू कृपा मातु करि दाया। परखबोध खुब दुग्ध पिलाया॥
सो गुरू कृपा कीन्ह खुब वर्षा। काम-क्रोध ज्वाला बुझि शर्षा॥
सो गुरू कृपा अमृत नेत्राञ्जन। दिब्य दृष्टि अति सबल सुमजन॥
सो गुरू कृपा वृहद शुचि धारा। प्रबल तरंग विवेक प्रचारा॥
सो गुरू कृपा अविघ्न महाना। सदगुण सैन्य मध्य जयथाना॥
सो गुरू कृपा पारख धन दाता। दोष दरिद्र निकट नहिं आता॥

सो गुरू कृपा तृप्त करि पूरण । जीवन धन्य अमर पद पूरण ॥

आप निशा रात्रि के पिछली प्रहर में शान्त चित से अधिकारी प्रति जो संज्ञा दिये उसका भाव पद्य में वर्णन किया जाता है ।

शब्द गजल

शुभ संत विशाल विचारि कहैं, देखो रामको ढूँढ़त राम हरे ।
ज्यों मद्य पिये कोई मानव त्यों, हरि ढूँढ़त कौन कहाँ हैं हरे ॥टेक
नर अन्तस थान नरायन है, यहि गोमन प्रेरक गोविन्द है ।
ऐश्वर्य सहित यहि लीला करे, भगवान स्वयं सब भास करे ॥१
यह दैव स्वयं दातव्य क्रिया, करि कर्म निरन्तर भोगत हैं ।
यहि विष्णु विधी प्रतिपाल करे, यहि सर्व शिरे शिव शांत चरे ॥२
यह ईश्वर औ परमातम गुनै, यहि सर्व मनोमय सृष्टि रचै ।
मन जीत यही महावीर लखौ, गण इन्द्रि गणेश सम्हार करे ॥३
यहि सूक्षम वृत्ति जु गोपिनके, करि साथ जो कृष्ण विलास करे ।
जो अवतार विशेष कहे, विन जीव के वो जड़ काह करे ॥४
जिव ब्रह्म भनै जिव आत्म भनै, विज्ञान व जो कुछ सायंश है ।
यहि सर्व परीक्षक चेतन है, निज चेतन बोध से काज सरे ॥५
अबतो सत्संग में आ करके, तज पक्ष प्रमाद के बादल को ।
तब सूर्य स्वयं सदबोध उगे, नरसिंह स्वतः बल आप भरे ॥६
है प्रोक्ष प्रत्यक्ष को लक्षक तूँ, अपरोक्ष स्व पारख बोध लहे ।
निज रूप सम्हारि के भार दुरे, निरधार गुरू पद प्रेम धरे ॥७



❀ सरधा भक्ति सदभाव पत्रिका ❀

सरधा भक्ति विनययुत बोलो । साधु गुरू के आश्रित डोलो ॥
सरधा भक्ति से हृदय जुड़ाया । सरधा भक्तिसे सब कुछ पाया ॥
सरधा भक्ति के रस मैं माता । तनिक न हिच किच छलबलभाता
सरधा भक्ति से गुरुवर तुष्ठे । अभय मंत्र दे मग में पुष्ठे ॥
सरधा भक्ति कि नाता भारी । और नात स्वप्ना सुखदारी ॥
सरधा भक्ति के शिखर पे चढ़ जा । घट २ की सब बात समुझजा ॥
सरधा भक्ति के व्यञ्जन चखले । सदगुरु सज्जन के सत पथले ॥
सरधा भक्ति में आलस कैसा । दुख-सुख मान हानि तृण जैसा ॥
सरधा भक्ति को नासै अब छोड़ूं । तन-मन प्राण सगे चहँ तोड़ूं ॥
सरधा भक्ति की वेदी पर तूँ । बलि २ जावै तनिक न डर तूँ ॥
सरधा भक्ति का अजब सिंगारा । जेहिके आगे कुछ न पियारा ॥
सरधा भक्ति कि कोटिन कीमत । सब विद्या जा बिन दूषित मत ॥
सरधा भक्ति की चन्दा पूरी । शीतल कीर्ण ताप सब दूरी ॥
सरधा भक्ति कि सड़क निराली । नहिं कुछ कूड़ा कंकट झाली ॥
सरधा भक्ति गहे बड़ भागी । यहि तनका फल प्रभुसे मागी ॥

दो०—जगत प्राणी पाँखी भये, अथवा गोबर कीट ।
मलिन विषय रस रीझि मद, अक वक बकत घसीट ॥
जग प्रपंच आसक्ति तजै, सदगुरु के ढिग जाय ।
सरधा भक्ति क मर्म लहि, प्रेम मुक्त हो जाय ॥

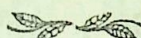
❀ शब्द मूल वस्तुतः शोधन ❀

शुभ संत विशाल जो बोध कहैं, उसे ध्यान लगा सुनना चाहिये ।
यह जग्त अनादि सदासे अहै, जड़ चेतन द्वै गुनना चाहिये ।।टेक
राम को ढूँढत, ईशको ढूँढत, सुक्खको खोजत व्याकुल है ।
वह खोजनवाला कौन अहै, जो कि सर्व को व्यापक मान कहै ।।
मैं कौन कहाँ यह शंका किसे, समाधान सुनै पुनि कौन गुनै ।
जड़ नेत्र व कान व नाक त्वचा, पुनि जीभ विषय कहु कौन गुनै ।।
मुख से बहु भाँति क शब्द कहै, वह सोचि प्रयोजन कौन कहै ।
सब दुर्गुण सदगुण धारतको, कहु हानि व लाभको सोच लहै ।।
यह वेद पुराण कुरान सबै, मत पन्थ को कौन मनाय रहै ।
सब सायंश औ विज्ञान कला, वह कौन जो यंत्र चलाय गहै ।।
अनुमान विकाशको कलपत को, जड़वादको मानि दुखी दुख में ।
जड़ द्रव्यकी आशको डाल रहा, वह पारख परिवस्वसंगत में ।।
त्रयकाल व त्रय गुण पंच विषय, केहि सन्मुख भाषत दर्शत है ।
सब भाव मनोमय होत किसे, को मम सबन क भाखत है ।।
अब तूहि स्वयं परकाश सदा, निज रूप से भिन्न नहीं निजहीं ।
फिर देखन आपको कैसे चहै, तू तो देखनवाला आपी सही ।।
अब सर्व मनोमय भास तजै, निज पर्ख स्वरूप भुलाय नहीं ।
सर्व समय निज लक्ष लखौ, सब मोक्ष हो आओ न जाव कहीं ।।

❀ निज स्वरूप सदभाव पत्रिका ❀

निज स्वरूप अपने को कहिये । तन-मन जानत जानहि रहिये ।।

निज स्वरूप भासिक सब केरो । संस्कार सब भास अध्येरो ॥
निज स्वरूप है भौतिक पारा । जड़गुण धर्मको ज्ञाता सारा ॥
निज स्वरूप निज जानहि माहीं । निराधार अपरोक्ष सदाहीं ॥
निज स्वरूप नहिं गोचर आवै । गो मन प्रेरक स्वतः रहावै ॥
निज स्वरूप बिन जन तन शूने । जीव विहीन कहहुँ को गुने ॥



अध्यायः ८

अनेक सद्‌पात्रिका सहित—

[प्रवृत्तदत और अशान्तनु की कथा]

निजस्वरूप बिन नहिं विज्ञान । नाना यंत्र कला को जान ॥
निजस्वरूप बिन सुख को मानै । दुख छूटन हितयुक्ति को ठानै ॥
निजस्वरूप बिन नर औ नारी । चारि खानि धर कौन नचारी ॥
निजस्वरूपबिनआस्तिकनास्तिक । गुरुशिष्य कोभावनिबाहिक ॥
निजस्वरूप बिन को पढ़ि लेवै । फैसन राग बहुत को सेवै ॥
निजस्वरूप बिन कहि अव तारा । ईश खुदा को थापन प्यारा ॥
निजस्वरूप साँचा बिन क्या हो । निजस्वरूप जाने बिनदाहो ॥
निजस्वरूप लहि सब दुखमिटिहैं । बहुरिन भव भय संसृत जुटिहैं ॥
निजस्वरूप पारख बल पाई । जड़हन्ता तजि मुक्त सदाई ॥
दोहा--जो जिव विकल कुशोक बश, प्रकृति अहं करि अंध ।
भाव सहित निज शोधिकै, उलटि आप निरबन्ध ॥

धन्य धन्य निजरूप पद, प्रति पल परख विचार।
प्रेम सहित गुरु की दया, निज स्वरुप निरधार॥
निजस्वरूप को बोध ह्वै, मिलैं पारखी संत।
सत्यशब्द को सैन लखि, शब्दी जीव रहन्त॥
गुरु विशाल परतापते, कितने कितने मुक्त।
नर नारी सज्जन सुहृदय, अमित धरम से युक्त॥
हानि तो इक अज्ञान को, लाभ कियो सब केर।
गुरु विशाल रवि वत विचरि, धन्य भाग्य जो हेर॥
प्राण लाभ आँखि प्रिया, मान सुक्ख निज हेतु।
निज भ्रम मेटन हार गुरू, गुरु सम कौन सचेतु॥
प्रेम दास तव दास के, सेवक बनि गुरु ऐन।
और न मोको चाहिये, गुरु पद में नित चैन॥

"सत्यधारी के पञ्चसिद्धान्त" (शब्द)

शुभ संत विशाल चेताय रहे, सत धारी के पाँच सिद्धान्त गहो।
सत्य को जानो सत्य को मानो, सत्य बखानो धर्म परम्॥
यहि परख सिद्धांत गहो शुभ, सत्य जो एक समान रहो।
यह जगत स्वतः नित देखो सदा, इसका करता धरता भि नहीं॥
उत्तपत्ति बिनाश रहित सदा, जग ज्यों का त्योंहि अनादि रहो।
जितने सत पंथ व ग्रन्थ कला, वर्तमान हैं सब मनुष्य कृतो।
शुभ जौन विचार हृदय में उठै, वहि सत्य है वेद व शास्त्र गहो॥
चवतत्त्व व तिनके कार्य जिते, सब खानि के देह जहाँ लो दिखे।
सब कारण कार्य से जीव पृथक, सब चेतन और जड़ दोय लहो॥

इह खानि में मुख्य है नारि विषय, पुनि वानि में ब्रह्मववेद अहं।
यहि मुख्यहिं बंध को त्याग परख, सुख भास विनाशि के मुक्त लहो॥
यहि पाँच सिद्धांत बताय दिये, गुरु संत कबीर को ध्येय यही।
इनको गहि के सब भूल मिटा, अब पारख ठौर स्वप्रेम रहो॥

॥ संत सद्भाव पत्रिका: चौपाई ॥

संत हमारे प्राण पियारे। संतन के हम दास सदारे॥
संत हमारे नयन अधारे। संत बोध दै करैं उजारे॥
संत क्षमा करि मन को मारैं। सब जीवन पर दया विचारैं॥
संत करै विषयन को त्यागा। संत बिना सब जीव अभागा॥
संत बड़े ज्ञाता सब जानै। जड़ चेतन दोउ भिन्न बखानैं॥
संत बड़े पुरुषारथ करही। काम क्रोध मद मोह संहारही॥
संत बड़े उपकारी सबके। जहँ जो जेहि तस भाव निबहिके॥
संतन के व्यवहार तमारी। बिश्व प्रकाश सबहिं सुखकारी॥
संत नीति सत धर्म कि पुष्टी। यथा योग्य सब देवहिं तुष्टी॥
संत सदा दुःसंग से भागैं। सदा एकान्त विवेक में पागैं॥
संतन की रहनी बहु गाये। गुरु कबीर बीजक समझाये॥
संतन के शुभ लक्षण टेरे। गुरु विशाल भवयान रचेरे॥
संत कृपा करि आपन देशू। स्वत: दृष्टि दै करत प्रवेशू॥

बार बार संतन नमो, जब तक देहन अंत।
तब तक सेवक शरन में, प्रेम दास धनि संत॥
संतन रहनी संत सग, अथवा संतन ग्रन्थ।
बन हंश चुनि, शीघ्र मिलै सत पंथ॥

बोध रहनि युत संत जे, तिन के हम नित दास।
दर्शन पर्शन चहत नित, प्रेम हृदय अभिलाष॥

प्रार्थना अष्टक छन्द—

गुरुदेव विरागी के लक्षण येमन तू गुरु ध्यान लगा लेना।
समता व क्षमा संकोच लिये, मन शोच धरे नहि द्वेष बने॥
सब शील निबाहन हार बड़े, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना।
अपराध बिसारि के शर्ण रखैं, सब मान को रक्षिके बोध भरैं॥
निर्मान बड़े निरचाह खरे, मन तू प्रभू ध्यान लगा लेना।
वह मार्ग एकान्त को ढूंढत हैं, अत्यन्त परीश्रम देह थकी॥
नित संग विवर्जित शान्त दिखैं, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना।
बशि में कोइ के नहिं आप रहैं, सब सथिन को संतुष्ट रखैं॥
निराधार निराश अभय सजगौ, मन तू प्रभू ध्यान लगा लेना।
मन वेग के चक्कर में पड़ि के, नर पाप असीम अनन्त करैं॥
तिन से बचिकै क्षमि कैसि कै, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना।
सुख भ्रांत बिनाशन को रवि हैं, जन प्रेमिन के जीव के जिव हैं॥
शुभ जो भवयान महान रचे, मन तू प्रभू ध्यान लगा लेना।
दृढ़ धीरज सोच विचार रमै, नहिं शीघ्र उतावल दम्भरुचै॥
सब बाधक संग से दूरि रहैं, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना।
ब्यवहार सदा सम शुद्ध रखैं, नहि वैर व प्रेम के मार्ग बहैं॥
अस संत स्वभाव चरित्र गहौ, मन तू प्रभू ध्यान लगा लेना।
अवतार व सिद्ध गुणी कविजे, विज्ञानिन के शिरराजत हैं॥
करि बिश्व बिजय मन जीत लिये, मन तू गुरु ध्यान लगा लेना।

(छन्द—सत भावना)

सब प्रेमि जन सद्बोध, श्री गुरुदेव से प्राप्ती करें।
जो प्राप्त बोध प्रकाश हो, उससे हृदय शांति करें॥
शांति के सम बल नहीं, वैराग्य से शान्ति मिले।
वैराग्य हो सतसंग से, सत्प्रेम गुरु श्रद्धा भले॥
धन्य सौभग्य हम तुम जो, गुरु पद को मिले।
अब लाभ क्या जग सुक्ख से, जिससे हृदय प्रतिक्षणजले॥
जलना छुटा भ्रम गढ़टुठा, निजमें जुटा स्थीर हो।
गुरु प्रसादी सब सुलभ भौ, अजर अमर कबीर हो॥
प्रारब्ध कानिज भोग सन्मुख भावना जिस काल में।
भय राग द्वेषरु कामना, करि करि विवेक हटारहे॥
खैंच करती है नहीं, सुख भावना जिस काल में।
मुक्त लक्षण हो रहे, यह देह कालहि गाल में॥
ज्यों लोह लोह से काटते, त्यों शुभ गुणों के द्वार से।
दुर्गुण हटा सब दुख कटा, निजरूप है निर्धार से॥
गुरुदेव रहनी बोध पक्ष में, दक्ष हो अविकार से।
गुरु कृपा निज रूप थिर, जन्मादि इन्द्रिक क्षार से॥

परम वैराग्य सम्पन्न महात्मा श्री विशाल देव का सत्योपदेश।

दै जड़ पीठी आपमे रहिये। तब तोहि प्रप्त होय चहिये।

अर्थ-जड़ पंच विषयों से लक्ष घुमा कर द्रष्टा चेतन स्वरुप को

विषयक लक्ष सम करें, जैसा अखण्ड अनादि निर्विकार शुद्ध चेतन स्वरूप है वैसा ही विवेक सन्मुख रख के देह, मन, प्राणी पदार्थ, किसी के मोहासक्ति बस न होवै, चेतन को चेतन विचार में ही सद्भाव रक्खे। तब हे जिज्ञासु जीव जैसा तूँ मोक्ष अचल निर्विकार सदा शांत एवं तृप्त होकर इच्छा, मन, इन्द्रिय के बेग पर विजयी बनके निबन्ध स्वतंत्र परम पद चाहता आया है, वह सब शुभ इच्छायें तेरी पूर्ण हो जायेंगी। तू इसी जीवन में कृत्य हो कर अपने को सर्व दुख से छूटा हुवा पायेगा। प्रथम यथार्थ ठीक ठीक बोध पुष्ट करना पुनः सद्‌अभ्यास करते रहना। यदि चेतन जीव, देह, मन, पंच विषय से मागन मागे कि तूँ मुझे अजर अमर स्वतंत्र ज्ञान स्वरूप चेतन कर दें तो जड़ पंच विषय पिण्ड ब्रह्माण्ड जड़ हंता जड़ सुखाध्यास में यह शक्ति ही नहीं वह आपही जड़ दृश्य कारण कार्य वाला क्षण भंगी पञ्च विषय मन इन्द्रिय स्वप्न वत सम्बन्ध द्वारे दुर भास परिवर्तनीय है। अंधकार से प्रकाश, मृग जल से तृषा नाश जैसे अघटित मिथ्या है तैसे जड़ देह पंच विषय ठाट को एकरस रख के सुख भोगने की आशा नितांत कल्पित है। इस कल्पित कल्पना को जड़मूल से परित्याग करके चेतन को अपने चेतन गुण धर्म स्वभाव विषयक लक्ष सम रखने को सब साधन ज्ञानी जन कहते हैं। अमरता अचलता नित्य तृप्तता हमें किसी देह मन वाह्य सुख भोगों से मागने की अपेक्षा नहीं है। कबसे अनादि से देह सुख

टाटों का जीव सेवन करते ही आया अब भी कर रहा है, उसकी कहाँ अचल स्थिति मिली। अब अचल अमर निर्विकार होना है तो अपने स्वरूप को ही जान कर उसी में चिंतन धारा दृढ़ कर शान्त हो रहिये। इसके साधन कठिन नहीं हैं—हाँ समझ होने तक देर है, समझ होने के पश्चात सदगुरु की उपासना, आज्ञा पालन, सन्तों का सत्संग, गुण ग्राह्य दृष्टि, साखी शब्दों का मनन रूप नित्य भोजन ये सब व्यञ्जन श्रद्धा प्रेम रूपी जल, सेवा दुग्ध पीकर सत मार्ग में बलवान होइये, जिससे काम क्रोध लोभ मोह मद और मत्सर तथा ममता का हाथ गोड़ तोड़ मरोड़ प्राण हरण कर निश्चित जीवनमुक्त दशाके उद्यान में घूमें टहलें और वैराग्य जीवन सौरभ सुगन्ध से मस्त होकर दैहिक हानि लाभ प्रपंच दुर्गन्ध से दूर हो जाये। जब सदगुरु सन्त से बन्दगी की जाती है तो आप दया भाव कहते हैं, वह दया मया छोह कृपा ही परमार्थ को माता है पिता है। "बन्दगी हमार तुम्हारी दाया। जीवन टेक न छूटै राया॥" फिर दास को क्या कमी। जब सरकार स्वामी साहेब की दया मया है ही, तब प्रयत्न से जितना गुण ले सके उतना लेते हुये सर्वांग बोध और स्थिति के लक्ष उद्देश्य को पूर्ण करते हुये चेतन को चेतन पद में शान्त हो रहना ही गुरु विशाल भूमि की प्राप्ति और नित्य प्राप्ति बतायी गयी है। आप हम सभी का कर्तव्य है कि चैतन्य को चैतन्य ही बोधोदय द्वारा पूर्ण तृप्त परम्पद प्राप्त कर सदा के लिये विश्राम जाने माने ठहरे। और इसीलिये भवयान अथवा

स्थिति साधक कोई पारखी सन्तोंके निर्णय बचन ज्ञान का नित्य अभ्यास करें और फल रूप में अपने आप ही शुद्ध पारख में स्थित रहें। यही महा लाभ की प्राप्ति। गुरु उपदेश में समझ, स्वरूप, निश्चय, गुरुभक्ति में श्रद्धा, तन मन सहित विवेक, तन मन वचन से वैराग्य मुख्य गुरु उपदेश।

साखी—लाभ महान मनुष्य को, संत संग गहि ज्ञान।
होय स्ववश मन आपना, भक्ति धर्म पहिचान॥

[कुसंग परित्याग-प्रबंध]

साखी—जो जेहि इन्द्रिन सनमुख परे, उदय खोटि अध्यास।
सो सब जानि कुसंग है, देवै निशदिन त्रस॥९८॥

टीका—जो प्राणी और पाँच विषय पदार्थ—जेहि—जिस इन्द्रियों के सामने पड़कर उनके देखने सुनने स्पर्श करने-स्वाद लेने सूँघने तथा संग करने से हृदय में दवी हुई खोटी कासनायें काम क्रोध लोभ मदादिक सचेष्ट हो आवें। बल भरे—उन्हीं सर्व को कुसंग जानना चाहिये—वे ही सर्व कुसंग जीव को रात दिन खिचाव करके त्रास—चाहना-बिक्षेप असमंजस—भयरूप कष्ट दिया करते हैं। कुसंग से त्रास कष्ट होना।

[प्रवृत्तदत्त और अंशातनु का दृष्टान्त]

प्रवृत्तदत्त और अशांतनु दो मित्र थे-असांतनु के स्वभाव ऐसे थे
पर नारी परधन से यारी, कपट कटारी भारो है।
व्यभिचारी जो मांस अहारी, बातें मीठी आरी हैं॥

चौसर सारी चुगुल अपारी, मित्र को घात करारी हैं।
सुसंग से द्वेषी कुसंग विशेषी, इन्द्रिय लोलुपख्वारी है॥

और प्रवृत्तिदत्त सतकर्मी था—

गुरु जन प्रेमी दया भाव शुचि, तृष्णा छोड़ि के शाँत रहे।
गुण ग्राही औ सम्यक दृष्टी, अन्य कुमारग नाहिं गहे॥
पर वैभव में नहिं ललचावै, इर्षा द्वेष में नाहिं बहै।
यथार्थ काज रत आलस गत वो, सत्संगत को नित्य चहै॥

ऐसा प्रवृत्तदत्त था और अशातनु के स्वभाव में बिलकुल अन्तर था। दोनों साथ में पढ़े थे, पहिले की घनिष्ट मित्रता वही कुछ अबतक चली आ रही थी। अशान्तनु अपनी काली करतूत को मित्र के आगे कभी खोलता न था, अशान्तनु का घर दूर था, जब कभी मिलै तो प्रवृतदत्त के मन में मिल कर प्रेम दिखा कर फिर घर को चला जाता अशान्तनु पास के शहर में एक वेश्या से आसक्त हो गया था, अपने घर की थोड़ी बहुत जायदाद उस ठगिनी को देकर उसी के पीछे शैतान बना था। एक दिन वेश्या बोली तुम्हारे पास जब धन बल नहीं है, तो तुम मेरे पास आया न करो। आप जानते हैं कि वेश्या किसी की होती नहीं पर अज्ञानी मनुष्य अपने धन और धर्म कर्म जवानी आदि सभी को वेश्या रूपी अग्नि में हवन कर देते हैं। अशान्तनु यह बात सुन कर बहुत दुखी हुवा। यह बोला—प्यारी आप की यारी बिना मेरी जिन्दगी ख्वारी है। अच्छा! तुम धन ही तो चाहती हो, देखो हमारा

एक मित्र है, जो कि लक्षपति है, यद्यपि वह जगत से उदासीन है, तद्यपि मैं किसी प्रकार आप के यहाँ तक लाऊँगा। पर उसको काबू करना आप के आधीन है। वेश्या बोली यदि ऐसा हो तो उसको एक वार मेरे सामने करो तो सही, उसे मैं युक्ति से रिझाऊँगी। उसी समय अशान्तनु अपने मित्र के दरबार में जा पहुँचा, प्रवृतदत्त ने मित्र को सादर बैठाया। योग्य सत्कार करने के पीछे मित्र की वार्त्ता होने लगी। अशान्तनु बोला मित्र आपकी युवावस्था जा रही है, ऐश के वहार जगत के विहार तरह तरह के नृत्य शोभा शहर बाजार आप उधर कभी टहलने नहीं आते। प्रवृतदत्त बोला–(धन योबन) संशारियों का प्रेम और संसार के सब सुख क्षण मात्र में ही छूटने वाले हैं। शरीर के रहते रहते भी ये और के तौर हुवा करते हैं जीव के साथ वायु में गन्ध जैसे–शुभाशुभ संस्कार ही जाने वाले हैं। शुभ संस्कारों का फल इच्छित सुख, अशुभ कर्मों का फल नाना दुःख भोगने पड़ते हैं, तब इष्ट मित्रादि कोई सहायक नहीं होते। इसलिये मनुष्य को चाहिये, कि वह अपने कल्याण करने का प्रयत्न करै। नित सद्ग्रन्थ पढ़, साधु महात्मावों के संग में सप्रेम वैठे कथा सुनै, काम क्रोधादि वेगों को सहन करै, इत्र तेल फुलेल स्त्री सम्भोग बाल सवांरने नाच रंग इत्यादि के परिणाम को सोचै, कि ये आदत रूप होकर हमें नाच नचाया ही करैंगे। नित्य स्वरूप में अनुराग करै, धना-दिक संचय के बदले पाये हुये धन को दानादिक सत्पुरुषों की

सेवा में लगावै, तृष्णा का छेदन करै, क्षमा रक्खै, इत्यादि-मनुष्य को कल्याण कारक है। इन्हीं में हे मित्र! हम लगे रहते हैं। अशांतनु इन बातों को सुना ही नहीं, उसके मन में तो कुछ और ही बात थी यह तो—

चतुर कपट गति जानि न जाई। पर मन हरै हरै धम भाई॥

इस तरह का अंतःकरण वाला अशान्तनु बोला--कि हाँ हे मित्र! आपकी बातैं सब ठीक हैं, अब हम भी आप की तरह होने का विचार किये हैं। क्या कहैं आप का संग तो कुछ बिशेष होता नहीं, यदि आप जैसे अच्छे सज्जन मिला करैं, तो हमारी भी बृत्तियाँ शुद्ध हो जावैं। जैसा कि आप ने कहा है, जो आप की कृपा है, तो वही मैं अवश्य करूँगा। अच्छा चलिये जंगल की तरफ घूम आवैं। प्रबृतदत्त-हाँ जंगल नदी तट एकान्त में आप के साथ मैं परमार्थ चर्चा करते चल सकता हूँ, चलिये-दोनों चल दिये। आगे चल कर अशान्तनु ने कहा हमारे एक और मित्र है आप क्या वहाँ चलैंगे। यदि आप को विशेष कष्ट न हो तो ले चलूँ। प्रबृतदत्त बोला कुछ समय कम हैं। अशान्तनु बोला-अच्छा मित्र थोड़ा हमारा ही कहा कर लीजिये वह सत्संगानुरागी ही है। प्रबृतदत्त संकोच में पड़कर अशान्तनु के पीछे पीछे चलने लगा वह धीरे धीरे जहाँ वेश्या का मकान था वहाँ लाया घेरे के अन्दर ले गया। वेश्या प्रबृतदत्त को देखते ही आकर प्रणाम की और बोली-धन्य है जो आप जैसे भक्त राज मुझे दर्शन दिये, ऐसा कह कर तुरत एक सुन्दर कुर्सी

डाल कर बैठने को कही। प्रवृतदत्त को वहाँ बहुत विपरीत मालूम हुवा। लक्षण से उन्हें जानने में आया कि मानों वेश्या का मकान है, इसलिये तुरत वे चलनें लगे। अशान्ततनु ने कहा मित्र थोड़ा सस्ता लें तो चलैं। प्रवृतदत्त सस्ताने का समय नहीं है मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम कहाँ राजस मार्ग में लाकर डाल दिये हो। मैं एक क्षण भी यहाँ रुकना नहीं चाहता !

वेश्या बोली महाराज मैं आपकी दासी हूँ—परमेश का मैं भजन करती हूँ, आप जरा बैठ जाइये, फिर तो आप को रोकने वाला कौन है ? किसी संकोच से नेत्र नम्र किये प्रवृतदत्त बैठ गये अशान्ततनु को वेश्या ने इशारे से बाहर कर दिया-दरवाजे के फाटक बन्द कर दिये गये। वह वेश्या युवाअवस्था के आरम्भ वाली सौंदर्यता से पूर्ण उत्तमोत्तम वस्त्रों और सुगन्धित पदार्थों युक्त प्रवृतदत्त की तरफ सामने खड़ी होकर हाव भाव करने लगी, प्रवृतदत्त जब उधर देखा ही नहीं तो विष कैसे विधै ? तब वह वेश्या बोली कि हे सत्संगी पुरुष ! आपके दर्शन को मैं सौभाग्य समझती हूँ, मुझे भी आप सज्जनों में कुछ प्रेम रहता है, कृपया कुछ ज्ञान चर्चा मुझे भी बताइये। मुझे उन वेश्यावों में न समझिये, जो कुत्ती और गधी के समान पर पुरुष रता होती हैं। मैं तो अभी तक कुमार अवस्था में हूँ फिर जैसा हो कृपया मुझे ज्ञान दीजिये। इतने पर भी जब वे आकर्षण नहीं हुये, तो वह बोली अच्छा तबतक एक दो भगवद्भजन कहती हूँ समय व्यर्थ क्यों जावै। ऐसा कहकर पहिले भक्ति

सम्बन्धी फिर रसिक काम सम्बन्धी अनेक किसिम के मधुर ध्वनि से गाना गाती रही, फिर प्रबृतदत्त को जब खींच न सकी तब वह खड़ी खड़ी एकदम धड़ाक से गिर पड़ी श्वास ऊर्ध रूप जोरों से चलाते हुए हाय करके मानो मुर्छा सी हो गई, प्रबृतदत्त उसे गिरते हुए फिर मुर्छा में पड़े देखकर विचार किया यह तो दुख में हो गई है, शत्रु का भी दुःख हो सके तो निवरण करना चाहिए। इसका दुख निवारर्ण करने से इसका लाभ हो जायगा। हमारी कुछ हानि भी न होगी और कोई है नहीं ऐसा सोच कर उसे उठाने गये कि उठा कर बैठा दूँ। बारबार प्रबृतदत्त बल करके उसे उठा रहे हैं, बार बार वह झटाके देकर गिर रही है। कई बार इसी तरह प्रबृतदत्त वेश्या को पकड़ पकड़ बैठाने की कोशिश में लगे हैं, पर साथ ही उसके कई बार स्पर्श और मोहक रूप तथा मदसनी बानी सब स्मरण होकर दया के रूप में मोह हो रहा है। मोह वश वे अब पंखा हांक रहे हैं वह धीरे धीरे ज्यों त्यों नेत्रों को खोलने और अपने अंगों को सचेष्ट करने लगी। त्यों त्यों उनका मोह अज्ञान रूप में विकारी हो रहा है। थोड़ी देर में वह वेश्या स्वयं सावधानी से बैठकर बोली हे प्राण रक्षक! आप इस समय मुझे कोई धर्म की चर्चा सुनाइए। अब मेरी तबियत ठीक है, कभी कभी मुझे ऐसा अचानक हो जाया करता है। प्रबृतदत्त धैर्य देते हुए जगत को नश्वर बताते हुए एक दो धार्मिक कथायें सुना दिये। फिर ठगिनी बोली आपने मुझे बचा लिया है, आप को

बारम्बार धन्यवाद है। यह शरीर भी आपको अर्पण है। इसे आप चाहे जैसे सेवा में लें, दासी तैयार है। आप पर निछावर और बलिहार है। ऐसे वह कहती जाती और सर्व मोहक अंगो को निर्भेद चलाती जाती। प्रवृतदत्त उसके निर्भेद वाक्य और अपने में खिचा हुआ अत्यन्त प्रेम जानकर साथ ही धर्माधिकारणी मान कर उसके प्रेम में स्वयं खिच रहा है। भीतर ही भीतर उसके सौंदयपता की प्रियता धंस रही है। कभी-कभी उसके भीतर यह विचार भी होता रहा कि मानो अयोग्य क्रिया की तरफ जा रहा हूँ, यह बात ठीक नहीं है। फिर उसका मन कहता अच्छा थोड़ी और बार्तालाप कर लेने में हर्ज ही क्या है। मुझसे अयोग्य कार्य कैसे हो सकता है, बस ऐसा मन के बहकाने से प्रवृतदत्त को वार्तालाप करते करते सूर्य अस्त होकर अँधेरा होने लगा और सुन्दर विहार शाला में अनेकों रंग की बत्तियाँ जलाई गईं, भाँति भाँति के सुगन्ध छिड़के गये। वेश्या कामुक मसाला युक्त दासियों के हाथ से ताम्बूल खाती भई और प्रवृतदत्त को खिलाई। वेश्या के इशारे से धीरे धीरे दास दासी सब अलग हो गये फिर दोई जन रह गये। अब तो बुद्धि भ्रष्टता से प्रवृतदत्त के रोम रोम में मनसिज व्याप्त हो गया अब उसके नेत्र और मुख की आकृति दूसरे भाव में हो गई। वह बोला-हे प्राण प्यारी! तेरे रूप सरल शील और मधुर वचन से मैं मोह को प्राप्त हुवा तेरी इच्छा वाला हो रहा हूँ अब मेरे मनसिज को शांत कर। ठगनी दम्भ

करके बोली—और सब सेवा करने को मैं त्यार हूँ पर जैसा आप कह रहे हैं। वैसा नहीं हो सकता। ऐसा सुनते ही प्रबृतदत्त और मोह को प्राप्त हुवा।

"ज्यों ज्यों योषित कथै उदासी।त्यों त्यों प्रबृत करै रुचि तासी ॥"

अंत में प्रबृतदत्त बोला, अहो! मेरे धर्म और लज्जा को तूने हरे ली मैं क्या करूँ बिबश हूँ कुछ भी हो मैं तुझे चाहता हूँ, अंत में ठगिनी जान गई कि यह हमारे पीछे बिल्कुल बावला सा हो गया है। तब वह बोली अरे तू क्या जानता नहीं है कि! मेरा व्यवसाय ही यही है, मैं वेश्या हूँ। मेरे पास अमुक बस्तु की कमी है। तू इसी समय कुछ द्रब्य लावै तो तेरी मनसा पूर्ण होगी। इतना सुनते ही प्रबृतदत्त उसकी तरफ और बिशेष खिंच गया, उसकी प्रसन्नता हेतु अँधेरी रात को घर की राह लिया, रात में स्त्री के पास पहुँचा और बोला हे धर्मांगिनी मुझे द्रब्य चाहिये। स्त्री उसकी पतिब्रता थी वह बोली खजाने कीं कुंज्जी आप के पिता के पास है, फिर भी मैं अपने पास का कुछ द्रब्य देती हूँ। प्रबृतदत्त ने कहा इतने से क्या होगा, उपने गले का सुवर्ण हार दे दे। वह दे दी पर उसे शंका हो गई कि सहस्त्र रूपयों का हार इस समय क्या करेंगे, पर कुछ पूँछ न सकी। वह कामांध हुवा वेश्या के पास आकर सुवर्ण हार गले में पहना दिया और कुछ रूपिया आगे धर के बोला हे मन मोहनी अप्सरे! तू प्रसन्न है या नहीं! वेश्या अवश्य। मोदप्रमोद हास्य बिलास करके उसके शरीर शक्ति और शुद्ध

चित्त को नाश कर डाली। एक दो दिन वहाँ रहने के पीछे वेश्या ने कहा आप बीच बीच में घर जाया करिये, जो कुछ कंचन रत्न सुन्दर बस्त्रादि मिलैं वह लाया करिये। मुझ अप्सरा में तो तीनों लोक निछावर है, आशिकी में कोई नेम नहीं होता। मेरी देह गेह धन वस्त्र और टहलुये सब आप ही के हैं, मैं आप को घर से हजार गुना सुख दूंगी। प्रबूतदत्त बीच बीच दिनों में घर जाता जो कुछ सम्पति वस्त्र आभूषण अच्छे पात्र फल मूल मिष्टान पाता सब ला ला कर उस महा-काली को चढ़ता। यह वार्ता धीरे धीरे गाँव में फैल गई ज्यों ज्यों सब लोग समझाने लगे, त्यों त्यों और उसे घी से अग्नि बढ़ै इस तरह सबसे नफरत मान वह वेश्या के यहाँ ही रहने लगा-प्रबूतदत्त की दशा नीचे लिखे अनुसार हो गई—

छन्द—अब तो रसीली औ रंगीली नैन में दिखने लगीं।
अपने अपने स्वाद को सब इन्द्रियाँ खिचने लगीं॥
चिन्ता अनेकों शोक मोह मदादि आशा पास है।
तप तेज विद्या बुद्धि बल धन वीर्य सत्यनश है॥
अब तो कदम नीचे बढ़ा अब नीच ही को जायँगे।
दिन दिन फँसैंगे जाल हैं अप कर्म कर कर खायँगे॥
सतसंग सन्तों के यहाँ जाना व आना टुट गया।
ज्ञान औ वैराग्य सत्याचर्ण से चित टुट गया॥
अबतो दरद औ शील समिता शांतता जाता रहा।
काम क्रोध मदादि पीके मस्त हो गाता रहा॥

धर्म का भण्डार मानुष देह को खो के चला।
पाप दुख भण्डार घर में खुशी से मूरख हला॥
ऐसा समय आपूर्व पा के मूर्ख मन सोचै नहीं।
धर्म में संकुचित है करि पाप संकोचै नहीं॥

इस प्रकार प्रवृतदत्त के परमार्थ ध्येय से चलित हो जाने में असान्तनु के सहारे वह वेश्या कारण हो गई। प्रवृतदत्त को पूर्ण बिस्वश करके अब अशान्तनु का वेश्या अधिक तिरस्कार करने लगी अशान्तनु ने कहा, मुझे ढकेल मत, मेरा सर्वस्व हरण करली अब मैं कहा जाऊँ। तू एक न एक टहलुवा रखती ही है, मैं तेरे टहलुये के रूप में रहूँगा, तेरे पैरों की जूतियाँ पीक-दान मलिन ठौर सब साफ करुँगा। मैं तेरे बार-बार कदम चूमता हूँ, मुझे रहने दो, नहींतो मेरे प्राण बिदा हो जायँगे वह टहलुवा रूप में रहने लगा, पर प्रवृतदत्त से ठगिनी का विशेष प्रेम देख-कर वह जलने लगा। एक दिन प्रवृतदत्त की अनुपस्थिति में काम से अन्धा बन अशान्तनु ने कहा—हृदय की पीड़ा देकर फिर शांत करने वाली मोहनी! तू मेरे मनोमय को पूर्ण कर। वह बोली—चल चल पाजी तुझे ऐसा कहते जरा शरम नहीं लगती। अशान्तनु ने कहा, हाय हाय मैं तेरे पीछे सर्बस्व स्वहा कर दिया और प्रवृतदत्त जैसे अपने परम धर्मवान मित्र को तेरे फन्दे में डाला तथा अपने लोक परलोक को तेरे पीछे कुछ न सम्हाला, फिर भी तू मन को पीड़ा देती है, अच्छा उसका फल चख। बस ऐसा कहकर वह तुरन्त ही म्यान से खंजर

निकालकर निर्लज्जा के शिर पर धड़ाक से चला दिया, उसका शिर धड़ से अलग हो गया। इतने में प्रवृतदत्त आ पहुँचा, हृदहारिणी की सदा के लिये जुदाई देखकर मुर्छित होकर गिर पड़ा। दो क्षण के बाद होश सम्भालते हुये बोला-अरे मित्र! तुमने यह क्या किया! अशान्तनु ने कहा हे मित्र! आप की जान बचाई है, यह धुर्तिन आप के बारे में मुझसे कहा करती थी कि प्रवृतदत्त के यहाँ से सब धनादि पदार्थ मेरे यहाँ आगये हैं, अब उससे कुछ मिलने वाला नहीं, फिर भी वह मेरा पीछा छोड़ने वाला नहीं देख पड़ता। इसलिये प्रवृतदत्त को किसी प्रकार मार डालो ऐसा बार बार कहने पर मेरे क्रोध के मारे प्राण विकल हो गये, मैंने सोचा मेरे प्राण प्रिय प्रवृतदत्तका धन शक्ति हरण करके यह मारने को कह रही है। इसी प्रकार एक दिन मुझे भी मरवा डालेगी, ऐसा सोचकर इस ठगिनी को मैंने मार डाला है। प्रवृतदत्त बोला-हाय! कुछ भी हो इसका वियोग मुझे सहन नहीं होता। इतने में वेश्या की हत्या शहर में विदित होने के कारण पुलिस सरकार की तरफ से सब पकड़े गये, सरकार की ओर से ही मुकदमा चालू किया गया। प्रवृतदत्त से सब हाल पूछा गया, प्रवृतदत्त ने कहा प्रियवादिनी के जाने का हाल ही सुनकर अपार कष्ट हो रहा है, तब उसे मैं मार ही कैसे सकता था, बाकी हाल ठीक ठीक अशान्तनु ही कहेगा, क्यों कि अशान्तनु पर उनका बड़ा विश्वास था अपनी हानि न करेगा, इसलिये अशान्तनु के ऊपर बात रख दी। अशान्तनु

ने कहा सरकार मैं तो उसका गुलाम था, ये प्रवृतदत्त सर्व उसके अंग संग रहता था। दोनों में चार दिन से खटापट हो रही थी, फिर कुछ कारण से प्रवृतदत्त अपनी तलवारसे उसका शिर काट लिया। फिर अपना जान बचाने के लिये ही यह बातें बना रहा है। मैं सत्य सत्य कहता हूँ प्रवृतदत्त ही ने मारा है। प्रवृतदत्त से फिर पूँछा गया, प्रवृतदत्त अपने मित्र के विश्वासघात से दंग रह गया, फिर बोला मैं नहीं था तब ये मारी गई, मैं नहीं जान सकता। गवाही साबूती होते होते प्रवृतदत्त ने प्राणघात किया है। यही बात न्यायालय में तय हुई, प्रवृतदत्त की फाँसी होने का हुकम हुवा। और आदि से अन्त तक यह बात प्रवृतदत्त की सुधर्मा नामक स्त्री ने किसीसे सुन ली। वह तुरन्त पुरुष का भेष बनाकर एक सच्चे अनुभवी पुरुष को साथ लेकर बड़े न्यायालय में मुकदमें को अपील कर तारीख दिन उपस्थित हुई। अशान्ततु के गवाह जब साबूत दे चुके, तब वह प्रवृतदत्तकी तरफसे बोली- महाराज यह अशान्ततु कहता ही है कि मैं वेश्या का गुलाम था पर यह कब से, जबसे इसका जमीन धनादि उसकी आसिकी में हरण हो गये तब से। यह निठल्ला बना हुवा उसकी जूती झाड़ता रहा पहिले के समान उससे यह सोहबत चाहता था। पर वेशरम छलकारणी वेश्या किसकी होती है। वह हमारे स्वामी की तरफ से धन पाने लगी इसलिये उसकी तरफ हो गई। प्रवृतदत्त का वेश्या से यहाँ तक आसक्ति बढ़ गई कि अपना सर्बस्व सुख साज छोड़ कर उसीके यहाँ रहने लगा। आप लोग

सोच सकते हैं कि अभी तक तो प्रवृतदत्त धनादि पदार्थ देता ही रहा है। फिर इसमें उसमें झगड़े का कोई कारण नहीं है। क्यों कि वेश्या आयु जाति रूप रोगादि का कुछ विचार नहीं करती, केवल उसको धन चाहिये,उसका तो यही पेशा है। फिर प्रवृतदत्त उसको कैसे मार सकता था। हाँ वह वेश्या—इस अशान्तनु का बहुत निरादर करती थी, इसलिये इसी ने उसे मार डाला है। क्या आप सरकार ने सुना नहीं है।

दो०—कामी लोभी जुआरिया, नशेवाज औ चोर।
हिंसक आरत कुजन जन, जो न करैं सो थोर॥

इत्यादि निर्भेक निःसन्देह सरसरीयुक्त सुधर्मा की बातें सुन कर सब दंग रह गये।पुनःसही साबूत शोधन करने पर अशान्तनु की काली कर्तूति सही हो गई। बस अब तो निशाना उलट गया, प्रवृतदत्त के बदले अशान्तनु की फाँसी होने का हुक्म हुवा। अशान्तनु फजीहत सहित फाँसी पर लटका दिया गया, यही कुकर्म का फल मिला। मित्र अशान्तनु के विश्वासघात की चोट प्रवृतदत्त के मर्म स्थान में खटक गई जिससे उसको यह बात निश्चय हुई, कि जगत में कोई किसी का नहीं है। घर आकर प्रवृतदत्त की स्त्री सत्कार करके बोली-स्वामिन आप तो बड़े बिचार शील थे। बड़ा आश्चर्य है, कि आप कैसे मोह गये। प्रवृतदत्त ने कहा यह सब कामी के संग में प्रेम करने का फल है कि मेरी शक्ति धन, यश तथा सुबुद्धि धीरता बिवेक ब्रह्मचर्य सब नष्ट होकर लोक परलोक दोनों का नाश हो गया। सच है

'कैसेहु चतुर होय किन कोऊ। नीच संग करि बिगत सोऊ'

चौपाई

निज शिर निजकर कर्द चलायों। अहो! भूल से बड़ दुखपायों॥
धर्म प्रिये रक्षक तूँ भयऊ। धर्म पंथ तजि मैं भ्रमि गयऊ॥
संकट सकल कसौटी हेतू। संकट साथ देत वहि सेतू॥
धर्मागिनि दृढ़ मारग तब लौं। कुसंग होत नहि जनको जबलौं॥
कुसंग परे मति बुद्धि हेरावै। यथा मोरि गति सबहिं सुझावै॥
कहाँ यती पन धीरज तोषा। तेहि के ठौर भोग औ रोषा॥
कहँ गुरु भक्ती सरल स्वभाऊ। कहँ ठगिनी रति कुटिल कुभाऊ॥
कहँ कल्याण हेतु पुरुषारथ। कहँ सब नर्क हेतु दे आरथ॥
तजि कै सुधा गरल मैं लीन्ह्यों। कामी मित्र को फल अब चीन्ह्यों॥
अब से कबहुँ कुसंग न करिबै। चपल ठगिनिके फंद न परिबै॥

किसी ने सच कहा है॥

कवित्त—पुण्यन की आरी है, कि पापन की क्यारी है,
कि कीरति कुहारी कि धौं धन की कटारी है।
शांति को बुहारी है, सुकांति की कुठारी है,
कृतांत द्वति भारी है कि कुल की अँगारी है॥
चिन्ता महतारी है कि छल में मदारी है,
कि रोग की पिटारी है कि कलह की दुवारी है।
गुण रूप धारी किधौं ज्ञान बटमारी,
ऐसी नारी ब्यभिचारी याते राखैं गिरधारी॥

अर्थ—दया धर्म परोपकार पुण्य मार्ग को चीर डालने के

लिये आरी के समान, हिंसा, चोरी, अन्याय छल आदि पाप की क्यारी के समान, श्रेष्ठ कीर्ति कमल को नाश करनेके लिये पाला या कुहिरा के समान स्वार्थिक परमार्थिक धन रूप दोनों वृक्ष को काट देने के लिये कुल्हाड़ी के समान जानना चाहिये। निर्चह, नैराश्य शांति सुख को तो बहार डालने वाली झाड़ू के समान शारीरिक मानसिक तेज बल सौंदर्य का नाश कर देने में कुठार के समान, प्राण हरने में महा भयंकर काल दूती मृत्यु के समान. और शुभ गुणरूप कुटुम्ब का नाश करने में धधकते हुये अँगार के समान जानना चाहिये। चिन्ता को बढ़ाने में माता के समान झूठे प्रेम को सच्चा दिखाकर मोह लेने में छलकारणी मदारी के समान और शरीर में प्रमेह, गर्मी,सुजाक, कमजोरी, आदि रोगों की पिटारी के समान लड़ाई झगड़ा दुख द्वन्द में फाटक के समान देखना चाहिये। कहाँ तक कहा जाय सर्वस्व सद्‌गुण को गिरा कर डुबा देने वाली कुवाँ के घेरे समान, और ज्ञान धन को लूट लेने में बरबार डाकू के समान ऐसी व्यभिचारिणी नारी से या मैथुन काल से बचने बचाने वाले समर्थ इष्ट देव कोई वैराग्यवान सन्त ही हैं।

चौपाई

अस कहि निज कारज संग लाग्यो। सँभरयो फेरि स्वधर्महिं पाग्यो

निज पर आगि जलावत इक सम। त्यों सब नारि करत बंधन तम

इति क्रीड़ा करि सब सब मोहै। युवा वृद्धि मरि गहि फिरि जोहै

अंग स्वभाव संग भ्रम हेतू। प्रवृतदत्त अस सोचि सचेतू॥
त्याग दियो निज नारिंह संगा। अचल सुमेरु रँग्यो गुरु रँगा॥

सिद्धान्त—प्रवृतदत्त जीव हैं अशान्ततनु मन कलेश बाहरी कामी और कामिनियों का संग तथा सर्व बन्धन प्रद-पदार्थ अशान्ततनु है। यह जीव नित्य एकरस तृप्त होते हुए भी मन द्वारा सबसे प्रेम कर लिया है। जीव स्वरूप से नित्य तृप्त है। इच्छा रहित है मन का स्वभाव इच्छा और भोग है। मन बहिं-पदार्थ प्राणी सम्बन्ध रूप घेरे में डाल कर धीरे धीरे वेश्यारूप विषय और प्राणियों की आशक्ति में डाल देता है। जगत के मोह वश जीव का ज्ञान बिचार स्थिरता सर्व नष्ट हो जाती है लोग पदार्थ नाश होते रहते हैं, उसका माना हुआ मन कभी संतुष्ट नहीं होता। मन जीव को युवा जन्म मृत्यु की फाँसी देता रहता है। कुछ शुद्ध संस्कार और कष्ट पाने पर मन से जीव उलट गया। सुबुद्धिरूपी स्त्री सदगुरू से भेंट करा दी, गुरुदेव हानि लाभ जगत की ठीक परिक्षा कराये, तब जीव गुरु शरणागत होकर सदा के लिये शुद्ध रहस्य धारण कर स्वरूप स्थिति युक्त मुक्त दाशा में ठहर रहा॥ सारांश—प्रवृतदत्त कुछ शुद्ध होते हुये भी कुमनुष्य कुठौर कुसंग के कारण बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः सबसे सावधान



अध्याय-९

अनेकों संत के उपदेश संग्रह पारख स्थितिवान सन्तों की वरिष्टगौरव गरिमा-परिचय।

कितनी गहराई से दुर्गुण दुराध्यास के सतह-पर्ण में छिपा हुआ था, मानो गहन अंधकारन में निकट अपना शरीर हीन दीखे। विवेक में वली पराक्रमी सन्त लोग जो सत्य शब्द का प्रकाश पुंज फैलाये उसके द्वारा दुर्गुग दुराध्यास के सतहों को तोड़ कर ऊपर निर्बन्ध मन्दिर में विश्राम पा गया, इन शब्दों का नित्य नेम से एकान्त और साथियों सम्बन्धियों को अर्थ करके समझाते समझते ऐसा एक अद्भुत अविभंग स्थिति प्राप्त हुई जिसके द्वारा लोक परलोक स्वार्थ परमार्थ सर्व शुभ समाज एकत्र होने का महान सौभाग्य प्राप्त हुआ, ।। और मैं सदा के लिये दुःख विगत हुआ !!

(निज शुभमति हर्षोल्लास पदावली)

मोहि मति छेड़ो यार, मेरी शुभ मतिया जागी।
चाहे करो प्यार चहे तृष्कार, मेरी दुरमतिया भागी ।।
स्वयं बोध का पी लिया प्याला। हो गया मस्त चलूँ शुभ चाल।
है निज प्रेम का ढंग निराला, थोथे प्रेम कि मेड़ुकी टाला ।।
मैं तो हल्का हुआ निरधार, मेरी शुभ मतिया जागी।
दुनियाँ कदम कदम पर आई, ऋद्धि सिद्धि अरु मान वड़ाई ।।
ये सब किस गणना में भाई। एक अक्षय धन ऐसो पाई।

जिसके आगे सब सुख क्षार, मेरी शुभ मतिया जागी ॥
कोई कहे तुमसे प्रेम करुँगा, कोइ कहे तुमसे आज लड़ूँगा ।
मैं दोनों बातें सहन करुँगा । गुरुपद में ही नित्य रहुँगा ॥
घाट लगी नैया भौ किनार, मेरी शुभ मतिया जागी ।
है प्रारब्ध भोग इक रास्ता, चलत पार क्या जग से वास्ता ॥
मन को खेंचि गुरुपद प्रेमी, चेतन अचल अभय शुभ नेमी ।
प्रेम सहित गुरुपद बलिहार, मेरी शुभ मतिया जागी ॥

गुरु कबीर देव की शिक्षा

हंसा तूँ सुवरण वरण, क्या वरणौं मैं तोहिं ।
तरिवर पाय पहेलिहौ, तबै सराहौं तोहिं ॥
जो यह जीव है नहीं, भास हुआ करु सोय ।
दुइ अन्धेर के नाँच में, काको मोहित कोय ॥
काम विगारै भक्ति को, ज्ञान विगारै क्रोध ।
लोभ विगारै वैराग्य को, मोह विगारै बोध ॥

राम रहस साहेब का विचार

आदि अंत कै पारख पावै । सोई यम पर अदल चलावै ॥
आप बचै और जीव बचावै । जो समुझै तेहि बन्दि छोड़ावै ॥
यम पछिताय हारि मुखगोई । पारख पाय परम पद सोई ॥
परख विलाश मगन मन अपने । संशय भरम कलेश न सपने ॥
परखत सुरति समेटिकै, भये अशंक शरणाय ।
शिर कूटत यम आपना, नेकौ नाहिं बसाय ॥

—पं० टकसार

मान्यवर श्री चेतन साहेब का उपदेश

जड़ चेतन अनादिभेद (गजल)

कर के सन्तों का दरबार, कर लो जड़ चेतन निरुवार।
मौका मिलै न बारम्बार, ऐसोनर तन मोक्ष दुवार ॥टेक
निर्णय शास्त्र कहे सब गाय नहिं तन ऐसा और देखाय।
करलो जैसा तुम्ह सुहाय, नहिं कोइ तेरो रोकन हार १
नहिं यहाँ पक्षा पक्ष को काम, है यह न्याय स्वमत को धाम।
रस्ता खुला ये आठो याम, देखो पारख नर टकसार २
यहँ रुसवत लगे न राई, करिये दिल की खूब सफाई।
श्रद्धा प्रेम जिन्हें जस भाई, हानि रुलाभ तिसी अनुसार ३
दृष्टा जीव दृश्य से न्यारे, एकरस नित्य सुजाती सारे।
लघु दीरघ तन सबहीं धारे, कारण भूल सुखासा भार ४
कर्म से देह देह से कर्मा, समझौ पूरण यह तुम मर्मा।
लख लो चेतन श्रिष्टि को धर्मा, चलता यह जग को रफ्तार ५
पहिले बीज है की वृक्षा, पारखो पूरण देकर लक्षा।
तैसहिं कर्म देह को पक्षा, भटके जाने विन संसार ६
कारण करज तत्व प्रवाह, हैं सब क्रिया शील औगाह।
घट दिपु नेमित दिखै सदाई, नहिं कोई प्रेरक तिनको यार ७
करता जग को नहिं ठहराय, जड़ अरु चेतन दिखै सदाय।
इन से पृथक और क्या भाय, धोखा सकल करो संहार ८
इन्द्रिय केरि विषय मन मारो, दुस्मन काम विकार संहारो।

बस प्रारब्ध भोग निरवारो, हो तुम निर्मल संसृत पार ९
सदगुरु देव कबीर दयाल, कीन्हे परख प्रकाश निहाल।
धन्य सुबोधक गुरू विशाल, दीन्हो चेतन को अधार १०

कीर्तन रूप गजल ॥

गुरुदेव तुम्हरे चरणों की रज लेकर, शीश चढ़ाऊँगा।
हाथ जोड़ जर विनय नम्र युत, निज घर ले पधराऊँगा ॥टेक
उत्तम करके साफ सदन सब, आसन स्वक्ष लगाऊँगा।
प्रेम सहित अति हर्षित होके, प्रभू को लै बैठाऊँगा ॥
मज्जन करि सब धोय पात्र जो जल के कलश भराऊँगा ॥२॥
रुचि से चरण पखार गुरू के, चरणामृत शुचि पाऊँगा।
भाव सहित परशाद बसन बित, फूलन हार चढ़ाऊँगा ॥४॥
आरति सजिकै गुरुसनमुख लै, सब मिलि धाय उतारूँगा।
जड़ चेतन की ग्रन्थि कठिन जो, गुरुवर से छुड़वाऊँगा ॥
जनम २ के पाप बिषय मय, हिये के दाग धुलाऊँगा ॥५॥
निज मनसाय कुसंग हटा कर, गुरुपद भक्ति बसाऊँगा।
बोधक देव विशाल शरण में, चेतन धरम कमाऊँगा ॥

दो०-नहिं दूसर आधार जगत में, दीखत दीना नाथ।
यहि ते सब अपराध क्षमि, कीजै पार सनाथ ॥

आसक्ति अध्यास के तद्गत खिचाव रूपी मोहनी बाण के लगे हुये तीरों को अपनी प्रबल पारख दशा रूपी चुम्बक शक्ति द्वारा उन तीरों को गुरु सरकार ही निकाले हैं। आगे तीर न चुभने पावे, इस हेतु सदगुण शतक में उन्नीस रहनी बताये हैं।

अन्य सर्व पारखी सन्तों के बचनों में दया क्षमा विवेक वैराग्यादि साधनाओं को ग्रहण कराने में भली विधि साहसी बना के धारण कराये कुछ बचे हुये को अभ्यास में लाने का दृढ़ प्रयत्न बताये धारणा में टिकाये। आप सद्गुरु देव स्पष्ट कथन किये हैं कि।

साधु मिले तो गुरु मिले, गुरू मिले तो साधु।
दोनों का फल एक ही, जहाँ होय भ्रम बाधु॥
कबीर संत सबही मिले, जेहि पारख पद भेंट।
तेहि सेवत जितनै रहे, तितनै दुख को मेंट॥

इस प्रमाण से गुरु संत का सेवा दर्शन स्पर्शन का फल सिद्धांत में टिक जाना, स्वरूप स्थिति में शान्त होना, तो दर्शन के बाद सेवन के साथ स्पर्शन जब तीनों समान पुष्ट हो जाते हैं। तब अन्त में स्पर्शन ही रह जाता है। स्पर्शन छूने को कहते है। यहाँ का भाव देह रहे तक तन मन धन सर्बस्व बलिदान करके अपना कुछ न समझ जीते जी गुरु प्रसन्नता का कार्य करते हुये पारख रूपगुरुपद में तद्गत तत्सम निराधार रह जाना। देह दूर रहे या निकट हो स्वरूप भाव हो। सदभाव सेवा रखना। इस स्पर्शन का महान फल प्रसाद यह मिला की वही हो गया, जिसे मिलने गया, समान पद अनादि भूमिका में शांत समान रूप हो गया शम शम।

'गई पूतरी लोन की, थाह सिंधु को लैन।
उलटि ताहि में मिल गई, पलटि कहै को बैन॥

सोइ जानै जेहि देहु जनाई । जानत तुमहिं तुमहि है जाई ।
अंकार छोड़, गुरु पारख शान्त मेरा कहना मान जाओ।
अहं मम का त्याग ही गुरुपद प्रेमी, अन्य नहीं ॥

उपदेश—मन से सावधानी पर विशेष सर्व संत भक्त अपने अपने कल्याण के पुरुषार्थ में संलग्न रहें । यही एक साथ जायगा और तो सब यहीं रहने वाले हैं । मन तो अपने भोग सुख में ही निश्चय कराकर उसी भोग सुख में प्रवृत्त करायगा, भोग प्राप्ति के पुरुषार्थ में जुटायगा, वैराग्यवान रक्षक गुरु सन्तों से कल्याण मार्ग से हटाने की चेष्टा करायगा। इस हेतु मनोमय से सावधान होकर अपने कल्याण के कार्य भक्ति ज्ञान वैराग्य का पुरुषार्थ करना पाठ पठन दर्शन स्पर्शन सत्संग करते रहना चाहिये ॥

नेपाली भाषा—दृष्टान्त

सद्गुरु कबीर साहेब को शिक्षामा प्रेम गर्ने यौटा अत्यन्त श्रद्धालु शिष्य थियेर, उनि जैले पनि गुरु देखि बिछोड़ भयो किरूने कराउने दिकहुने मात्र गर्द थे, आफ्नु स्वरूप सम्झेर शान्त हुने, धैर्य धारण गर्न गम्भीर बन्ने काम उन ले जाने का थियेनन एक बार गुरु विचरन गर्न जान लागे को वेलाम शिष्य अधीर भयेर रून लाग्दा गुरु ले दिनु, भये को शिक्षा को मन्त्र तल लेखिये को छ तोस्को अर्थ बीजक बाट खुब राम्रो संग हेर्नु अथवा सुन्नु धारण गर्नु सो शिक्षा लाई ग्रहण गरी श्रद्धा सहित

धारण गम्भीर धैर्य शाँति सन्तोष सहन शील बनेर बस्तु बस जीवनमुक्त पद प्राप्त हो।

बाँह मरोरे जात हो, मोहि सोवत लियो जगाय।
कहहि कबीर पुकारि के, ई पिण्डे होहु कि जाय॥

[सद्‌गुरु करुणामयका सत्योपदेश]

जियन मरन फल दसरथ पावा। भुवन अनेक सुयस यश छावा॥

साखी—मरते मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय।
ऐसा ह्वै के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय॥

सकल कबीरा बोलै बीरा, अजहूँ हो हुशियारा।
कहहि कबीर गुरु सिकलीदर्पण, हरदम करहि पुकारा॥
'सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ॥'

भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी—इस प्रकार अविभंग पारख सिद्धान्तानुसार सद्‌गुरु श्री कबीर देव तथा सर्व परख निष्ठ प्रवर सन्त गुरु की शिक्षा है कि जिनकी समस्त आयू में स्वरूप-स्थिति की पुष्टि रही है, परमार्थ निर्णय चर्चा में ही व्यतीत हो गई, जिनकी श्रद्धा भक्ति संत गुरु पारखी निर्णयवान बिरक्त पुरुषों में अटूट अनवरत अखण्ड एकरस तैल धारावत रही, कभी किसी समय में भी कथा निर्णय सत्संग में अरुचि देखी नहीं गई। संतत जागरूक रहकर ही सेवा भक्ति विवेक धारण कथा सत्संग सुनते देखा गया, जिनकी समस्क धारणा में अनुमान कल्पना जड़ाध्यास कभी देखने में नहीं आया। शुद्ध व्य-वहार अप्राप्त से अनिच्छ प्राप्त में भी विशेष प्रवृत्ति परित्यागते

हुये सर्व प्रवृत्ति में उपराम जो कुछ अपने निर्वाह से बचे वह परमारथ सन्त सेवा में ही लगाने की जहाँ बहती रही। जिनके द्वारा अनेक प्राणी को हित हुआ परमार्थ कल्याण मार्ग में लगे, शिक्षा उपदेश से परमार्थ प्राप्त किये दुर्गुण बन्धन आसक्तियों की निवृत्ति भई। जो स्वास्वरूप बोध प्राप्त कर उसकी स्थिति में सतत समय अवकाश निकाल कर शान्त होते रहते। पुनः पुनः जिसे एकान्त द्रष्टा समाधि का अभ्यास करने में शिथिलता नहीं आई। जो यौवन से अति जर जर अवस्था प्राप्त होने पर भी सम्पूर्ण आयु भर उपरोक्त बर्ताव धारण और अन्य भी सर्व शुभ गुण धर्मानुसार चरित्र गठन केवल परमार्थ में ही पुरुषार्थ करते ही करते जो इस संसार से अदृश्य हो गये हैं उनके लिये कहना ही क्या है? ऐसे ही पुरुषों के विषय में उपरोक्त जीने मरने की सार्थकता उत्तमता सन्तों सद्ग्रन्थों द्वारा तथा निज विवेक से जानी जाती हैं। वह जीवन क्या जिस जीवनमें जीवन को मुक्त बना न सके। वह अज्ञानी अभिमानी है जो मन का मोह मिटा न सके। सदगुरु कबीर देव रूप परम विरागी पारखी संत मुक्त कण्ठ से उसी की प्रसंशा किये हैं। और करते ही आये हैं। धन्य हैं ऐसे प्राणीको जिनके आदर्श जीवन से शिक्षा लेकर सहस्त्रों व्यक्ति स्व-स्व सुधार किये हैं, हम लोगों को भी ऐसे शुभ अवसर में शुभ रहस्यों को चुन चुन कर अपनी अपनी धारणा शक्ति बढ़ाने हेतु उपयोग में लाना चाहिये। ऐसे पर-मार्थके परम मित्र ज्ञान वृहद आदिसे अन्त तक एक रस पारख

निष्ठा में व्यतीत किये, ऐसे वर्तमानमें एकरस शांत चित्त उद्वेग विगत परम प्रवीन अधम उधारक हो गये होते रहें अब भी हैं, आगे भी होते रहैंगें। क्यों कि नर जीवों को गुरुपद रूप स्वतः चैतन्य आप आप हैं। मात्र उसे भूल भाड़ा हटाने में विलम्ब है। सो पर्दा हटते ही अपने अपने दुसह दुख दमन को कौन नहीं अपनायेगा। अवश्य दुख रहित पद भूमि जब स्वत: चैतन्य बोध है। जब की बिवेकी विरागी प्रत्यक्ष हैं तब कोई भी एकरस स्थिति की दृढ़ आशा बासा संयम पुरुपार्थ रक्खे तो सभी को मुक्ति स्थिति प्राप्त हो सकती है केवल निश्चय क्षीण है। जीव के सन्मुख दृश्य वर्ग कुछ सत्य सम्बन्ध ही नहीं मात्र भ्रम से निश्चयही विपरीत होनेसे ही सृष्टि क्रिया वही भोग संस्कार पुष्ट हो जन्म मरण की सृष्टि यादगिरी मनोवृत्ति द्वारा ग्रन्थिमें चल रही है। उसी को गुरु के पारख दृष्टि लेकर उलट देने से और एकरस ठहराव बनाते वही पुष्ट हो जाने प्रारब्ध भोग में शान्त उद्वेग रहित संयमों को लेकर आसक्ति परित्याग करके निःसंदेह प्रत्यक्ष वर्तमान में ही जीवन्मुक्ति की उपलब्धि प्राप्त हो जाती हैं। "जियत न तरेहु मुये का तरिहौ" जियतै जो नतरे।

(गुरुपद प्रतीति पदावली)

हितकारी मृदुशीतल स्वामी, करुणानिधि बस सुख के धामी।
निज स्वरूप परखावन हारे। जड़ द्रष्टा ज्ञाता हित कारे॥
संस्कार इच्छा मानन्दी। त्यागत गहत सत्य स्वच्छन्दी।
पंच विषय जड़ गोचर दूरी। स्वयं प्रकाश ज्ञान निज मूरी॥

सोइ गुरु देव प्रकाशक प्यारे। जड़ तम से अति भिन्न सदारे।
बड़ी भाग्य सदगुरु पहिचाने। बिन तिन कृपा तिनहिं नहिं जाने
कहँ यह जीव मनोमय चेरा। दौड़त मग गुरु से भट भेरा।
अतुलित बल गुण शील के आगर। दृष्टि पड़त निज कीन्हसमागर
सो उपकार अनन्त पिछाने। जानि स्वतः पद मैं लपटाने॥
जो सद पात्र होत सब भाँती। तो कत राग माहिं कुशलाती।
तेहि ते प्रभु सत पात्र बनावो। जानि स्वतः जिव क्षोभ न लावो
दो०-सब विपरीति जो मोहिं नर, सो सब क्षमिय सुजान।
आपन करि हित शिक्षिये, बाल की है अजान॥
अस बिनती गुरु देव की, पाठ करै मन लाय।
सो विशाल पद पावई, बहुरि न ग्रन्थि समाय॥

श्री आज्ञा साहेब कृत वचन

दो०-श्रवण घटहु पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बलदेह।
इते घटे घटि है कहा, जो न घटै निज नेह॥
कान घट्यो आँखी घट्यो, घट्यो सबै तन शक्ति।
यावत घट्यो तो का घट्यो, जो न घट्यो गुरुभक्ति॥
अपने भाव से हानि हो, अपने भाव से लाभ।
भाव शुद्ध करने हितै, सन्त बंदि मन थाभ॥

॥ परम बिरागी सद्गुरु देव की हित भावना॥

मनुष्य शरीर अनोखा है, अमूल्य है सब कुछ ऊँचे होने के कर्तव्य और नीचे चौराशी जाने के तृष्णा। बोझ बन्धन बेड़ी बनाने कर्तव्य इसी शरीर में अभी वर्तमान समय में अर्थात् आज

ही हम अपने हाथ से गढ़ रहे हैं। (बना रहे हैं) जो जैसा कर्म कर रहा है वह वैसा ही फल भोग रहा है। कवायत पढ़ने वाले फौज में भर्ती होते हैं। डाक्टरी पढ़ने वाले दवाखाना में भर्ती होते हैं। इसी प्रकार आजजो कामी क्रोधी विषयी प्रपंची हैं। वह कल भी वैसे ही खानी में जाकर देह धारण कर दुख भोगेंगे जो भक्ति धर्म में तत्पर शांत नम्र हैं सत्य क्षमा निर्लोभ निर्मोह युक्त है, जो स्वरूप देशमें स्थित हो वे कल अर्थात् आगे भी वैसे ही स्वभाव युक्त होने के लिये फिर मनुष्य देहमें आयेंगे सुखी शान्ति रहेंगे मुक्त स्थित ही होंगे अतः सावधान हो खूब बिचार विवेक युक्त कार्य में तत्पर होना चाहिये। जिसमें कि फिर ज्या मन्न नपरोस्। आगे पश्चाताप करके दुख भोगना न पड़े और एक आश्चर्य युक्त बात है कि इस संसार से जो चल दिये हैं वे सब प्राणी हाथ से छूटे हुये देश कोष समय सब स्वप्नवत हो गये और हैं अथीत् अब से पूर्व चार छः साल के स्वप्न वत दृश्य केवल स्मरण मात्र होते हैं नहीं रह जाते हमसे कभी नहीं मिलते।

स्वप्न समान अपेक्षित नाहीं, स्वपनहि-स्वप्न रहाऊ।
कौहट भई जीव को काया, मानै मान गहाऊ॥

और खुद हमारा यह शरीर नाश होने पर तो केवल सुषुप्ति वत सर्व दृश्य प्रपञ्च देह लोप हो जाते हैं। हमारे प्राणी सम्बन्धी पदार्थ मान धन कुछ नहीं रह जाते, नये बीज के नवीन अंकुर वत कर्तव्य अनुसार वहाँ सब और ही मिल जाते हैं। तो स्वप्न

और सुषुप्ति वत दृश्यमें अरुरूफ के अपने अविनाशी महान चैतन्य स्वरूप जो कि हर समय हर अवस्था में एकरस सत्य रहनहार सर्व दुख द्वन्द रहित पूर्ण सुख कोष अपने आप को भूल जाना इससेबढ़करअबुद्धिऔर क्याहोगी ? आप खुदविचार करकहसकते हो खूब गौर करो ठीक हो तो ठीक ही है । नहीं तो सुधार करने का दिन आज ही है ।

आज बसेरा नियरे हो रमैया राम।काल बसेरा बड़ी दूर हो रामैया राम

[सन्त श्रीअज्ञासाहेब का प्रवचन]

मनुष्य शरीर इस संसार रूप विषयारण्य रूप भयानक वत तथा जन्म मरण रूप भवसागर से पार करने वाली सुन्दर सुदृढ़ नौका है, इसे पार कर कल्याण में कोई भी ऐसा विघ्न नहीं है जिसे हटाया न जा सके । यानी कोई भी परिस्थिति कल्याण में विरोध नहीं कर सकती, सर्व शास्त्रों में मुक्त कण्ठ से कल्याण का सर्वोत्तम साधन कहा है ।

दोहा–जो न तरे भवसागर, नर समाज अस पाय ।
सोकृत निन्दक मन्दमति, आतमहनिगतिजाय ।।

चौपाई–नर तन पाय विषय मनदेहीं । पलटि सुधा ते विषसठलेहीं

दोहा–सो जन जगत जहाज है, जाके राग न दोष ।
तुलसी तृष्णा त्याग के, गहे शील संतोष ।।
कोमल बाणी संत की, सुनत अमृत मय आय।
तुलसी ताहि कठोर मन,सुनत मौन ह्वै जाय ।।
तन से मन से वचन से, काहू दूषित नाहिं ।

तुलसी ऐसे संत जन, राम रूप जग माहिं ॥
अतिकोमल अतिविमलरुचि, मानसमेंमलनाहिं ।
तुलसी रतमन होय रह्यो, अपने साहिब माहिं ॥
को वर्णय मुख एक, तुलसी महिमा संत की,
जिनके विमल विवेक, शेष महेश न कहिसकत ।
रैनिक भूषण इन्दु है, दिनका भूषण भानु ।
दासको भूषण भक्ति है, भक्तिको भूषण ज्ञानु ।
ज्ञानको भूषण ध्यान है, ध्यानको भूषण त्याग ॥
त्याग को भूषण शांति पद, तुलसी अमल अदाग ।

चौपाई–अमल अदाग शांतिपद सारा, सकल कलेशन करत प्रहारा ।
तुलसी उर धारै जो कोई, रहै अनंद सिन्धु महँ सोई ॥

दोहा–अति शीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन ।
तुलसी ताहि अतीत गनी, वृत्ति शांति लव लीन ॥

इन संत महात्माओं के यहाँ वाक्यों को स्मरण रखते हुये इस संसार में सकामी नर नारी रूप भयानक जन्तुओं से अपने को करुणा दयादि सहन शीलतादि गुणों युक्त बचाते रहना वे विषयारण्य रूप बन में भटके हुये मोहान्ध विना हेतु ही भूपक नाई दुसरों को स्वार्थ वश सताया करते हैं, उन्हें अपने ही तरफ से निज ओर का ध्यान रखते हुये क्षमा शीलता युक्त शान्त रहें संत गुरु का तो महान उपकार रहे उनके हितोपदेश रूप सद्ग्रन्थ भवयान मुक्तिद्वार सत्य निष्ठादि जड़ चेतन निर्णय के अनेकों ग्रन्थ हैं, उनका

समय योग्यता अनुसार पठन पाठन करता रहे, तदनुसार अपने आचरणों को बनाने का प्रयत्न करता रहे, जिससे यह अनमोल समय मिथ्या संसारियों के राग द्वेष ही में न चलाजाय "करतल जलसम आयू जाती यत्न सहस्रो कर नहिं आती।" समान चला करती अचानक जीवन लीला समाप्त हो जाती है भोजन का आशय, जीवन का निर्वाह और वचन का आशय सत्य के प्रकाश, उसके दोनों मार्ग सुगम हैं। मनुष्य देह भव-सागर से पार होने की नौका क्षमा रखने की डाँड़ सत्य स्थिर रहने का भार और नाना सुकर्म अगम धारा में खींचने की डोरी—दान परोपकार आगे ढकेलने वाली वायु के समान कल्याण मार्ग के सहायक हैं। मन की तरगों को मारना बड़ी बहादुरी है और खुशी है। बिना इसके आदमी बिना डाँडकी नौका समान वायु में बहा जाता है। जो दूसरों के अपराधों को क्षमा नहीं करता, वह अपने भवसागर पार होने की नौका में स्वयं छिद्र करता है—क्यों कि सब भूल अपराधों से लदे पतित पावन की दया क्षमा के मुहताज हैं। कठिन मानसिक ४ रोग महात्माओं के बताये हुये। १ पुनर्जन्म परमार्थ में चार प्रकार हैं अविस्वास २ संत गुरु की जो दया है उससे निराश ३ अपने कुकर्मों पर कभी दोष दृष्टि न होना और ४ अपने को सर्वथा पराक्रमी जान के असजग रहना।

जग दुख देखब कठिन है, और सहज सब बात।
देह भाव मद दोष बिनु, कैसे निज को भात॥

आपा तजै हरि भजै, नख शिख तजै विकार।
सब जीवन से निर्बैर रहै, साधु मता है सार॥

जैसा यह जीव स्वरूप से निर्विकार है वैसे ही सब दोष दुर्गणों का त्याग शुद्ध बन जाय यही अन्तिम गुरु आज्ञा है॥

स्वरूप विचार ही महा दुर्लभ है।

विद्याधन जन रूप यश, कुल सुत बनितामान।
सभी सुलभ संसार में, दुर्लभ निज को ज्ञान॥

उपरोक्त चारो रोग-निज स्वरूप बोध में विवेक वैराग्य युत शांत होते ही निवारण हो जाते हैं॥

सद्‌गुरु देव की अन्तिम दया भाव भक्ति का हृदय में विकास हो भक्ति पथ गामी बने और गुरुदेव सदा कल्याण करें। (क्या हो) यह मृत लोक की बस्ती है। यहाँ का बहुत अल्प कालीन निवास स्थान है। सब को इसी तरह एक दिन कूच करना है। इसीसे स्वयं शांति निमित्त प्रयत्न वान रहना चाहिये जैसे स्टेशन पर गाड़ी से जाने वाले मुसाफिरों की भाँति सदा सावधान ही गाड़ी की बाट जोहने के समान कूच के लिये तैयार रहें। अपना कोई काम बाकी न रक्खे यहाँ का कोई काम पूरा नहीं होगा, आज तक पूर्व में किसी का काम पूरा न हुवा, न अब है, न आगे होगा। इन्हें अपूर्ण जान कर त्याग कर शांत हो, यही विचार वान का ध्येय होना चाहिये, सदा भवयान मुक्ति द्वार, सत्य निष्ठा आदि और भी सत्यन्याय के सदग्रन्थों का पठन पाठन मननादि द्वारा निज

कल्याण हेतु। युक्ति सोचते रहना चाहिये, सत्संग अवलम्ब रक्खें, सद्गुरु देव को अपनी विनय सुनाते रहना, तदन्तर गुरुदेव के प्रारब्ध शरीर रहे तक दर्शन स्पर्शन सेवा सत्संग का बाट जोहते रहना (नर हो न निराश करो मन को) दूर रह कर भी उनकी दी हुई निज दिव्य दृष्टि द्वारे मन इन्द्रियों को स्ववश करते हुये सदा यही सोचते रहना।

अन्ततः शरीर तो अवश्य परित्याग हो ही जायगा। फिर मोहासक्ति क्या काम आयेगी जो बेकाम की चीज है। स्वप्न वत है, उनको सत्य स्थिर मान कर रात दिन विवेक विमुख होना ठीक नहीं शुद्ध ब्यवहार देह रक्षा सहित परोपकार युक्त निज अन्तस शुद्धि करते हुये स्वरूप में समान भाव से रहने ही के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये।

चोपाई

नर की देह जो होवै विचारा। तो हित पोषण उचित अचारा॥

साखी—वर्तत मिलैं पदार्थ जो, प्राणिन को सम्बन्ध।
अहं ममत्व जो हर्ष तहँ, जानि तजै तेहि बन्ध॥

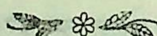
अहंकार ममता और हर्ष ये तीनों विकार, दोष हैं। जन्म मरण के कारण एवं पाप के बीज हैं। देहादिक दृश्य पदार्थ में नहीं, अतः मेरा इनसे सम्बन्ध सत्य और स्थिर नहीं तब फिर ममता तथा हर्ष ही क्या ? अहंकार ममता हर्ष ये तीन अपने सुख ही के लिये भूल बश जीवों ने धारण कर रक्खा है। किन्तु सच्ची अपनय्यत सच्चे प्रेम सच्चे प्रमोद

सच्चे अहम् कि निश्चय कभी निचलित न हो ऐसा कहाँ पर है। जो कुछ देखो सुनो करो धरो गुनो वह सब द्रष्टा चेतन से पृथक दृश्य परिवर्तन होते ही जा रहा है। और मैं द्रष्टा सर्व जानन हार सब से पृथक शुद्ध चैतन्य ही जब सत्य नित्य स्थिर हूँ। तब इन्द्रिय मन गोचर सर्व को मैं मेरी मान कर काम क्रोध मद मत्सर ईर्षा राग द्वेष कामना आसक्तियों में विचरना यह अपनी घोर शत्रुता करके जन्म में पीड़ित करना है। अब गुरुदेव की महान दया हुई जो मैं जागृत हुवा, काम क्रोधादि विकार अनावश्यक ठहरे दुख द्वन्द के मूल ठहरे, इसी विचार प्रकाश को लेकर अब से ही इनको गुरु विचार और रहस्य दृढ़ विवेक सच्चे वैराग्य और सच्ची गुरु भक्ति द्वारा विनष्ट करके सदा शांत रहूँगा ये दृढ़ संकल्प है यही मेरा ध्येय है। यही मेरा मन्तव्य स्थल है। मुझे यहाँ ही पहुँचना है, गुरुपद स्वपद सदैव निर्मल निर्भय निर्विकार पारख धाम विश्राम। विशेष सद्ग्रन्थ के पठन मनन आचरण तथा गुरुदेव के शरणाधार के कार्य बनाते रहना कार्य वही है। चाहे इसको बहुत बढ़ाकर कहिये सुनिये या संक्षिप्त में बोध पान कीजिये॥

मैं चैतन्य एकरस सत्य हूँ। देह मन प्राण सर्व दृश्य गोचर जड़ है। बस यही निश्चयता मुक्ति मूल है। निर्विकार निर्दोष जीवन ही महान लाभ है। जो सत्पुरुसार्थ अर्थात् सेवा भक्ति-तथा पाठन पठन रहस्य आचरण बनाने से सिद्ध होगा। क्या कभी सब से मन हटा कर स्वरूप भाव में शांत हुये हो

कि नहीं न हुये हो तो शांत होकर देखो। प्रयत्न में क्यों पछड़े ? सदभावना में क्या लगता है। ऊँचे चढ़ने में हित भावना, क्षमा निर्मानता एवं निष्कामता प्रधान है। और सत्पुरुषों के चरण कमलों की सेवा। तुम मानो या न मानो फल पाना हो तो अभी से पुण्य पथ पर चलो। तुम दूसरे के लिये क्यों रोष दोष कोष रचते पचते हो ? निज की ओर घूमो क्या आज ही, ये विघ्न बाधा लगे हैं। सदा ही रहते, उन्हें हटाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते। सद्गुरु सत्संग सद्-ग्रन्थ सज्जन सभी हमें सुधारना चाहते फिर उनसे वैरभाव क्यों।

जागत सोवत रैन दिवस में। सदा एकरस अविचल है।
द्रष्टा रूप बिराजत आपै। ज्ञान स्वरूप शुभस्थल है॥
निःसन्देह अभय पद राजत। सर्व हितैषी निःछल है।
दीन जनों के पालक बोधक। गुरु विशाल बर बुधि बल है॥



अध्याय १०

स्वरूप बोध मनन सत्यनिर्णय ग्रहण

[स्थितिवान संत और मुमुक्षु का सम्वाद]

मुमुक्षु—स्वरूप स्थिति को प्राप्त करना चाहता हुँ। संत अधिकारी जानकर ! अच्छा जो मैं कहूँ वह सब समझते धारण करते जावो ! पल्थी मारकर सहजासन से बैठजावो ! बैठ गया नेत्र बन्द कर लो ! कर लिया, श्वाँस सम कर लो ! कर लिया चित्त गति स्मृति भावना छोड़ दो। बोझ जानकर चिन्तन रोक दिया, इतना कहने के पश्चात् सन्त बोले। अब तुम्हारे सामने क्या उठता कुछ नहीं ! संत कुछ नहीं को रह गया जिसने ज्ञान किया वह तू जीव चेतन सद्रूप रहा की नहीं तू ही ने तो कुछ नहीं को जाना, यदि तू भी कुछ नहीं होता तो जानके कहता कौन ? कुछ भास होता कुछ नहीं ऐसी भावाभाव वृत्ति का ज्ञाता चेतन सत्य तो तू है ही। मुमुक्षु-गुरुदेव मुझे चेतन आस्ति शुद्ध राम का ज्ञान हो गया। सर्व जनैया सर्व से न्यारा सत्य जड़ तन मन प्राणों को निसेध करने वाला भिन्न मैं चेतन सत्य हूँ। धन्य जो कोटियों जन्म में नहीं जाना, नहीं पाया, उसकी अपने आप का मुझे क्षणमें बोध करा दिया। ऐसे सत्य परिचय देने वाले महा प्रवर सन्त शिरोमणि आप ही गुरुवर पूज्य हैं। संत बोले—अब स्वरूप बोध मनन अभ्यास पत्रिका आप को देता हूँ। ऐसा बारम्बार विचार करके मानस्तरंग पर विजय प्राप्त

कर लेना, तब अपना हाल मुझसे आकर कहना। मुमुक्षु—कुछ दिन बारम्बार स्वरूप बोध मनन अभ्यास पत्रिका का अभ्यास करने के पश्चात गुरुदेव का दर्शन कर बोल उठा—

एक एक शब्द को आठ आठ बार पुनरावृत्ति करते हुये पुनरपि आठ आठ बार इसकी पूरी आवृत्ति करते हुये मैं पुनः अपने में अपना भाव बुद्धि द्वारा निश्चय मन चित द्वारा मन चिन्तन अहं द्वारा गहे धारण के तत्काल ही अपने पारख शक्ति से समस्त चिन्तनों को शम करके अचल भाव से शान्त हो रहा बहुत देर इस अभ्यास के पश्चात सब यथावत रहस्य जानने मानने में आकार मैं निःसन्देह उस निर्विकार निराधार पारख स्थिति को प्राप्त हुये जो आप का मेरे लिये प्रयत्न परि-श्रम था।गुरुदेव बोले—आप का यह स्वपद ही गुरुपद है। इसी पारख भूमि में शांत रहना और इसकी शिक्षा देना।

एकान्त शान्त निर्भ्रान्त संत देव के निकट जिज्ञासु प्रश्न करता है कि-हे भ्रमभंजक महान परीक्षक संत-अनेकों जो इच्छावों की धारा बह या उठ रही है वह इच्छा धारा किसकी है, और किसको इच्छा की प्रतीत होती है वे सर्व भास वृत्तियाँ मुझ चेतन में हैं तो छूटेगी नहीं, प्रकृतिये हैं तो मुझ चेतन से क्या ? इसका निर्णय प्रकाश दिया जाय? गुरुदेव कहते हैं हे प्रिय सादर इसे श्रवण करो-स्वच्छ स्फटिक शिला जैसे सबके प्रतिबिंब का आकर्षण करता है, तैसे तू चेतन ही सर्व मनोवृत्तियों को प्रका-शता है जानता है छोड़ता पकड़ता है, शुभाशुभ वृत्ति जब जो

उदय होती है तब तेरे ज्ञान में वैसे ही भासित होता है। इस प्रकार तू कार्यों-वृत्तियों का मिट्टी और घटवत उपादान नहीं जड़ रूप नहीं प्रत्युत कुम्भार वतनैमित्यचैतन्य है। पृथक रहके जो कार्य उत्पन्न करे वह नैमित्य कहा जाता है। जागृत में शुभाशुभ अनन्त कर्म होते हैं, उन कर्मों को सत्ता देकर करने कराने वाला तू चेतन ही तो है। देखिये सुषुप्ति में कोई कार्य नहीं होते जैसे कुम्भार चक्र दण्ड के साधन से अनन्त घट थोड़े ही समय में रचदेता है किन्तु जब चक्र दण्ड नहीं लेता तो कुछ नहीं निर्मित करता तैसे ही तुझ चैतन्य कर्त्ता का और साधन रूप इन्द्रिय अन्तस का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। सुषुप्ति में क्रिया और भोग दोनों विलीन गुप्त हैं मात्र चेतन स्वतः वहाँ प्रकाश है। इस प्रकार कर्मों और अनेक वृत्तियों का उदय होना जड़ चेतन दोनों के संबन्ध में अनुभव हो रहा है। साध्य कर्त्ता मालिक तो चेतन जीव ज्ञाता है। साधन सामग्री इन्द्री अतःकरणादि हैं। देह से कर्म कर्म से देह, बीज वृक्षवत या तन्तु वस्त्रवत इस प्रकार-अनेक वृत्ति और इन्द्रियों का उपादान तो जड़ तन अतंस-पंच विषय-जड़ परमाणु का संयोग ही शास्त्र साधन औ चर या मशीनवत है। और चेतन द्रष्टा साक्षी ज्ञाता-ड्राइवर या विद्युत मशीन भी चालक तथा कुम्भारवत नैमित्य कर्त्ता है। इस प्रकार हे चेतन जीव तेरे ही द्वार यह सर्व चार खानि के कार्य फल भोग चल रहे हैं तू आज नर देह में जैसा जहाँ-जो व्यापार गुणधर्म-साधन-साध्य कर्त्ता और तत्व-पदार्थ

गुण वृक्ष है तिन सबके गुण धर्मों से यथावत पहिचान करले और सारी प्रकृति की आसक्ति-विघटन कर मुक्त होगा ! शिष्य करबद्ध शिर नम्र करके भाव सहित मिष्ठ वचन से बोला हे प्रभो आप मेरे अज्ञान गजको ज्ञान सिंहवत विदीर्ण कर दिये हो। धन्य ! अब कुछ और कृपा करके बताया जाय, जड़ चेतन के संबन्ध का हेतु क्या है ? कब से है। यह संसार किसके आश्रय है, जन्म मरण किसका होता है। माया प्रकृति अंधतम-मुझे चेतन को क्यों नचा रही है ? अचल कौन है चलायमान क्या है विरोधी संबंध कैसे गठन हो गया ? गुरुदेव बोले शिष्य तू बड़ा ही बुद्धिमान है ! जड़ चेतन दोनों-भाव रूप अनादि पदार्थ होने से अज्ञान भ्रम सुखाध्यास, प्रवाह अनादि रहते आने से ही उभय संबंध का कारण है प्रवाह अनादि से ही युगल संबंध प्रत्यक्ष सब देखते हैं, जो हम सब प्रथम बन्धन होते तो आज कैसे तनमन से जकड़े हुये दृष्टि पथ होते ? जड़ संसार सृष्टि तो जड़ शक्ति के आश्रित है और मनोमय संसार का नैमित्य प्रधान चेतन जीव है। जीवही जन्म मरण का अनुभव करता है ! नित्य होते हुये भी प्रकृति का हन्ता ही संकुचित विकसित उपाधि वस अपने अखण्ड रूप को जागृत स्वप्नादि के समान मानता है।

यह देहोपाधि ही तेरे को जन्म मरण के कल्पना में डालती है। वास्तविक तूही अमर अजर अभय सत्य अचल है—चलायमान तनमन इन्द्री जड़ पिण्ड ब्रह्माण्ड समस्त परिवर्त-

नीय है। तूही अपरिवर्तनीय है तन मन सब जनम जनम में परिवर्तन होते रहते पर तू वही अमर पंच भोग गन्धासक्त रहता है अब मैं तुझसे जो जो कहूँ उसके भावानुसार होता जा। देख तुझे मैं–तनिक देर में अविलम्ब ही सत्य बोध करता हूँ घोड़े के रकाब में पैर सार तत्व का बोध वाली बात चरितार्थ करता हूँ ? आसन मार के बैठ जा ! बैठ गया हूँ। नेत्र बन्दकर 'बन्द कर लिये' हाथ जोड़ ! 'जोड़ लिया' श्वास रोक ! 'रोक लिया' मनोवृत्ति को डाल दे। 'डाल दिया' शाँत हो जा ! 'हो गया' अच्छा अब श्वाँस चला दे ! 'चला दिया' मेरे उपदेश पर ध्यान देके अब बता तू चेतन ही इस शरीर मन प्राण सर्व जड़ वृत्तियों का चलाने और रोधन करके तू ही शांत स्वतंत्र चेतन रहा कि नहीं ! अवश्य गुरुदेव किन्तु जब मैं आपकी आज्ञानुसार ध्यान मग्न हुवा तो मेरे आगे शून्य सा या कभी प्रकाश सा कभी अँधकार सा प्रतीत होता तो कभी कुछ नहीं। गुरुदेव बोले। हे बड़ भाग्य–वृत्तिभास नृत्य कला के दो रूप हैं। एक तो चंचल त्याग ग्रहण वृत्ति दूसरी विलीन वृत्ति ! इन दोनों का तू द्रष्टा चेतन तहाँ तो तूँ रहता ही है। जो तू सत्य चेतन वहाँ न रहता तो कौन कहता कि मेरे सामने कुछ न दिखाई दिया अथवा कुछ अंध प्रकाश दिखाई दिया। शिष्य बोला अवश्य देख कर ऐसा कहने वाला मैं रहा किन्तु मैं नहीं दिखाई दिया। गुरुदेव बोले यही तो अज्ञानता है जो तू सबको देखता जानता मानता रहता इस हेतु सदा सबसे पृथक परम

सत्य अस्ति है ही साक्षी पारखी स्वयं प्रकाश को यथावत न पहिचान होने से तुझे भ्रम होता है कि मैं दिखाई दूँ ! फिर तू दीखेगा तो देखने वाल कौन रहेगा। सर्व निरीच्छक तू तो स्वयं ही सत्य है सत्य को सत्य से ही पहचान सत्य को सत्य ही में जान सत्य को सत्य रूप हो रख ! उस निज सत्य का सत्य रूप से ही विवेक कर तूँ पंच विषय सुख से दृष्टि उलट कर निज अविचल शांत सुख में वृत्ति जोड़ दे। अर्थात्, तूँ किसी समय एकान्त शांत निभ्रांत होकर जब तेरी वृति सब सात्विक प्रधान समान हो या अभ्यास से तब तू निश्चल बैठकर शरीर गति रोंक दे। पुनः मनोगती का सब स्वप्नवत जान पृथक समझ कर डाल दे। पुनः प्राण गति को क्षण भर रोंक के धीरे धीरे स्वभाविक बहने दे। तब देख इन सब का मैं परोक्षक निष्काम नित्य प्राप्त नित्य मुक्त निर्विषय निःशोक निर्भय अजर अमर मुक्त शांत हूँ। अब यहाँ पाने योग्य सब पा गया कि नहीं। अथवा कुछ शेष है शिष्य ! धन्य सत सहस्त्र साधु वाद आपको गुरुदेव ने कहा सत्यन्यायी पारखी सन्तों का यही प्रवर सिद्धांत है, देखो पुनः प्रमाणित करता हूँ—पारखी संत महोदय कहते हैं—

सत्य ही को जो पक्षी हैं झूँठ को जो परित्यागी हैं। भक्त जनों एवं समस्त के जो हितचिंतक हैं। मनोवासना रूपी पतंग के भस्म हेतु जो प्रबल ज्वाला हैं तृष्णा प्यास बुझाने से जो सन्तोष महा जल के प्रदायक हैं। खानी वानी वन काट के

निर्मूल करने में जो तीव्र शास्त्र हैं। ऐसे परम पुनीत मनस्वी यशस्वी संत महात्माओं में विश्व विख्यात शिरोमणि महात्मा सद्गुरु श्री कबीर देव आदर्श एवं मर्यादा पुरुषोत्तम हुये हैं। तैसे ही गुरु पद स्वरूप बोध में स्थित जगत ब्रह्म हन्ता से सावधान, विवेक वैराग्य में बली। अन्य पारख निष्ठ संत तथा सद्गुरु श्री विशाल साहेब और भी जो वर्तमान में संत महात्मा हैं ते सर्व संत गुरु विवेक विचार मग मग्न आप सब जो देश काल पात्र देख देखकर सर्व जन हिताय युक्तियुक्ति समता क्षमा मर्यादा रख के जो वचनामृत वर्षा किये हैं, उन सबका लक्ष सिद्धांत यहां कुछ मनन योग्य है—वाक्य से भाव, भावसे रहस्य स्थिति धारण शांत पद उत्तरोत्तर महान है। चाहे जितना लेख बोल हो वह स्थिति से न्यून ही है। १—अप्रवक्ता आप सर्व पारख स्थिति संत महात्मा मर्यादा रक्षक पतित पावन हैं। आप की बड़ाई यश गान सेवा भक्ति आज्ञा पालन सिद्धान्त ग्रहण हम जैसे पतित जोव के लिये यान, बूटी, नयन, प्रकाश, सम्पति, बल, मित्र, आधार एवं अविचल भूमि पद तथा स्वदेश स्वयं प्रकाश मुक्ति धाम विश्राम स्थल है। तब भला हे मन! पारखी संतगुरु की वाणी मात्र से बड़ाई क्या है? वे तो स्वयं ही समस्त महानता के मूल शुद्ध चैतन्य अमृतमयी शांत हैं। हम आप सर्व गुरु पारखी सन्तों से यही अभिलाषा एवं भावना रखते हैं, वाणी भले ही संकुचित रह जाय पर भाव श्रद्धा कर्तव्य स्थिति मुझ दास में बलवान हो। आपके समान हो, राग द्वेष कलह कल्पना

जड़ासक्तियों का नितान्त अभाव हो। क्षमा समता उदारता निष्काम एवं निःस्वार्थ सेवा भाव का प्रभाव हो। आप जो सर्व सत्य बोध में स्थित हैं। आप सबकी जो एकान्त शांत निभ्रांत पारख एवं सद्बुद्धि विवेकमयी चैतन्य पद में एकरस स्थिरता है। उस स्वयं पद की अनुभूति द्वारा जो आप सर्व गुरुजन वाक्य सुधामृत सद्ग्रंथ रूप में पिलाते हैं। वह कितना कल्याण-कारी है, कि इस अभागे जीव को सौभाग्य का द्वार खोल दिये, सब कुछ उसके हस्त गत कर दिये हो। धन्य ! सद्गुरु श्री कबीर देव कृत सदग्रंथ बीजक में जीव जमा बोध पारख स्थिति कूट कूट भरा हुवा है। तैसे ही जड़ चेतन मय समस्त जगत अनादि है। सम्बन्ध प्रवाह भी अनादि है। जीव वासना क्षय कर देने से मुक्त स्थित हो जाता है। इसके लिये निष्पक्ष ज्ञान दर्शन अवलोकन योग्य है, एवं अदद सत्य सरल स्पष्ट ऐसेही बीजक त्रिज्या तथा नवीन टीका संत अभिलाष साहेब कृत टीका सोने में सुगन्ध की क्षमता दायी है। २—जड़ को जीव मानना सर्वथा युक्ति शून्य सृष्टि कम गुण धर्म विरोध है, इस पर न्यायनामा निर्मल प्रभाकर सदग्रंथ कितना उपादेय एवं वाञ्छनीय ग्रहण योग्य है। तैसे ही जगत ब्रह्म भास मन की मान्यता से परे गुरु पद सत्य पारख अमल पद है। ऐसे पञ्च-ग्रंथी जो श्री रामरहस साहेब प्रकाश दिये कितना ज्ञान अमोघ है। ३—पुनर्जन्म कर्म फल सृष्टि क्रम प्रत्यक्ष सत्य है। वृक्षों में चेतन जीव नहीं है, इत्यादि निर्णय, जड़ चेतन निर्णय श्रीकाशी

साहेब कृत तथा विशाल वचनामृत भवयान आदि में पूर्ण है। जिसे देख कर कौन नहीं सत्य का शोध ग्रहण करेगा। धन्य विवेक। ४—वासना ही जड़ चेतन की ग्रंथि है। गमनागमन का बीज है, खानी में मुख्य स्त्री सम्भोग की सुखाशक्ति काम क्रोध मद मत्सर राग द्वेषादि और बानी जाल में ईश्वर ब्रह्म शून्यवाद आदि बन्धन रूप अनन्त दुसह दुखोंका हेतु है। तिससे पारख दृष्टि एकरस ग्रहण करते ही छुटकारा मिल जाता है। इस पर शकुन बहार दर्पण तत्व युक्त निज बोध विवेक तिमिर-भास्कर आदि द्रष्टतव्य हैं।

(सद्ग्रन्थ मनन संज्ञा)

चाहे जो सद्ग्रन्थ के आश्रय से स्वबोध रहस्य में शांत रहते हों उनसे वैर विरोध न मानते हुए सबका फल पारख बोध में शान्त होना जानकर बड़े ही प्रेम श्रद्धा से किसी एक का आधार रखना चाहिये मैं तो प्रतिदिन सद्गुरु संत के युक्तियों से समग्र पारख बोध संज्ञक ग्रन्थों में प्रेम रखते हुए आजकल कि शेष सद्ग्रन्थ भवयान के पाठ अर्थ मनन में लगाये रहता हूँ—जैसे सब पारख सिद्धांत ग्रन्थों से उदार चेता सदबुद्धि प्रेरणा है तैसे ही इसमें यथार्थ ज्ञान सहित सब कल्याण सामग्री पूर्ण है जैसे कोई बीजक कोई वैराग्य शतक कोई बीजक त्रिज्या कोई पंचग्रन्थी कोई सर्व सदग्रंथ कोई एक ग्रंथ मनन करते तैसे ही सदग्रन्थ भवयान जितना ही मनन किया जावेगा उतना ही मन

शांत होगा, इसहेतु मैं अपने मन को स्वरूपाभिमुख वृत्ति बनाकर काँटे से काँटे निकालने न्याय दुर्वासनों के उठने का अवसर ही नहीं आने देता, सदा सत्संग मिलना अत्यंत दुर्लभ है, साक्षात सद्गुरु सन्तों द्वारे तथा परस्पर भक्त जनों के मध्य कल्याण चर्चा जो सुना और किया तथा पीछे से जो मनन किया जाता है और उसी अनुसार जो रहस्य युक्त धारणा बनायी जाती है वही मन मार मन विजय साधन जानिये। दृढ़ बिवेक वैराग्यवान अनुभव शील शंतों के जो सत्य निर्णय शब्द हैं वै सदग्रन्थ रूप में एकत्र सर्वांग मुक्ति मार्ग के नोट बुक हैं, अतः जो चाहे सो कोई भी सद्ग्रन्थ देख मनन कर स्वरूप स्थिति का कार्य बना लेना चाहिये।

देहोपधि युक्त और देहोपधि रहित जीवों के लक्षण विधान साथही-रहस्य पूर्ण वक्तब्य

अर्थ-स्वरूप बोध-मनन अभ्यास पत्रिका।

दोहा—इच्छा क्रिया अवस्था, ज्ञान अमरता होय।
ये लक्षण जहँ पाइये, जीव जानिये सोय॥
बैर प्रीति इच्छा धरे, त्याग ग्रहण औ ज्ञान।
हानि लाभ प्रयत्न दुख, सुख मानन्दी जान॥
ज्ञानै ज्ञान स्वरूप तिन, निशिदिन हैता चेत।
मन्दिर सम तन में रहै, रक्षा भोग लखेत॥

[प्रसंग मनन महा लाभ वर्णन]

इस प्रसंग के अर्थ भाव सहित एकान्त में बारम्बार आवृत्ति करते करते निर्वासनिक स्थिति प्राप्त हो जाती है। जिस स्थिति को पाकर प्राणी कृत कृत्य हो जाता है। यथार्थ आवरण मुक्त होकर निर्भयशांत विराजते हुये प्रारब्ध क्षयान्तर सदा के लिये विदेह मोक्षमें निराधार अविचल शांत रह जाता है।

[प्रबंध अपना स्वरूप–स्मरण]

विदेह स्वरूप पारख स्वरूप ज्ञान स्वरूप सत्य स्वरूप स्वयं स्वरूप स्वच्छ शुद्ध स्वरूप शांत स्वरूप, पूज्य स्वरूप दिव्य स्वरूप सदा विजय स्वरूप अजर अमर अविनाशी अखण्ड अनादि अनन्त असंख्य अचल अभय अक्षय अभार अगंज अमद अभोग अक्रिय अमृत अपरोक्ष अनुभविता अविकार पद असम्बन्ध आरोग्य अति सूक्ष्म अति प्रसिद्ध असंग आपहि आप अदीनता अगोचर अक्षय शांति अक्षय धन, अनादि ज्ञान अनादि ज्ञान शक्ति अनन्त शांत आदित्य ज्ञान वर्ण अनुपम स्वभाविक एकरस सबसे पृथक, परम स्वतंत्र स्वयं परीक्षा समर्थ स्ववश सर्व परीक्षक, शांत सिन्धु नित्य शांत पद, श्रेष्ठपद परमपद जमापद निजपद गुरुपद गुरु कबीरपद पारखपद मुक्तिपद, सर्वोच्च पद सर्व सार सचेत सदा सनाथ सिंह वत् सर्वोपरि सर्व शिरोमणि सनातन सर्व भासिक सत्य ज्ञान स्वतः सिद्ध स्वयं

प्रकाश मान नित्यतृप्त नित्यप्राप्त नित्यमुक्त स्वयं निष्काम निराधर निर्मल निर्बन्ध निरुपाधि निश्चिंत निर्विक्षेप निर्मान निर्लोभ निर्मोह निश्चल नैराश्य सत्य व्यापक परम शुद्ध परम शांत परम धन परम तत्त्व परम विश्राम प्रेरक, स्वयं प्रत्यक्ष स्थूल सूक्ष्म पंच विषयातीत, अन्तरङ्ग (द्रष्टा पन अभ्यास) स्वरूप प्रिय गुरुप्रिय पूर्ण स्थिति परम प्रिय परम पुनीत गुरु पारख परम तेजस्वी परम प्रतापी परम गम्भीर एकदेशी एक लक्षी प्राणी हंस चेतन जीव जनैया जानमात्र द्रष्टा साक्षी ज्ञाता ध्याता धर्त्ता हर्त्ता भोक्ता ज्ञानाकार, ज्ञात गुण ज्ञान प्रकाश ज्ञान रंग ज्ञान निधि ज्ञान सिद्धि ज्ञान गुणरूपी स्वयं शक्ति या सत्ता वान नित्य तृप्त रूप महान ज्ञान शक्ति त्रिकाल बाध्य रहित, चिरंजीव जीवन कला जानीव जागृत रूप, स्वरूप विषयक जग का अत्यन्ताभाव ज्यों का त्यों जहाँ के तहाँ घट बढ़रहित व्याप्य व्यापक रहित आधार आधेय रहित सेव्य सेवक रहित कारण कार्य रहित अंशी अंश रहित जड़ाकार पट भेद रहित दुख सुख हानि लाभ मान अपमान रहित इच्छा वासना कल्पना रहित स्वजातियों में लघु दीर्घ रहित आदि अन्त अवस्था रहित मनोद्वेग रहित जागृत में जागृत द्रष्टा सुषुप्ति में सर्व स्मरण रहित ज्ञाता स्वतः स्मरण कर्त्ता, अपरोक्ष बोध अति दुर्मिल विवेक वैराग्य से सुलभ, जानरूप आपही आप दूर समीप का ज्ञाता, सम्बन्ध रहित आपे आप परीक्षक सर्व सदगुण अवगुण रहित नाम रूप गुण रहित, धर्म गुण शक्ति

आकार में एकहिं ज्ञान मात्र पक्ष हट स्वार्थ तर्क मान मद रहित यथार्थ निष्पक्ष ज्ञान अपरोक्ष कर्त्ता भ्रम पार, प्रकृति वाद परे एकात्म वाद रहित शून्य रहित अछिद्र, अखण्ड निर्विकल्प, निर्विवाद। स्वतंत्र द्रव्य दृश्य स्थूल सूक्ष्म हलका भारी नाप तोल सर्व साक्ष्यदृश्य भास का द्रष्टा न्यारा निराधार पद। सर्व संशय रहित, भूल भ्रम रहित, मानसिक झगड़ों से रहित, देहोपाधि रहित, सुखाशा रहित, प्रीति वैर रहित, जड़ाशक्ति रहित, जड़ वस्तु प्राप्ति परिश्रम रहित, पंच क्लेश चार तत्वोंसे परे त्याग ग्रहण रहित मन बुद्धि वाणी इन्द्रियों से अत्यन्त परे छाया रहित द्वैतापन मूल धन श्रेष्ठ लाभ श्रेष्ठ सुख श्रेष्ठ शान्ति वीर स्वभाव वृत्ति निरोधक भावना कर्त्ता यथार्थ स्वदेश यथार्थ संतोष, महावीर महासम्राट अज्ञान ध्वंसक पारख ज्ञान प्रकाशी परम ज्ञानी अनादि सत्य अक्षय स्वरूप निज अन्तरयामी पूर्ण काम निर्विवाद निष्प्रपंच अनमिल अखैंच शब्दी, देह यन्त्री, अर्थी, चित्रकारी सुजान भासिक रमैया राम सब देवों के देव परम देव, चेतन स्वरूप त्रिकाल में निज से कभी भिन्न नहीं लक्षण विलक्षण वाला, मुक्त सरूप चेतन स्वरूप आपस में खिंचाव रहित विदेह मुक्ति में अपने अपने स्वरूप से सर्व जीव स्वतः रूप सीमा सत्य सहित साक्षी भास रहित विदेह स्वरूप सदा शांत शांत शांत !! पारख सदा परम शांतिः शांतिः शांतिः !!

'पारख ऊपर थिर ह्वै रहना। सकल परखना ना कुछ गहना॥

[पूरण साहेब पारखी सन्त श्री निर्मल साहेब कह रहे हैं]

॥ भजन ॥

हंसा चलो आपने देश ॥ टेक ॥

चार अवस्था पंचा कोष की, जहाँ नहीं कुछ लेश ।
जन्म मरण नहिं विविध कल्पना, जहाँ न पश्च कलेश ॥
चौदह तपक आवरण सातों, जहाँ न शेष महेश ।
माया ब्रह्म पुरुष ईश्वर की, जहाँ नहीं परवेश ॥
परख प्रकाश भास कुछ नाहीं, निज पद में दरपेस ।
षट दर्शन पाखंड छानवे, वहाँ नहीं कोई भेष ॥
यहाँ तुम्हारा निजु घर नाहीं, जड़ माया परदेश ।
निर्मल दास चित्त वृत्ति निरोधक, आप रहेगा शेष ॥

(निर्मल सत्य ज्ञान प्रभाकर)

दो०—कहब सुनब देखब गुनब, मानब विषय विकार ।
नाम रूप दोनों विषय, निराकार साकार ॥
नाम निर्गुण पद मात्र है, रूप सगुण सोई अर्थ ।
को श्रृणोति पश्यति कवन, अपर परा सामर्थ ॥
चित्त बहिर्गत बंध्य सो, अन्तर्गत सोइ मोक्ष ।
मनन चिंतवन प्रोक्ष भ्रम, निज स्वरूप अपरोक्ष ॥
कर्त्ता कारण कार्य में, फँसा रहै निशियाम ।
तीनि उपाधी से रहित, शुद्ध स्वतः निज ठाम ॥ नि०

साखी—कबीर अपने रूप को, कहै जो प्राप्ती होय ।
ऐसा भ्रम जेहि ऊपजा, सो जियरा गया बियोग ॥ क०

॥ गुरु शब्द ग्रहण की आवश्यकता सत्य निर्णय ग्रहण ॥

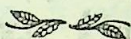
बंधन करत लोह की बेरी। काटत छेनी लोहै केरी ॥

साखी—शब्द बिना श्रुति आँधरी, कहौ कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिरि फिरि भटका खाय ॥

१—जब कि कुछ न कुछ संकल्प द्वारा भोग होता ही रहता है, जड़ खानी बानी पंच भोगों का भोक्ता होने से जन्म-मृत्यु संसार का निवारण नहीं हो सकता, तब इस जन्म मृत्यु से पार होने के लिये विवेक लक्ष से स्वरूप विवेक ही का भोक्ता स्वरूप बिचार ही का मनन बिलासी बनना चाहिये स्वरूप बिचार ही पुष्टि लक्ष्य से चलना फिरना घूमना बैठना निर्बाह करना और सब शुद्ध ब्यवहार रखते हुये स्वरूप विचार ही में एकाकार होकर बिशेष स्थिति बनाना, और सर्व हानि लाभ सुख दुख मिलन बिछोह ब्यवहार स्वप्न कौहट के समान मिथ्या समझना निर्भोग, निर्चाह, निर्भय, निर्द्वन्द, निर्बिकार ये पञ्च निःबर्ग से निराधार स्थिति मिल जायगी। यही परम कर्त्तब्य है। २—ग्रंथ देखते, पाठ करते हुये भी विशेष बृत्ति के ठहराव न होने से और मनन होने लगता है। स्वरूप मनन करते हुये उनमें और बृत्तियाँ घुसने लगतीं पारमार्थिक कार्यों के साधनों में आगे ढिलाई ग्रसने लगती किन्तु जब निश्चयता प्रबल होती है परीक्षा का जोर बँधता है, जब जीव संयम पूर्वक ग्लानि और अधिक अधिक सावधानी का जोश भरता है। तब पूर्व बिघ्न नहीं आते अतः उत्तर अंगों को बढ़ाते रहो। घूम घूम बिचार ही प्रधान

है। पारखी संत वैराग्यवान का संग उनकी सेवा आज्ञा पालन आप की शरणागत और वैराग्यवान के सद्ग्रंथों का विचार उनके सत्संगतियों से प्रेम, इन सब बातों से शीघ्र श्रेय मार्ग मिलकर एकरस कल्याण मय स्थिति हो जाती है। कुछ भी हो, स्थिति के लिये तो ब्रह्मचर्य रखना ही पड़ेगा। इसके लिये युवती निकटासक्ति कामुक सर्व लक्षण त्याग करते ही निष्काम वृत्ति पुष्ट हो जाती है। स्थूल वृत्ति न जमा कर स्वरूप के ओर की सूक्ष्म स्वरूप विचार का अभ्यास दृढ़ होना। 'यहई हृदय बिचारि कै, मिलै ते होवहु शून। दुख सकलौ मिटि जाय सब, और न मन में गून॥ अनुभवी बिचारवान के ग्रंथों को भले प्रकार विचार कर तदनुसार धारणा बनाना। सत्पुरुषन की बानी देखो' महान बल शक्ति संग्रह करना है। सर्व तर्क सर्व अनुभव सर्व बिचार सर्व लक्ष सर्व वृत्तियों का जो द्रष्टा है जनैया है वही अपने आपको तुम जानो और सर्व भास दर्शन वृत्ति को पृथक समझो। समझने वाला तो आप ही चेतन है। सो अपने बल से आप अपनी ओर वृत्ति घुमाकर परीक्षक रूप सत्य पदार्थ पर स्थिर रहो। उस अपने आप में शंका तर्क कल्पना नहीं व्याप्त होता। जो सबका तर्क कल्पना कर्त्ता है। वह अतर्क अशंक अकल्पित सदा सर्वदा अपरोक्ष स्वयं स्वरूप सर्वोत्तम स्वयं पदार्थ है, उसे स्थूल भास सुखाध्यास छोड़कर सूक्ष्म वृत्ति से विवेक करो तो जो विवेक करता है वही स्वयं चेतन अखण्ड सत्य स्वतः स्थित है। स्वरूप बिस्मरण उसे

आवागमन है वासना है। स्वरूप स्मरण और स्थिर वृत्ति से वासनाओं का छेदन है, अचल स्थिति है। अतः स्वरूप के गुण सत्संग से निरन्तर स्मरण करो और शांत होओ।



अध्याय-११

[स्वरूप स्थिति प्रसंग]

सोरठा—बन्दी छोर दयाल, निज रहनी सब देव मोहि।
सदगुरु देव विशाल, वार वार बन्दन करौं॥
रात दिवश अब मोहिं, निज परमारथ लक्ष हो।
बहु विधि विनवौं तोहिं, शरणपाल गुरुदेव जु॥

[बन्दगी विचार कैसे अच्छे ढंग से बतलाया है लघुताके प्रमाण]

पानी ऊँचे ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिये, ऊँचे पियासा जाय॥

जो पुरुष-महातमाओं और विद्वानों के सामने अपनी अधीनता के कारण झुक कर नीचा होता है, वह उनसे सदगुण प्राप्त कर लेता है। और जो अहंकार बश उनका शिष्टाचार नहीं करता है, वह सदा के लिये कोराही रह जाता है। अपनी अधीनता दूसरों को बश कर लेती है।

रहीम ने ठीक ही कहा है किः—

रहिमन दिलहि लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बश करिवो कहा, नारायण बश होय॥

अधीनता और गरीबी को धारण करने वालों पर अनाचित दैव बश आई हुई बिपत्ति भी चीर काल तक नहीं ठहर शक्ति है।

नानक नन्हा होय रहो, जैसे नन्ही दूब।
सविघाँस जरि जात है, दूब खूब की खूब॥

इससे स्पष्ट है कि बनाना करना शीलता का भाव मानव जीवन का भूषण है॥ यों तो सम्प्रदायों और मतों के भेद से प्रणामों का स्वरूप और उनके वाचक शब्दः—भिन्न भिन्न, हैं, परन्तु दूसरे की उत्कर्षता [श्रेष्टता] और अपनी अपकर्षता [आधीनता] का बनाने वाला हस्त और मस्तक आदिका ब्यापार सब प्रकार के प्रमाणों में रहने वाला सामान्य लक्षण है।

नन्हा चिउँटि भवन के, जहाँ तहाँ रस लेत।
सहजै कुञ्जर हाति के, शिर पर डारे खेह॥
सबते लघुता भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया को चंद्रमा, शीस नवावै सब कोय॥

इन वाणीं से संग्रह

सच्चा विरक्त उसी को कहना चाहिये, जो मान के स्थान से दूर रहता है। वह सत्संग में स्थिर रहता है, अपना कोई नया सम्प्रदा नहीं चलाता, नया अखाड़ा नहीं खोलता, अपनी गद्दी नहीं कायम करता, जीविका के लिये दीन होकर किसी की खुसामत नहीं करता, वह लौकिक नहीं होता, उसे वस्त्रालङ्कारक की इच्छा नहीं होती, परान्न में रुचि नहीं होती, स्त्रियों को देखना उसे अच्छा नहीं लगता। सेवा लेना नहीं

चाहता, कोई को हुकुम जनाना नहीं चाहता, । धन्य है नर देह का मिलना, धन्य है साधुओं का सत्संग, धन्य है वे भक्त जो गुरुभक्ति में रंगये । सत्य के समान तप नहीं, सत्य के समान कोई जय नहीं, सत्य से सद्रुप प्राप्त होता है, सत्य से साधक निस्पाप होते हैं । हृदय में गुरु का नित्य ध्यान हो, मुख से गुरु का नाम स्मरण हो, कानों में सदा उनकी ही कथा गूँजती हो, प्रेमानन्द से उनकी ही पूजा हो, नेत्रों में गुरु की ही मूर्ति विराज रही हो, चरणों से उनके ही स्थान की यात्रा हो, रसना में गुरु के तीर्थ का रस हो, भोजन हो तो गुरु के प्रसाद ही हो, साष्टांग दण्डवत गुरु के ही प्रति हो, आलिङ्गन हो अलहाद से उनके ही भक्तों का एक आधापल भी उनकी सेवा के बिना ब्यर्थ न जासके, सब धर्मों में येही श्रेष्ठ धर्म है । सत्य से शतसंग-सतशात्र का अध्ययन, गुरु कृपा से और चैतन्य देव की भेंट हो यही उनका क्रम है, जिससे यह जीव संसार के कोलाहाल से मुक्त हो जाय । प्रारब्ध बस जिस जाति में हम पैदा हुए उसी जाती में रह कर भी उसी जाति के प्रमाद से विवेक शून्य न बनो प्रेम से गुरु गुरु नाम का प्रेम से गायन करो तो संसार सागर से तर जाओ इतना ही अपना करब्य है। सद्‌गुरु की सेवा पूजा ही नर जन्म का सुफल है । पापों से छूटने के लक्षण ये हैं पाखण्डियों से अलग रहना । असत्य का त्याग करना अहंकारी मनुष्यों से दूर रहना । सद्‌गुरु, सत्संगत, सत्साधनों में, शुभ कार्य में, आगे बढ़ना ।

(सन्तवाणि)

केवल कल्याण के ही मार्ग पर चलना। अधर्म, अनीति, और पाप कर्मों को छोडने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना। किये हुए पापों को नष्ट करने के लिये योग्य प्रायश्चित्त करना, और नालायक के साथ नालायकी न करना। जो मुमुक्षु यह चाहता है कि सद्गुरु हर समय मेरे साथ रहें, उसे सत्य का ही सेवन करना चाहिये। सदगुरु कहते हैं कि मै केवल सत्य प्रेमियों के साथ ही रहता हूँ मनुष्य जन्म बार बार नहीं मिलेगी, इस लिये इस को पाकर सदगुरु का भजन कर मुक्ति का सौदा करलो। सर्व जीवों के साथ दयालुता का वर्ताव करो, चाहे वे किसी भी दसा या खानी के क्यों न हों, क्रोध की अवस्था में भी दया पूर्ण शब्दों का ही प्रयोग करो। लोभ मोह महाँ पाप की खान है, अधरमी झूठ लोभ का मन्त्री है, तृष्णा स्त्री है, जो उसे अन्धकार बना देती है, लोभ से मनुष्य को न तो उन्नति अवन्नति का पतारहता है, न काल का भय। जैसे माता अपने बच्चों को जतन से रखती है जिसमें कहीं ठेस लागने तक न पावे, इस प्रकार भक्ति को भी जतन से छिपाकर रखना चाहिये। पिता के करजा को चुकाने वाला पुत्र होता है, परन्तु भव बन्धनों सें छुड़ाने वाला केवल सदगुरु मात्र है, कि तो अपने बोध विवेक वल से है और उपाय नहीं। सदगुरु संसार के सर्व जीवों को ज्ञान आश्रय देते हैं, इसी कारण सदगुरू सबस बड़े हैं।

[पंच परीक्षा ये हैं]

पांच विषय, पांच ज्ञानन्द्रिय, पांच काम, क्रोध, लोभ, मोह भय। इसको विवेक करता रहे। जिसमें ये सब अपने को खींचने न पावें, हमको व्यवहार, भोग दुर्गुणों में ले जाकर न बोरें इसकी निगरानी रखना, यही पञ्च शोधन हैं, जैसे कहा जाता है कि यह शोधन करके लिया गया है। प्रेम साहेब की शिक्षा मनन करना अपने अपने आचरण धारणा में लगाने का प्रयत्न चेष्टा करना। जैसे स्वप्न का हानि लाभ उठते-जागते ही सब मिथ्या हो जाता है, उसी प्रकार स्वार्थ का चाहे जितने लाभ हो जाये चाहे हानि हो सब वैसा ही स्वप्नवत समझना। प्रत्यक्ष हमारे आँख के सामने ही गुजर रहा है, बीते हुए दिन के हानी लाभमें हम कहाँ उतना चिंतित होते हैं, जैसे की आजके सन्मुख व्यवहार में व्यस्त हैं चार छ साल प्रथम के लाभ में हम कहाँ फूलते प्रमत्त होते हैं। इत्यादि समझ कर प्रारब्ध निर्वाहके साथ साथ मुख्य धन सबसे श्रेष्ठ दर्जा अलभ्य लाभ परमार्थ के पुरुषार्थ में ही विशेष लक्ष लगाना हमारा मुख्य कर्तव्य है। हम आस्तिक हैं नास्तिक नहीं। हम परमार्थ वादी हैं, स्वार्थ वादी नहीं। हम जन्म जन्मान्तर के लिये सुख शांति के संग्रह करता हैं। पश्चात्य वत देह भोग मात्रके लोलुप नहीं। इत्यादि विवेक करके भक्ति, ज्ञान वैराग्य सहित पठन पाठन का काम कमी होने न पावे। प्रश्न—परमार्थ चिंतन का ज्ञान भक्ति, वैराग्यका प्रयो-

जन। इसके उत्तर में जड़ तत्वों में ज्ञान धर्म नहीं इसमें सन्देह नहीं, अनुमान नहीं, कल्पना नहीं, कि जड़ यत्वों से उसका द्रष्टा पृथक है, स्वतः है, स्वतन्त्र है। सत्य है, जानिव कला है, वह देहों में मैं मैं करता हुवा स्वयं प्रत्यक्ष सत्य रूप से आप ही उपस्थित है ही, जो दसो इन्द्रियों के विषयों को हानि लाभ समझ कर त्याग और ग्रहण करता, जो हृदय के भी भीतर मन प्रवाहों को देख समझ बूझ कर उन्हें भी दबा देता और किसी स्मरणों को बलवान बनाता इससे उसकी सत्ता सदा एकरस अखण्य, अक्षय सत्यरूप ही स्वयं प्रत्यक्ष विवेक के सन्मुख है। स्वतः प्रकाश एकरस निसिदिन, निराधार नहिं लेश। सन्मुख नृत्य बासना कारी, रीझि खीझि रहि शेष। जब एकरस विवेक से मैं चेतन जीव नित्य हूँ यह प्रत्यक्ष होगया तो उसका कर-तब्य क्या है? अपने से पृथक विरोधी गुण धर्मो के मेल में मानो अग्नि ने जल को खौला दिया हो या सूर्य को बलवान बादल ढक लिया हो। इस प्रकार जड़ पञ्च यिषयों की तृष्णा भोगों से जब शांति ही नहीं होती तो वह दवा ठीक नहीं कुपथ्य है। जिस करके कामना रोग वृद्धि पावैं, उस प्रकार उसे उलट कर तिससे वैराग्य भाव से छुटकारा पाया जा सकता है। जैसे सिगरेट, बीड़ी पी पीकर छुट्टी नहीं मिलती, किन्तु बिना परि-त्याग ही से कृत कामना नष्ट होकर तिससे बिमुक्ति मिल जाती है। यही है वैराग्य का प्रयोजन। ज्ञान का प्रयोजन है, ठीक रूप से निःसन्देहात्मक टिक रहने की भूमिका का परिचय

प्राप्त होना। सो निज रूपही चेतन भूमिका एक ऐसी दृष्ट स्थिति है, जो लोक-विश्व संघर्ष से अतीत है परे है शांत है निर्दोष है। इसी से भक्ति का प्रयोजन है, निर्णय से सत्य पद में शांत होने की सहायता लेने के लिये सद्गुरु संत में मन कर्म वाणी द्वारा अर्पित निछावर हो जाना, जिससे किंचित भेद न रह जाय। इनमें शिथिलता न आने पावे, धनके लोभी, नारी विषय कामी, मोह विषय बालक के समान ज्ञान, भक्ति, वैराग्य में प्रविन बलवान होकर जुटती ही जावे, वह युक्ति विवेक कैसे हो? उसके उत्तरमें बड़े छोटे ग्रंथ निर्माण हैं, मनन करना उतना ही जरूरी है, जितना नित्य भोजन, कचहरी, दरबार की नौकरी न्याय देनी, लेनी, शादी विवाह, द्रब्य कामना, इत्यादि। परीक्षा करते रहना कि नर देह ही में दुखों से छुटकारा पा सकता था, तिसमें बहुत समय प्रपञ्च में चला गया शेष समय भी प्रपञ्च में जावेगा तो मुझे अकेले ही मोह की नदी में अपार असह्य भयंकर दुख दर्द मानसिक कष्ट सहन करना पड़ेगा। मैं चूकते जा रहा हूँ, क्या विवेक कम है? क्या सहायकों में प्रेम नहीं है? क्या रहस्य धारणावों में पीछे पड़े हुँ? ये सब बातें नहीं हैं तो मैं दिनों दिन उलझनों में आसक्तियों में ब्यर्थ कल्पनाओं में क्यों शोकित हूँ। याते तीनों बातें सिद्ध हैं। तीनों के दोषों को शून्य करने का प्रयत्न सहायक संत गुरु से दीनता श्रद्धा प्रेम और उनके कथित बातों का निज विवेक बलवान बनाते रहना ही मेरा जरूरीसे जरूरी अर्जन्टी काम है। इसमें मानसिक शोक उलझनों से

छुटकारा मिलेगा। और बाहरी भार बोझ से हल्काहो जाऊँगा। इस जीवन के साथ ही गुरुदेव के प्रसन्नता और अपनी स्थिरता प्राप्त होगी बस इसी लिये तो दुनियाँ दौड़ती है कि मेरे सब स्व-वश हो जायँ, मैं इच्छा पूर्ति सहज ही नाश होकर पारख बोध ज्ञान भक्ति वैराग्य के द्वारा प्रत्यक्ष हो गई।

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बे परवाह।
तिनको कछु न चाहिये, सब साहन पति साह॥
इच्छा युद्धि निशिदिन करौ, और से बोलौ नाहिं।
नाशि करौ यहि शत्रु को, और शत्रु कोई नाहिं॥
जब लगि सदगुरु नहिं मिलैं, शुद्ध हृदय नहिं होय।
तब लगि दुख छूटै नहीं, कोटि करे जो कोय॥

जब तक इसे बारम्बार मनन अध्ययन चिंतन नहीं किया जायगा तब तक इसका रस नहीं मिल सकता, इस प्रसंग का रस आस्वादन हेतु बारम्बार मनन आचरण करो।

[प्रेमी प्रेम साहेब सद्गुरु विशाल देव के आश्रित आज्ञा साहेब]

(अथ स्वरूप स्थिति प्रसंग)

जहाँ दूर दूर ग्राम है परम एकान्त स्थल है। जहाँ स्वच्छन्दित वायू आ रही है अविवेकी जनोंकी जहाँ उपाधि नहीं है, ऐसे एकान्त स्थल में जहाँ अनेक रसानादि बृक्ष युत सघन छाया है, ऐसे निरूपाधि स्थल निर्बन्धित बाग में जीवन मुक्त श्री सद्गुरु विशाल देव नामक महात्मा सहजासन से बिराजित हैं और उनके सन्मुख अनेक मुमुक्षू यथार्थ संत सज्जन बैठे हुये

हैं, मानों चन्द्रमा को अनेक चकोर जैसे देख रहे हों। उस मण्डल में आपके सम्बन्ध से बहुत मुमुक्षु यथार्थ वस्तु को समझ कर अपने पद को प्राप्त कर लिये और अनेक प्राप्त कर रहे हैं, कोई को धर्म भक्ती का विशेष प्रेम लग रहा है, आपकी महिमा उपदेश का प्रभाव उस मण्डल के सभी मनुष्यों पर कुछ न कुछ पड़ा ही हुवा है, जो हठी शठी पक्ष पाती हैं वे भी आपकी निर्मानता: त्याग तथा शाँति का यथेष्ट बखान ही करते हैं, देश देशान्तर के मुमुक्षु जन आपके दर्शन से स्पर्शन से बहुत कृतार्थ हुये हो रहे हैं, मुझको जो कुछ सदबोध का जोस पुष्टता भरा हुवा है, "सो सब आपकी ही कृपा कटाक्ष का फल है" "ऐसे स्वरूपनिष्ठ सद्गुरु देव विशाल साहेब की महिमा सुनकर : एक शुद्ध अन्तःकर्ण वाला नया मुमुक्षु आकर स्वरूप ज्ञान के होने और पुष्ट होने के लिये प्रश्न करता भया। तथा गुरु उत्तर देते भये। वह वार्ता इस प्रकार से हुआ मुमुक्षु बोला— हे बन्दी मोचन ? मैं असली सत्य जो अपना स्वरूप है उसको समझना चाहता हूँ, श्री सद्गुरु संत ने सत्योपदेश का यथेष्ठ ग्रहण करने वाला अधिकारी समझकर कहा। भाई तू सत्य स्वरूप को किस प्रकार समझना चाहता है॥ मुमुक्षु बोला—हे दीनबन्धो बन्दीछोर जिस प्रकार अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो। उसी प्रकार कराइये, सन्तों से और सद्ग्रन्थों के पढ़ने से जानता हूँ कि अपना सदस्वरूप भूत भौतिक के समान कोई मोटी वस्तु नहीं है, जो बाहिर इन्द्रियों द्वारा जानी जाय

और वह सुक्ष्म बुद्धि आदिक बृत्तियों को भी जानता है। इस लिये जिस प्रकार समझ में आ जाय, उसी प्रकार मुझे समझाइये। संत ? आप शुद्ध अंतःकर्ण वाला चतुर दीखता है, वह अपना स्वरूप चित्त मनः बुद्धि-अंतःकर्ण के सुक्ष्म इन्द्रियाँ तथा अंतः करणादि स्थूल इन्द्रियाँ जो कछु भास होता है, उससे विलक्षण तू है, बुद्धि आदि से पृथक होते हुये भी बुद्धी द्वारा विचार करके अपना आप स्परूप को स्वरूप वल से समझ सकते हैं। अपना बोध स्वरूप है तो भी देहोपाधि युक्त स्वयं गल माला भूले न्यायवत बोध की जरूरता है, तू मेरे बचनों में अपनी चित्त बृत्ति जोड़ते जा, जो जो शब्द कहे जायँ समझायें जाँय उनके भाव युक्त होता जा, इस प्रकार करने से तुझे सत्य स्वरूप का बोध हो जायगा, तू जो जो देख रहा समझ रहा है, वह सब पसारा तीन और पांच का है, वे दृश्य जड़ तीन गुणों औ पांच विषय तुझे क्या छोड़ेंगे पड़ेंगे। पृथ्वी, जल, तेज, चंचल वायु, सामान्य तिनके जो गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पांच विषय है, तिनके रज, तम, सत्वात्मक ये त्रिधा क्या है ? तथा चिज्जड ग्रन्थी में स्थूल, सुक्ष्म, कारण मुख्य तीन दहों में संमृत संसार का विस्तार है पञ्चकोश, पञ्चदेह सब कारण सानन्दी के अधार सिद्ध है। प्रथम अपने शरीर का विचार कर, फिर सब शरीर धारियों का समझने में आ जायगा। सब इन्द्रियों का ब्यवहार पंच विषयों करके ही होता है। मुख्य चार तत्वों से ही पंच बिषय उत्पन्न हुई ये जिस तत्व की जो इन्द्री है। वह उन्हीं

तत्व को ही ग्रहण करती है। १ नेत्र अग्नि तत्व के सत्वांश से उत्पन्न हुई, वह अग्नि के रूप गुण को ही ग्रहण करती है। २ कर्ण आकाश तत्व रूप सामान्य वायू का भाग होने से वायु के शब्द विषय को ही ग्रहण करता है। 'तथा एक वायु में दो भेद हैं सामान्य और विशेष। ३ चंचल वायु तत्व युक्त त्वचा के गुण स्पर्श को ही त्वचा ग्रहण करती है। ४ जल के सत्वांश जिह्वा अपने जल के गुण रस को ही ग्रहण करती है। पृथ्वी सत्वांश से नाशिका जन्य है, वह अपने पृथ्वी गन्ध गुण को ही ग्रहण करती है। इस प्रकार पंच ज्ञान इन्द्रियों द्वारे पंच विषयों को ग्रहण जीव करता है और मुख्य चार तत्व के ही पञ्च कर्म-इन्द्रियाँ है। अन्य तत्व की इन्द्रियाँ अन्य तत्व का ज्ञान नहीं कर शक्ती, इन इससे क्या सिद्धि हुआ कि पञ्च विषयन की पञ्च ज्ञानइन्द्रि तथा पञ्च कर्म इन्द्रियाँ, तया पचीस प्रकृति और पञ्च प्राण ये सब पृथ्वी, जल, अग्नि, चंचल वायु, सामान्य। विशेष वायु, ऐसे पांच या मुख्य चार तत्व के भाग हैं, जगत में चार तत्व युक्त पञ्च विषय ही है, जैसे तेरी इन्द्रियाँ ज्ञान क्रिया वाली हैं, इसी तरह सब देह धारीयों की जान, तत्व मुख्य चार हैं उन्हीं चार तत्व युक्त पंच विषयों का ही पसारा जगत है और कछु नहीं। अब इन पंच विषय से सब सम्बन्ध मानन्दी द्वारे ही जीव ग्रहण करता है, देह सम्बन्ध में निजी स्वरूप को। सब जीव अनादि से भूले हुये हैं वही भूल से भ्रम-भ्रम से सुख मानन्दी से इन्द्रियाँ द्वारे क्रिया होती है, पुनः

क्रिया से सूक्ष्म संस्कार दृढ़ होती है, संस्कार सूक्ष्म बीज से स्थूल से सूक्ष्म तत्व संस्कार ये प्रवाह अनादि से चला आ रहा है, इन सबका कारण निज स्वरूप को भूलने से ; बिजाती तत्वों के विषयों का अहं मम दृढ़ करके सुख मानन्दी ही है, वह ही संसृत का कारण रूप है, एक ही स्त्री में पिता स्त्री करके मानता है उसी स्त्रीमें पुत्र माता भाव करके मानता है, भाई बहिन भावना मानता है, तथा अन्य अन्य जो जैसा मान रक्खा है, उसे वैसा ही बन्धन औ निर्बंन्धता होती है, वर्ण आश्रम, घर बार, नाम, कुल इत्यादि मानन्दी के ऊपर ही सर्ब ब्यवहार चलता आ रहा है सो मानन्दी इन्द्रियों के सन्बन्ध ही में होती है, जीव और देह और देह सम्बन्धी तत्व पदार्थों का लोह अग्नि वत साक्षात संयोग सम्बन्ध नहीं, क्योंकि अतिथि दूसरे के घर में बैठा हुवा भी दूसरे के घर आदि के अहं मानन्दी रहित होने से घरादि के हानि लाभ अतिथि को नहीं होता। तथा अहं मम मानने वाला अपने आप घर बार से दूर सहस्त्रों कोश भी हैं तो भी घर स्त्री आदिके हानि सुनतेही दुखी तथा लाभ सुन कर सुखी होता है, इससे सिद्धि है कि मानन्दी द्वारा ही बाहर के पदार्थों से जीव से सम्बन्ध है। स्वप्न में बाहर के वस्तुओं से साक्षात सम्बन्ध नहीं है तो भी जागृत के दृढ़ मानन्दी स्वप्न में जीव को हानि लाभ सुख दुख का अनुभव कराती है। तथा सुषुप्ति में मानन्दी कारण बीज रूपमें होने से कोई (पदार्थ) विशेष हानि लाभ जीवको प्रतीति नहीं

होती इससे जीव और और देह का तथा देह सम्बन्धी वस्तुओं की मानन्दी अध्यास मात्र ही सम्बन्ध है। अब तूँ बाहर के चार तत्व साकार तथा तिनके पञ्च विषय बाहर छोड़ दे, और देह भी विजाती समझ कर उससे लक्ष हटा और प्राण भी स्वयं जड़ वायुके भाग उससे भी लक्ष हटा फिर जो जो मन से मनन चित्त से चिन्तिवन बुद्धि से निश्चय अहंकार में अहंकार भास करना छोड़कर सब डाल दे सर्व स्मरण संकल्प को त्याग करके आगे देख तेरे सामने अब क्या रहा ? मुमुक्षु बोला हे दीन बन्धो देह प्राण विषय सर्व विकल्प हटा देने से क्या रहेगा। वहाँ तो कुछ भी नहीं रह जायगा। संत—तेरा कहना ठीक है चार तत्त्व रूप पाँच भोग के सब कार्यों में से कोई भी न रहने में उसका स्मरण हटा देने से कुछ नहीं है। ऐसा जानने में तेरे आया तूने बाहर के पंच विषयों को दृढ़ जिस प्रकार भाव रूप मान रक्खा था। उस भाव मानन्दी को हटा देने से अभाव रूप तुझे शुन्य भासा, वही शुन्य रूप तेरा मुख्य बंधन रूप झाँई है, इसी शुन्य वृत्यानन्द में बड़े बड़े ब्यास, वशिष्ट, जनकादि ऋषि मुनि बड़े बड़े विद्वान गोते खा गये हैं, अब भी खा रहे हैं। इसी शुन्य वृत्यानन्द की स्थिति लेकर ही आकाश वत ब्रह्ममें पूर्णानन्द घन है ऐसा माना गया है। खँ शुन्य भास आधारित ब्रह्मात्मा होने से ही गुरु ने काल्पनिक भांति ही संसृत का कारण ब्रह्म स्थिति को कहा है यद्यपि कहीं वेदांती महात्मा लोग शुन्य का भी साक्षी बनते है।

परन्तु यथार्थ पारख बोध बिना साक्षी पर ठहर नहीं सकते। फिर अन्वय वेतिरेक, भाग, त्याग, लक्षण कर के तत्व मसि आकाश के समान पूर्णानन्द घन एक सब में ओत प्रोत ब्रह्म है। बस ऐसा निश्चय करते ही साक्षी पद से पतित होते हैं। क्योंकि साक्षी परिक्षक जान ज्ञाता चेतन तीन काल में साक्ष्य दृश्य जड़ नहीं हो सक्ता है। न उसका स्वरूप द्रष्टा में दृष्य पूर्ण हो सकता है, अपना स्वरूप ही सर्वत्र पूर्ण होनेसे फिर जानेगा किसको ? इसी लिये जीवों को पञ्च विषयों में सुख हन्ता तथा आकाशके समान पूर्णानंद एक ब्रह्म आत्मा सर्व रूप मानना ही आद्य माया है ? वही संसृत का कारण है। सुन्दरदास ने कहा भी है।

दो०—एक ब्रह्म कारण जगत, कारज है बहु भाति।
चतुर खानि विस्तार यह, लख चौरासी जाति ॥

अच्छा अब उस आद्य माया शुन्य को भी हटाकर जो शेष रहता है वह स्वयं प्रकाशी बुद्धि के भाव अभाव का साक्षी परम पद पारख रूप तूँ सत्य स्वरूप वस्तुतः है तो सही। कुछ है, कुछ नहीं है, ऐसा भाव अभाव रूप जगत ब्रह्म को किसने जाना तूँही या कोई और। मुमुक्षु बोलेः—मैं ही संत—तू फिर कौन हैः—मुमुक्षुः-अभीतक तो मेरे सामने भाव रूप जगत तीसको अभाव रूप शून्य वृत्यानन्द ब्रह्म भास को ही स्वरूप निश्चय करता भया, परन्तु अपने जानने वाले को जानने में या दृश्य वस्तु को पृथक किया इस लिए मैं सर्व को पृथक कर्त्ता जानने वाला पृथक हूँ, ऐसा जानते हुए भी वस्तुतः मैं क्या हूँ

ऐसा संसय रहित बोध नहीं हुआ ॥ सन्त—कहे ठीक है तू बहुत चतुर दिखता है:-अपरोक्ष बोध तुझे अभी हो जायगा। अच्छा बता तो सही तू किस द्वारे पंच विषय भाव रूप जगत शुन्य ब्रह्म की मानंन्दी का ग्रहण किया था। फिर उसका किस द्वारे त्याग किया। मुमुक्षु बोला—हे दया निधे? पूर्व में ठीक ठीक बोध न होने से जो मुझे ज्ञानेन्द्रियों द्वारे तथा अन्तःकर्ण चतुष्टय से आप उसी को मैं अहं ममता मान लिया करता था और दुखी हो तथा, अब आप जैसे सत्पुरुष के परखाने से पंच विषय रूप जगत, तथा शुन्य ब्रह्मानन्दी दोनों को परख कर डाल दिया हूँ। संत—भास को भूल में ग्रहण करने वाला तथाः यथार्थ पारख होने से भास को डार देने वाला, अब तूँ शुद्ध स्वरूप वस्तुतः स्वतः चैतन्य मात्र रहा तो सही। जो तूँ वस्तुतः चैतन्य पारख न होता तो मेरे परखाने से कैसे धोखे को परख सकता था। तूही तो सर्व का पारख करता है, फिर भी अपने को पारख स्वरूप बोध में नहीं लाता है, एही तेरी भूल है उस को हटाते हुए पंच विषय के सुख मानन्दी तथा ब्रह्म शुन्य की निश्चय वृत्ति रूप बुद्धि से दृष्टि उलटते हुये अपने से आप को जान। जो तूँ कहे बुद्धि के बिना उसको मैं समझ नहीं सकता तो ठीक है, बुद्धि ही से सब वस्तुतों का निश्चय होता है, परन्तु बुद्धि रूप निश्चय वृत्ति है, जो तू सब वस्तुवों को जान कर निश्चय न करै तो क्या बुद्धि स्वयं निश्चय कर सकती है नहीं? ब्राह्य पंच विषय खानी बानी वृत्ति भास को जानकर

निश्चय करने वाला सो तुहीं है तो फिर मैं सर्व का निश्चय करता चैतन्य हूँ ऐसा बुद्धि को हटा कर नित्य प्राप्त निराधार स्वयं स्थिति करलेनी चाहिये, देह बुद्धि दृष्य के संयोग से द्रष्टा को स्वतः अपने आपको बोध होता है" जैसे कोई मनुष्य कोई प्रिय वस्तु लेने के लिये दौड़ता जा रहा है, उसको उस समय प्रिय वस्तु काही भान है-अपने को भान भूला स है, जल्दी से दौड़ने में आगे कोई चीज का ठोकर यदि लग गया तो शीघ्र लाने वाली वस्तु को भूल कर अपने का भान अपने को हो जाता है, और कहता है कि अरे मेरे को ठोकर लग गया, जैसे उसे अपने को भान हुआ तैसे शरीर संयोग में ही स्वयं जीव अपने को भूला हुआ सामने दृष्य बिजाति तत्वों के पंच विषयों में सुख मानकर चंचल रहता है और पंच बिषय पिंड ब्रह्माण्ड में सुखका भान रखता है, फिर चंचलता में अनेक आधि ब्याधि उपाधि रूप दुख बृत्ति के ठोकर लगने से स्वयं जीव सब के तरफ से उलट कर अपने आप का बोध होता है। भास, अध्यास का निश्चय रूप बुद्धि को हटाकर स्वयं निश्चय करता है, शेष है, स्वयं प्रकाश है। ऐसी निराधार स्वरूप को समझने के लिये बुद्धि बृत्ति भास को लेने की जरूरत नहीं किन्तु उससे हटकर जो उसका परिक्षक है, वह मैं स्वयं प्रकाश सदरूप हूँ, ऐसा बुद्धि के ही आधार से बुद्धि से न्यारा होते हुये भी स्वयं निराधार स्थित स्वयं रूप रहना चाहिये, मुमुक्षु को शब्द के साथ ठीक ठीक चलता हुआ बुद्धि के भाव

को हटाता हुआ: स्वयं पद को प्राप्त हुवा देख कर सन्त बोले, कह तुझे निज सद्रूप की पहिचान हो गई ॥

मुमुक्षु:—हाथ जोड़ कर बोला : धन्य है धन्य है आप गुरुदेव को, आप की कृपा से मैं कृतार्थ हुवा ! मेरे अनादि तम रूप अज्ञान को अपने सद ज्ञान रूप सूर्य्योदय करके नाश कर दिये हो । अहो मैं स्वयं चेतन बोध स्वरूप नित्य प्राप्त होते हुये भी कह रहा था कि मैं अपने को नहीं जानता हूँ, यह कैसी भूल है, तिल ओट पहाड़ छिपा हुआ था, जो मैं देह युक्त सर्व पदार्थों को जानता हुवा सबसे पृथक ज्ञान मात्र शेष रहते हुये अज्ञान बस अपने को नहीं जानता था, अब मुझे मालुम हुवा कि बड़ी सहज बात है, जो एकरस है अपने आप है, स्वयं प्रकाश है नित्य प्राप्ति है वही मैं परम पारख बोध रूप चैतन्य हूँ और मेरा बिजाति तत्वों के पंच विषयों में अहं मम भाव रूप सुखाध्यास स्वरूप ही ऊपर परदा था, जब बाहर जगत ब्रह्म भास की खुदी ममता छूटी तो खुद खुदा है प्रत्यक्ष जड़ तत्व भास तथा परोक्ष कल्पित बानी जाल दोनों से परे अपरोक्ष मैं हूँ । अहो ! बन्दी छोर की कृपा से मुझे कैसा नित्य तृप्त पद को बोध हुवा, जिसमें हर्ष शोक, दुख सुख रूप जगत ब्रह्म जनम मरणादि कुछ नहीं, जो सब द्वन्द उपाधि से रहित परम श्रेयस चैतन्य मात्र मैं हूँ । अब मैं निरन्तर बुद्धि भास के निश्चय रूप बृत्ति को उलट कर अपना ही भाव दृढ़ रक्खूँगा । कभी भी तुच्छ खानी बानी रूप कंटक में नहीं भटकूँगा, हे ज्ञान प्रदाता सद्गुरु मुझे ऐसा

ही निरंतर एकरस बृत्ति बनी रहने की कृपा करिये। संत हे सुबुद्धे मैं तुझ से बहुत सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि तू अपना उद्धार करने की बान्छा करने वाला मनुष्य देह में अपने सद्रूप को सत्संग से यथेस्ट जाना है। इस लिये तू देह बन्धन से छूटने वाला बड़ भागी है। कृत्य कृत्य है अब मैं बोध एकरस रहने की थोड़ी युक्ती कहता हूँ, उसको सावधानता से सुन देख, इस समय (कहता हूँ) इस बोध से तेरे भ्रम सब दूर हो गये, परन्तु पुनः भूल स्थान यह देह तेरे पूर्व भूल जन्य कर्माध्यासों से चार तत्वों का प्रत्यक्ष फल देने के लिये खड़ी है, जैसे मदिरा पिया हुआ भूल बस अपने गोड़ में स्वयं कटारी मार लेता है, फिर नशा उतरने के बाद घाव का दर्द दुख उसे ही सहन करना पड़ता है। यदि पीछे से वो नशे को दुख जान कर दृढ़-कर ले मैं अब आगे नशा न पीऊँगा। पुनः नशे में उनमत्त होकर अपने गोड़ में कुठार न मारूँगा, ऐसाही यदि वो करे तो आगे के दुख से वो छूट जायगा, परन्तु प्रथम भूल के दुख को भोगने ही पड़ेंगे तैसे ही देह संयोग में सुखाध्यास रूप मदिरा पिया हुवा उन्मत्त नर जीव पाप पुण्य रचित प्रारब्ध कर्म भोगने को विवश हैं। साथ ही स्वबोध शांत पाकर मुक्त हो जाता है॥

सर्बथा दुख विहीन होने की सरल समुझाव-प्रयुक्ति वर्णन

जब बिशेष दुख आ जाता है तब उसी को निवृत्ति जीव

करना चाहता है। सबसे विशेष दुख कौन है? इसका विचार करो। स्त्री मर जाने, पुत्र-धन या मान अथवा राज्य किसी भी प्राप्ति सुखों का बिछोह हो जाने या उनका न मिलने अथवा विरक्ति या पूज्य दशा में अपने शिष्य-शाखा अनुयायी वर्गों का पलट जाने या अधिक-अधिक शिक्षा प्रचार न होने या देह रोगी होने इन सब दुखों को अल्प ही जानना चाहिये। इन सब दुखों की जो जड़ है सोंत है—स्थान या मकान है, वह ही महान दुख है। जिस हेतु से एक बार बल्कि अनन्तों बार मृत्यु रूप फाँसी में लटकना पड़ता है तथा बर्छी शैय्या पर लेटाये जाने के समान आपत्ति स्थान महान जेल रूप देह धारण करना पड़ता है। पुनः जिस हेतु से एक-दो पचास सौ हजार लाखों बार नहीं बल्कि अगणित समय तक असह रोगों, बिछोहों मन प्रतिकूलों और मानसिक चिंताओं में पेरे जाना पड़ता है, वह हेतु ही महान दुख है, काले सर्प से भी भयानक है। वह शत्रु विष और भयानक सब संकटों से भी बढ़कर है, उसका नाम तुम सुन लो—

साखी—भोग क्रिया आसक्ति है, सुख निश्चय अध्यास।
आदत औ अज्ञान लखि, देते जीवहिं त्रास॥

सारांश—इन्द्रिय भोगों को पुरुषार्थ, विषयासक्ति, जगत में सुख निश्चयता, अध्यास, संस्कार तथा आदत और स्वरूप का अज्ञान, बस इन्हीं से जीवों का बारम्बार जन्म-मरण रहटा चल रहा है। इन सबों का मूल स्वरूप का अज्ञान है और सब

उसके साधक हैं। वह अज्ञान भी बिपरीत क्रियाओं में बल देता है, आदत-आसक्ति आदि इसी अज्ञान से ही पुष्ट होते रहते हैं। अज्ञानी मनुष्य पूर्व बात न जान कर अपना सुख अन्य में कल्पित कर स्त्री-पुत्र, दास-दासी, समीपी वर्गों का दीन-दुखी आश्रयी सुख देखकर तिसके ऊपर मोह करके तिसके दुख से दुखी होता और तिनके दुख निवृत्ति के लिये अपने को हार जाता है तिनको एकरस रख के आप सुख की कल्पना करता है, सो अनन्त काल से आज तक मोह बश दुख बढ़ताही गया बल्कि तिन्हों के साथ ही अपने अबिनाशी जीवका अनन्त काल की आसक्ति अज्ञान जनित दुख-हीनता मिटाने की तनिक भी होश नहीं करता, यह ही महान अज्ञान है। अतः समझ-दार अपने और अन्य के मायिक, दैहिक, कौटुम्बिक, सामा-जिक किसी अल्प दुखों से दुखी न होकर सर्ब दुख हेतु महान दुख इस स्वरूप को न जानना रूप अज्ञान और अज्ञान जनित समग्र प्रपंच रसिक रूप काले सर्प से भाग कर जन्म-मरण सर्प दंशन से अपने को बचाकर अचल स्थिति कर लेते हैं। साथ ही उनके मार्ग को जो कोई भी अवलम्बन कर लेते हैं उन्हें भी अक्षय विश्राम धाम मिल जाता है।

गुरु शिष्य सम्वाद प्रश्नोत्तर निर्णय

मन चंचल सन्मुख ह्वै धावै। काम क्रोध मदमोह उपावै ॥
मनोवासना जब नहिं आवत। तब जिव तृप्त शांत ठहरावत ॥
मन है कवन कवन मम रूपा। सो कृपालु कहिये ममभूपा ॥

सुनत बचन गुरु बोधक बर्षे। वचनामृत सुनि जनमन हर्षे ॥

साखी—मन का ज्ञाता जीव है, मान न मान स्वतंत्र।
जहाँ न काहु कि चले, वै सबहीं परतंत्र ॥
द्रष्टा दृश्य न ह्वै सकै, लहि मानन्दी बोझ।
लदति रहै उतरति सोई, ह्वै मानन्दी सोझ ॥
भास मात्र कलिपत सोई, घड़ी कूक समचाल।
घटति घटाये जात बढ़ि, जस पुरुषारथ पाल ॥
काम क्रोध औ लोभ तस, सुखहि मानि गढ़ि लेय।
सब दुख बरबस ताहि में, गहत तजत नहिं तेय ॥
पंच विषय जड़ छोड़ि के, चेतन को अलगाय।
मानना अध्यास आसक्ति जो, देहबीज ये आय ॥

(प्रमाण बिजक)

मन गजेन्द्र मानै नहीं, चलै सुरति के साथ।
महावत बिचारा क्या करै, जब अंकुश नाहीं हाथ ॥
तीन लोक चोरी भई, सबका सर्वस लीन्ह।
बिना मूड़ का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥
तीन लोक टीड़ी भया, उड़ा जो मन के साथ।
हरिजन हरिजाने बिना, परे काल के हाथ ॥

(प्रमाण निर्मल सत्य ज्ञान प्रभाकर)

निरन्तरमनोमयसेसृष्टिरची है। निरन्तरमेंदुनियाँकिफोटूखिची है॥
निज स्वरूप के बाद जहाँ लो सुनै गुनै देखै मानै।
जोकुछ निश्चयकिया हृदयमें,विषयव्यवस्था अनुमानै॥

॥ प्रमाण पचग्रन्थी का ॥

कल्पित याको ब्रह्म भो, इच्छा माया भास।
मन मानै मनतव्यता, चौरासी कियो वास ॥

चौ०-क्षमादया सतधीर बिचारा। मानुष लक्षणसहित निधीरा॥

दृष्टान्त—किसी गाँवमें दो सगे भाई रहते थे, उनमें से बड़ा बेचारा साधारण उर्दू, थोड़ी अंग्रेजी और साधारणतः मात्र भाषा जानता था, और छोटा भाई कुछ विशेष अंग्रेजी और भाषा भाषी था किन्तु अभिमानी होने से बुद्धि में पूरा बुद्धू था, बड़े भाई की स्त्री नैहर में थी बुलाने के लिये बड़े को छुट्टी नहीं थी। उसे एक अभियोग होनेके कारण न्यायालय में जाना था। अतः बड़ा भाई अपनी ससुराल नहीं जा सकता, इस कारण उसने अपने छोटे भाईसे कहा तुम अमुक तिथि पर जाकर अपनी भावज को बिदा करा लाना, क्यों कि उसी तिथी पर अमुक अभियोग हेतु न्यायालय में जाना है और तुम वहाँ जाकर ठीक तौर से बात चीत करना अर्थात् हाँ के स्थान में हाँ, और नहीं के स्थान पर नहीं! छोटे भाई ने कहा—मैं क्या इतना मूर्ख हूँ कि मुझे हाँ नहीं का भी ज्ञान नहीं? बड़े ने कहा—तुम्हें ज्ञान तो है परन्तु मैं बड़ा हूँ, इसलिये समझाना मेरा धर्म था, इससे समझा दिया। छोटे ने हाँ नहीं को सिलसिले वार लिखा यानी प्रथम हाँ पीछे नहीं और भावज को बिदा कराने चले, ये ज्यों ही उस गांव के धूर सीमा पर पहुचे तो इनके भाई की ससुराल के लोग मिले और इनसे पूछा। कहो तुम्हारे गांव में

कुशल है ? कहा हाँ ? पूछा तुम्हारे भाई जी अच्छे हैं ? कहा नहीं ? पूछा—क्या कुछ बीमार हैं ? कहा हाँ ? पूछा—कुछ औषधी होती है ? कहा नहीं ? पुनः कहा—बहुत बिमार है ? कहा हाँ ? यह सुनकर घबड़ाकर पूछा ? बचने की सम्भावना है या नहीं ? कहा नहीं ? क्या इतने सख्त बीमार है ? कहा हाँ ? पुनः पूछा मौजूद हैं या नहीं ? कहा नहीं, इतना सुनकर घर वाले सबके सब बड़े जोर से रोने लगे—सबका रोना सुन ये भी रोने लगे, अब तो सबको और भी निश्चय हुवा कि इनके भाई नहीं रहे, प्रातःकाल इन्होंने कहा क्या भावजको बिदा नहीं करोगे, उन्होंने कहा दो चार दिन और चूरी बिछुये पहिने है फिर तो हम भेज ही आँयेंगे। ससुराल वालों का यह उत्तर सुन वह घर को लौट आया। जब घर में इनके बड़े भाई आये और पूछा—भावज कोबिदा नहीं करा लाये, तब इन्होंने-भावज तो राड़हो गई, उसे कैसे लिवालाते ? भाईने कहा-हैं, हैं यह क्या कहता है ? हम बने ही हैं वह राँड़ हो गई, छोटे ने उत्तर दिया—क्या तुम कहीं के नाहर हो ? तुम बने ही रहे बुआ राँड़ हो गई, तुम बने ही रहे मौसी राँड़ हो गई, तुम बने ही रहे बहन राँड़ हो गई, तुम बने ही रहे चाची राँड़ हो गई और भावज के लिये तुम राँड़ होने के लिये कैसे रोक सकते हो ? तब तो भाई ने कहा—बताओ वहाँ क्या क्या बातें हुई थीं तब इसने सम्पूर्ण वृत्तांत सच्चा सच्चा कह सुनाया। बड़े भाईने अपनी ससुराल जाकर सबको शांत किया। इस दृष्टांत से यह समझना है कि पुरुष के अछत विपरीत

निश्चय और मानन्दी द्वारा उसकी स्त्री आदि को दुसह दुखः हुवा। मदिरा के नशा में तो स्वयं मनुष्य बेभान होकर मनोगत कामना में करता रहता है ऐसे ही यह जीव नित्य तृप्त ज्ञान स्वरूप अखण्ड होकर भी देंह इन्द्रियों के ममता वश उल्टे निश्चय द्वारा हानि लाभ दुख सुख विषय भोग नाना अनुमान कल्पना स्मरण करके सदा अतृप्ति अनुभव करके दुखी होता रहता है। यदि इसे अपने स्वरूप का ऐसा ज्ञान हो जाय कि मेरा स्वरूप जगत के हानि लाभ, शत्रु, मित्र, रहित अखण्ड नित्य है तो मैं बृथा कल्पना करके शत्रु मित्र में सुख दुख में क्यों आसक्त होऊँ। ऐसे दृढ़ मनन अभ्यास होने से जगत प्रपंच का मनन त्याग हो जाता है।

॥ त्रिकाल विषयों में दुख दर्शन ॥

दृष्टांत—एक ने किसी अनुभवी संत से पूँछा कि आपही को जगत में दुख दीखता है या सब प्राणियों को। यदि जगत दुख रूप है तो सबको दुख मालूम होना चाहिये, सबको दुख के बदले सुख मालूम होता है। संत बोले—तुम सबकी बात छोड़ कर अपने ही ऊपर घटा लो-तुम्हें पाँचो विषय दुख रूप मालूम होते हैं या सुखमय ? मनुष्य-सुखमय। संत-कैसे ? जब जिसकी इच्छा होती है, बस उसी को भोग लेते हैं। इच्छा मिट जाती है, बस सुखी हो जाते हैं। संत—तुम्हारे कहने से इच्छा मिटना ही सुख हुआ न ! मनुष्य-हाँ। महाराज ! संत, अच्छा तुम्हारी कितनी इच्छायें मिट गई हैं। तरह तरह के स्वाद तुम लिये

होंगे, किस्म किस्म के रूप देखे होंगे, ऐसे ही सब अच्छे अच्छे भोगों को तुम भोगे होंगे क्यों कि तुम तो लक्ष्मी निधि हो। अब तो तुम्हें पूर्ण संतोष हो गया होगा। मनुष्य उस क्षण तो इच्छा बुझ जाती है पर अन्य क्षण में फिर वैसे ही। संत भला इतना तो तुमने समझा कि एक क्षण ही इच्छा बुझती है, दूसरे क्षण नहीं। मनुष्य हाँ इतना तो अवश्य है। संत—तुम जानते हो कि विषयों से इच्छा बुझ जाती है इसलिये विषयों की तरफ दौड़ते हो। पर इच्छा हुई कहाँ से? मनुष्य यह हम नहीं जानते। संत–जानकर भी न जानना यही अज्ञान है। जब तुम जिसमें सुख जानोगे तब तुम्हारी इच्छा भी उधर ही चलेगी। जब तुम विषयों में सुख निश्चय किया इसीसे उसके लिये इच्छायें दौड़ रही हैं, दौड़ी हुई इच्छायें विषयों से बुझती नहीं बल्कि बढ़ जाती हैं। मनुष्य बोला कैसे? संत—बोले तुम्हें कोई आदत है या नहीं? मनुष्य—हाँ मिर्चा और खटाई खाने की, संत–जब वे आदती भोग नहीं मिलते तब तो दुख होता ही है, पर जब मिल जाते हैं तब भी संतोष नहीं हो सकता, जब तुम मन माना स्वादिष्ट वस्तु खाते होंगे फ़िर खा के कहाँ रुकते हो? मनुष्य तेज से तेज मिर्चा खटाई खाते हुये अंत में नहीं खाया जाता तब छोड़ देता हूँ। संत—बस जब ग्रहण करने की शक्ति न रह जाय, तब जानो सुख मिल गया क्यों? अरे तू बिचार कर आदि मध्य अंत इच्छा ज्यों की त्यों रही, उसमें इच्छा बुझी

क्या, मात्र शक्ति न चलने पर वृत्ति रुक गई है। पर वह रुकना तो ऐसे ही है, जैसे दोड़ने वाला मनुष्य बौड़र के पीछे दौड़ते दौड़ते गिर जाय बौड़र न मिले पर गिरते हुये में दौड़ने की आशा तो उसकी बनी है। या जैसे कसरती ज्वान ऊठक बैठक करते करते थक गया, रुक गया रुकने से उसकी कसरत की अभ्यास कम नहीं पड़ी बलिक कसरती की अभ्यास दिनो-दिन बढ़ती जाती है। तैसे जीव यद्यपि कहीं चल के विषयों से रुक जाता है. पर इच्छा लत आदत दिनोंदिन पुष्ट हो रही है, जब इच्छा लत पुष्ठ हो रही है तब सुख कहाँ ? मनुष्य हाँ लत इच्छा तो जरूर पुष्ठ हो जाती है। संत—अच्छा लत छोड़कर फिर दुख क्या समझ रक्खा है ? मिर्चा खटाई की जब पहिले आदत नहीं थी, तब उसके विना तुम्हें कुछ कष्ट होता था ? नहीं, और अब अगर एक दिन न मिलै तो एक ग्रास भी न खाया जाय। मनुष्य हाँ अब दुख अवश्य है। संत अब क्या हमेशा भोग दुख रूप हैं, और दुख सबको मालूम भी पड़ता है, जिसको जितना ही दुख मालूम होता है, दुख छूटने अर्थ उतना ही उसको उपाय करना पड़ता है अधिक भोगने वाले अज्ञानी मनुष्य को अधिक दुख होता है। तभी तो वह बहुत बहुत उपाय रचता रहता है, हजारों वर्ष रहने के लिय महल, तरह तरह से स्त्री धन की उपाय रचता ही रहता है। इच्छा का दुख सबको ब्याकुल किये हैं, पर इच्छा छोड़ने में भेद है, समग्र अज्ञानियों की बुद्धि उस पांखी के सामान है,

जो कि सरासर दुख में तड़पते हुये रूप के मोह वश दीपक में जल मरती है। अज्ञानी भी सरासर दुख में तड़फते हुये उधर ही धँसता जा रहा है। और विवेकी पुरुषों की समझ यथार्थ है कि उस दीपक से प्रकाश का काम लेकर उसमें हाथ नहीं डालते केवल निर्वाह मात्र अन्न जल लेकर भोगासक्ति नहीं ग्रहण करते, और भोग इच्छा से पार द्रष्टा स्वरूप की स्थिति के यतन में लगकर जीवन ब्यतीत कर देते हैं। वे धन्य पुरुष हैं, जो नित्य अजरामर अमृत स्वरूप के लिये सब तुच्छ विलास सामग्री छोड़ कर मोटे कपड़ा और फूस फास झाड़ के नीचे अपना जीवन ब्यतीत करते हैं। और इतर प्राणी सब सुख सेज पर भी तृष्णाग्नि में जल बल रहे हैं। इतना सुनकर मनुष्यों को बोध हो गया। मनुष्य संत से हाथ जोड़ कर बोला। चौ०-धन्य संत जन परम पुनीता। महा मोह तम पार अतीता॥ तुम बिन जीव सकल भ्रम सागर। पार न पावत डूबत झागर॥ भोगन से इच्छा बढ़ि जावै। तुम्हरी कृपा जीव लखि पावै॥ शरण शरण अब शरण तुम्हारे। भोग पार कर थीर सदारे॥ क्षणहूँ भर सज्जत संसर्गा। अधमहुँ होत सु पावन वर्गा॥

दो०-बड़ी भाग्य तव दर्श भे, खुले नैन तव संग।
जो अविनाशी अमलपद, रंगब ताहि के रंग॥

ऐसा कह के परमार्थ पद में आरूढ़ हो परम जिज्ञासु बन गया। सावधानी पर—

जो नर नारि होय दोउ त्यागी। तदपि रक्षिये जिमि तृण आगी॥

दृष्टांत—एक बार बैराग्यवानके पास एक चंचलता अबला आई। वह बोली मैंने देह को मिथ्या समझ लिया है। कुल कुटुम्ब की ममता मेरी तो निवृत्ति हो गई। स्त्री पुरुष घट का भी मुझे भान नहीं। आप कृपा करके मुझे दासी बनाकर चरण समीप में रखिये। संत बोले-तेरे समान मेरे में सामर्थ नहीं है। मुझे ज्ञान होते हुए भी सब चीजों का भान है। मेरा मन शैतान मेरे पास है, उसे मैं बहुत यत्न से बाँध रक्खा हूँ। शरीर पर्यंत मुझे उसे बाधना पड़ेगा तेरे गंध मात्र से वह शैतान खाद्य पाता है, इसलिये तू सामर्थ हो तो किसी सामर्थ के पास जा। मैं तुम्हें सदा समीप में रखना कौन कहै, ऐसी बात ही सुनकर यहाँ से हटने को उतावल हो रहा हूँ। स्त्री बोली-क्यों, क्यों ? आप ज्ञानी हैं, सबको बराबर दृष्टि से देखते हैं, फिर इतना क्यों विचार। इतना स्त्री घट से क्यों तिरस्कार। संत बोले, मैं आप से पहले ही कह दिया हूँ। स्त्री बोली, फिर हम लोगों का कैसे सुधार होगा। संत बोले, सच्ची बात तो यही है कि तुम लोगों का सुधार जितना आश्रम घर में रह के होगा उतना बन में नहीं। क्या तुम्हें अपनी इन्द्रियों का भान नहीं है। क्या तुम्हरा घट सकाम कर्म बासनाओं से रचित नहीं है। क्या तुम्हारे घट में मन या इन्द्रियाँ नहीं हैं जो कि ऐसी बातें कर रही हो, कुछ नहीं तुम ममता के अति ही बशी भूत हो। तुम्हें जो कल्याण की इच्छा हो तो शुद्ध ब्रह्मचारिणी होकर आश्रम में रहते हुए पुरुषों से सावधान रहकर अपनी स्थिति

करो। स्त्रियों में खास कर परिणाम का ज्ञान नहीं होता। इसी कारण वे बात बात में निर्भय होती हैं। चाहिये स्त्रियों को पुरुषों से अधिक सावधानता। उल्टे जहाँ तक देखा गया है, वे इसी में मोक्ष समझती हैं कि जितना ही पुरुष उनसे अभेद बर्ते किन्तु हे कल्याण पत्रिका कल्याण करने के लिये भाविका कल्याण कृत कार्य तत्पर होकर कल्याण भूमि पर स्थिति कामना वाली शुभमती, श्रीमती समझदार सुशीला नारियाँ मनविकारी अभेदता की कभी स्वीकृत नहीं करती-हाँ जो मन्द बुद्धि पाकर बड़ी ही हर्षोत्फुल्ल हो उठती हैं। वे अभेदत बर्तती हैं चाहें पीछे पश्चाताप एवं पतन हो तो भी वे प्रेमियों से सावधान नहीं रह सकती हैं, अन्ततः रोती पीटती झंखती हैं। पर वे दोनों भूले हुए हैं, जो परस्पर रह समय सम्बन्ध करके अपने को शुद्ध ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी रखना चाहते हैं। स्त्री पुरुषों का अवश्य आकर्षण है। शुद्ध अन्तःकरण और वैराग्य अभ्यासिक पुरुषों को शीघ्र अंतःकरण न बिकारी हो तो भी कुसंग दोषसे देर सबेर मन बिकारी होई जाता है, पर इस बात को अधिक ममता वाली स्त्रियाँ और कामासक्ति पुरुष क्या जान सकता है। उन्हें तो केवल मनोरंजन चाहिये। कहा भी है बिद्या बौड़ी नृपति तिय, इनका यही स्वभाव। जो इनके नेरे बसै, धाय धाय लपटाव। हे कल्याणी इच्छुकी। तुझे कल्याण करना हो तो शील क्षमा संतोष भक्ति इन्द्रिय दमन स्वरूप निष्ठा आदि गुणों का सेवन कर ये गुण तेरे घट के संतुलन से आश्रम ही में धारण होंगे।

घूमने विचरने सदा पुरुष संग में रहने से तेरे में अभिमान और सब दुर्गुण वृद्धि कर जायँगे, इत्यादि वाक्य कह के संत उसे सुधार मार्ग में लगा कृतार्थ कर दिये। वह भी संत कृपा से गृह में रहते हुये–सत्संग भक्ति सहन निरभिमान निर्दम्भ युक्त सावधान होकर, संपूर्ण जगध्वांस त्यागने में तत्पर हो गई इस प्रकार यथार्थ तुच्छ समझ पुरुषार्थ से जीव मुक्त हो जाना चाहिये।

सद्गुरवेनमः

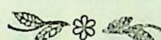
सद्गुरु विशाल देव अपने रहे हुये रात्रि आवास को प्रातः छोड़ छोड़ मीलों कशों दूर नित्य चारों तरफ चले जाते थे, कभी पूरब तो कभी पश्चिम कभी उत्तर दिशा तो कभी दक्षिण इस प्रकार एकान्त बाग बाटिका जंगल नदी शून्य स्थल पुराने मन्दिर खण्डहर आदि जहाँ कहीं भीड़ भाड़ विगत एकान्त शांत स्थल पाते वहीं बैठ जाते कुछ शांत पश्चात् एक ही साथी जो साथ जाता उससे निर्णय चर्चा किया करते उन निर्णय प्रबन्धों का थोड़ा थोड़ा अंश प्रकाशित कर रहे हैं प्रसंगानुसार गुरुवर कबीर देव और अन्य पारखी सन्तों के बचनो का प्रमाण भी सन्मुख करेगें पारख स्थिति जो जीवन के अनादि दुसह दुखों से छुटकारा दिलाने वाली है उसी स्थिति बोधामृत का पान करें करायेंगे इसी उद्देश्य से सद्गुरु कबीर देव से लेकर अखिल पारखी संत इस मनोमय ग्रन्थि छेदन के लिये उपदेश किये कर रहे हैं करते रहेंगे। शिक्षक संत विशाल देव गुरुवर कबीर देव का प्रमाण देते हुए प्रकाश डाल रहे हैं कि जैसे आयु

जियत लखु आयु ठौर करु, अर्थात जीते निज स्वरूप को जान कर स्थित होना मुख्य सिद्धांत निर्णय हुआ है। तैसे तिसके साथ यह भी जानना आवश्यक है।

तामन को चिन्हो मोरे भाई। तन छूटे मन कहाँ समाई॥ बीजक

साखी—मनसायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाचिहैं, जाके हृदय विवेक॥

इस हेतु यहाँ मुमुक्षु का प्रश्न है कि मन मनसा मानन्दी का क्या सरूप है और उसे दमन करके नित्य पारख में कैसे शांत रहा जाय? तब संत देव उसके उत्तर में बता रहे हैं।



अध्याय १२

मनोवृत्ति पर विजय करने को दृष्टांत विभूषित।

(मानन्दी और तिसका निरोध)

जैसे हिन्दू मुस्लिम में देह और जीव दोनों बराबर हैं किन्तु भूल बश ईश्वर खोदा पूजा पाट-रोजा निमाज के लिये लड़ कट के नाना मजहबी संताप सहते। जैसे एकही भारी कुटुम्ब वृद्ध पुरुष हो उसके प्रति पिता भाई पितामह नाना चाचा मामा ससुर दामाद इत्यादि हजारों प्रकार से कल्पित सृष्टि की रचना पृथक पृथक प्राणियों द्वारा पृथक पृथक भाव प्रभासित होते रहना, ऐसे ही एक स्त्री के प्रति पुत्री बहिन माता मौसी भावीः इत्यादि

की सृष्टि। जड़ चेतन दृश्य द्रष्टा का यथार्थ विवेक होता तो कोई इच्छा कल्पना के आवेग में नृत्य करने की आवश्यकता न होती, किन्तु जड़ चेतन का अनादि; प्रवाह अज्ञान बस अध्यास संबंध रहते आने के कारण ही स्थूल सूक्ष्म दोनों के बीज वृक्ष न्याय जीव मालो द्वारा पुष्टी करण होता रहा है—

चौपाई—

इन्द्रिन द्वार भोग जो भोगा। मन करि जीव लहै संयोगा।
मन को रूप सोई तुम जानौ। भोग ते पुष्ट होत पहिचानौ ॥
रहत विरोध विजातिन माहीं। सो तो विदित आहि जगमाहीं।
जीव बिजातो मन के संगा। काहे न कष्ट लहै अति चंगा ॥

[भवयान]

अपनी अमरता तृप्तता स्वतंत्रता अचाहता को अपने स्वरूप में न खोज कर भूल वश भ्रम के मन इन्द्रिय तिनके पाँच बिषयों के उपभोग में अविचल शांत स्थापित करता है। 'पूरण काम सदा जो निर्मल सपनेहुँ दुख न जहे। कांच महल के तद्वत जानौ भूँकत श्वान तहे ॥''

सार—अशुद्ध मानन्दी बंधन मनभव ग्रंथि है उसे शुद्ध मानन्दी से त्यागना चाहिये और उचित शुद्ध मानन्दी का व्यवहार लेते हुये भी स्वरूप ज्ञान द्वारा-सर्व शुभाशुभ अहन्ता ममता छोड़नी चाहिये।

(गुरु जन निदेश)

'रहौ न निरर्थक राग जगत में, नहिं छलि जाव फँसत बरबश में'

निज स्वरूप के भूल से, भ्रम करि निश्चय अन्य।
सो मानन्दी जीव लै, क्रिया करत भरमन्य॥
सोइ इच्छा को रूप है, प्रेरक आप सदीव।
इच्छा नहीं स्वतंत्र है, नहिं इन्द्रिय नहिं जीव॥
मानन्दी दोय प्रकार की, प्रारब्धी पुरुषार्थ।
प्रारब्धि मिटती भोग करि, पुरुषारथ काटि सनाथ॥
जैसा अपने आप जिव, तैसा होय जो बोध।
तहाँ ठहरि सब भर्म गत, मिटि मानन्दी रोध॥
भरमावै मन मनसा जगत भव में॥ शब्द भवयान॥
॥ भवयान, मुक्तिद्वार॥

(प्रसंग—सर्वोत्तम की ओर श्रेष्ठ भाव श्रेष्ठ आचरण सर्वश्रेष्ठ मुक्त स्वरूप विषयक विचार वर्षा)

प्रतिदिन ब्रह्म मूहूर्त में जागते हुये एकान्त शांत स्थित गुरुवर कभी तो मौन भाव से मनोद्रष्टा में स्थिर आसन से देखने में आये कई बार वैराग्य शतक तथा अन्य बानी बचन जो सद्भाव प्रेरक उन निर्णय पदों का सादर पाठ करते, कभी सन्मुख एक दो प्रेमी को शिक्षा करते, दृष्टि गोचर हुये, अर्ध रात्रि के उस पार निशा रात्रि में जाग जाना स्थिर आसन से बैठे हुये परमार्थिक प्रसंग वर्षाते रहना, इस प्रकार अपार कारुण्य दृष्टि अनुगामी जनों पर आप की निरंतर रहती, क्यों न हो पारखी सत्यन्यायी संतों का यही तो भजन है।

परख प्रखावन जीवन केरा। यह व्यवहार यथार्थ निवेरा॥

गुरु जन के सद्पुरुपार्थ लीनता देखकर यह हमें शिक्षा मिलती है कि हमें भी एक क्षण गुरु पद रहस्यों से शिथिलता न लेनी चाहिये। प्रतिक्षण रहस्य कर्तव्य पालन में जुटे रहना ही स्वसत्व है। आपके सन्निकट तो विशेप एक ही प्रेमी रहता पर जब आप निर्णय करने लगते तैसे ही कुछ पता लगते ही बहुत सज्जन वृन्द आ जाते और दूर बैठकर निर्णय वार्ता श्रवण कर सर्व प्रफुल्लित हो जाते वहाँ यह भी है। विशेप भीड़ सन्मुख न होना चाहिये, निर्भीर में बतलाना प्रायः गुरुदेव का स्वभाव है। उस समय यह बात आप कह रहे थे कि इस विश्व मंच पर खेलते हुये सब मनुष्य सबसे श्रेष्ठ होना चाहते हैं। किंतु काम सामान्य का करते, दाम सबसे अधिक चाहिये तो कहाँ से मिले। 'मति अति नीच ऊँच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरै न छाँछी ॥ रामा० ॥ 'परीश्रम थोर फलौ चहै घोर।" सो सब नर जीव कार्य निमग्नहैं, और पाँचों विषय तथा मान बड़ाई लौकिक उत्तमोत्तम पद राज्य सत्ताधिकार, राष्ट्रपति प्रधान मंत्री और भी ऊँचे महल सुन्दर वाटिका हुकुम शासन जोर, ज्ञान विज्ञान द्वारा अन्तरिक्ष शोधन एवं एलौपैथिक अंग्रेजी दवावों में दक्षता, कई विद्यावों के पूर्ण ज्ञाता होकर टीका भाष्य सभा व्याख्यान से सर्व जनता को कठ पुतली जैसे विस्मय विमुग्ध करके आकर्षण कर लेने का पांडित्य अर्थ शास्त्र कृषि विज्ञान, खेती व्यापार, नागरिक जीवन, भौतिक रसायन, तथा जीव विज्ञान समस्त लोक तन्त्रात्मक कलावों में पटुता प्राप्त

कर सबसे ऊँचा वैभव ऐन्द्रिक सुख विलास प्राप्त कर लेना और भी सभी माया कृत शेष अंगों की पूर्ति करके यंत्र-मंत्र-तंत्र या यशार्जन के लक्ष्य से मेला लगवाना औषधि बाटना, दुखियों का पक्ष लेकर उनके कमी पूर्ति हेतु सत्याग्रह करके विश्व जनता जनार्दन की सेवा का डंका पीटकर रात दिन अस्त व्यस्त रहना, योगी जपी तपी सिद्ध होने की प्रसिद्धि हेतु सूचना पट लिये, जनता समूह सम्मेलन द्वारा व्याख्यानों से निज विजय के झंड़े लहराना, इतना जय जयकारी प्राप्त करना कि चारों ओर ऊँचे आकाश मण्डल में शब्दों के घनघोर द्वारा विपक्षियों का हृदय दहला देना, अब विचारिये ये सबके सब जितने कार्य उद्यम पद पदार्थ वर्णन किये गये इन कामों में एक से एक बढ़कर परोश्रम अनुभवी युक्तिवान-शक्तिवान मिलेंगे, एक ही नहीं प्रत्युत समान सत्ता रखने वाले कई-कई मिलेंगे पर सर्व भावनायें किसकी अचल सफल होती हैं। सफल योग्य ही फलदायी बन सकती है। असफल भावनायें कभी अचल सफल होने की ही नहीं। क्या कोई सदा देह रख सकता है? कोई क्या सदा सर्वदा अपना एक शासन जमा सकता है ? क्या पंच विषयों भोगों को लेकर कोई पूर्ण हो सकता है ? क्या कोई मन को भौतिक सुखों से अपने को शांत कर सकता है। क्या कोई सूर्य चन्द्र सागर पृथ्वी मण्डल को मूठी में बाँध कर इन्हें स्ववश या शून्य कर सकता है। कदापि नहीं। त्रिकाल असम्भव। ऐसे ही कल्पना मात्र जड़ परिवर्तनीय दृश्य देह गेह नारी राज्य

राज़स भोगों में सुख मान मान के कोई शांत हो सकेगा कोई नहीं। 'तीनो भुवन का भोग तुमको आ मिलेगा तदपि नहीं मन मूर्ख तेरा दिल खिलेगा। मनोवासना के शांत करने में सभी लगे हैं पर जिन से मनोवासना बनी है उनसे शांत कैसे होगी। किन्तु अनादि अज्ञान बस नश्वर जड़ परिणामी चञ्चल को ही स्थिर एकरस सुख शांति मान मान कर क्या रंक क्या भूपाल क्या विद्वान क्या अविद्याग्रसित सबके सब मनोवासना पुरौती के उद्यम में लगे पगे हुये हैं। देखना यह कि भौतिक देह उसका जीवन निर्वाह गृह-और विरक्ताश्रम-शक्ति श्रेणी चाहिये भी कर्तव्य भी है—आधार पर लोग कुछ न कुछ उद्यम कर ही रहे हैं। आश्रमानुकुल उचित प्रयत्न करना उससे जो कुछ अन्न धन मर्यादा मान्य अनुकूलता प्राप्त हो उसमें से सद्‌गुण सद्‌बोध हेतु सेवा धर्म भक्ति में खर्च करे यही चाहिये-किंतु ऐसा न कर पांखी दीप न्याय जलना भुनना सर्वोत्तम की ओर न लगना यही घोर दुसह दुख का कारण मूल बीज है, समस्त प्राप्त ऐश्वर्य का दुरुपयोग है विवेक कहिये कि मनोवासना समूल नष्ट करने का उद्यम पुरुषार्थ सत्संग सद्‌गुरु उपासना, ब्रह्मचर्य स्वरूप विवेक विषयों से प्रबल वैराग्य आदि साधन संत भक्त के जो उत्तम उत्तम गुण लक्षण जिसको विशेष मनुष्य धारण कौन कहे समझ ही नहीं पाते, कुछ समझ पाते तो धारणा बना स्थिर हो नहीं पाते। ऐसी दशा में जो हमें सब से श्रेयस पद प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है, तो जो कोई न कर पाता हो,

जहाँ बिरला विवेक स्थिर रह सकता हो, ऐसी पारख कथनी अनुसार रहनी धारणा बनानी चाहिये, जिसका परिणाम-फल नित्य स्थायी स्थिति मिले, समस्त मनोबासनावों का अत्यन्त अन्त हो, वैसे ध्येय पूरा करने में कटिबद्ध हो पुरुषार्थ शील रहना सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य है। जब हम श्रेष्ठ गुरुपद विचारानुसार श्रेष्ठ-साधन संयम वैराग्य में लगे हैं तो विचारवान की दृष्टि में तो हम तुच्छ नहीं। हाँ अज्ञानी बाल।

सर्वोत्तम की ओर

बुद्धि वाले जिन्हे हिताहित का कुछ विवेक नहीं, वे पागल के समान कुछ भी बके वह तो हमारे पथ में क्षमा अंग का पुष्टि करण है। तब सत्मार्ग पर चलते हुए कोई भी बुरा करे कष्ट दे तो क्या खिन्नता ?

कहंता तो बहुतै मिला, गहन्ता मिला न कोय।
सो कहन्ता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय॥
जो न करै जग में कोई, आदि अन्त जेहि सद्धि।
मन रुज दुख ब्यापै नहीं, सोई करौ जिव सद्धि॥

भाव—जिस कर्तब्य सिद्धान्त धारण करने से तीनों काल में मनोवासना खैंच रूपी दुसह दुख न प्राप्त हो उसी को सर्वदा धारण करो जिसे कोई भी प्राणी धारण नहीं कर पाते बिरला विवेक निष्ठ टिक पाते हैं वही सर्वोपरि पुरुषार्थ करके सर्वोत्तम स्वरूप स्थिति प्राप्त करो और विनम्र रहो।

१—वैराग्य ज्ञान साधन करो पर प्रसिद्ध मत करो।

२—उपकार शील व्यवहार करो पर किसी पर कृतज्ञ बनाने का बोझा मत पटको, ३—जगत के समस्त अच्छे से अच्छे युवती सेवक मान प्रतिष्ठा अनुकूलता स्वाद स्पर्शादि भोगों का त्याग करते रहो पर कहीं देखो फिसल के छोटी छोटी उलझनों में फँस के अपना अमूल्य समय विनष्ट मत करो। ४—मन इन्द्री स्ववश कर लेने पर भी असावधान मत बनो। जब तक एक श्वांस भी है तब तक प्रारब्ध भूल रूपी देह पटरी पर तुम हिल रहे हो। इसलिये सेवा सत्संग साधन समय पर तुम्हारा लक्ष्य भाव पुरुषार्थ अटल होना चाहिये। यह सूत्र बहुत बार आप से श्रवण किया गया है। करै फकीरी फकीर बनैना। सौदा करै दुकान धरै ना। फफ्फा फिक्र मिटै दिल बीच फकीरी तब सही॥

दोहा–बहु सुत बहु रुजि बहु बचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार॥

आपका स्वयं कृत बचन भी है। साखी—

ज्ञान बढ़ै वैराग्य बढ़ै, ह्वै अचाह निष्फिक्र।
और बढ़ै तो का बढ़े, बिन कलि मल मन जिक्र॥
बड़ा वही जो जानिये, करै जीव को काज।
और बड़ा कोई नहीं, बसै जो मन की राज॥

इतना सब प्रसंग कहते हुये गुरुदेव उठके मार्ग में चल पड़े। शांत भाव से जहाँ रहने का स्थान था वहाँ आ गये॥

(निर्णय कथन विधान–कु० छन्द)

जो पारख गुरु पद दिये, निश्चल अभय स्वदेश।
पारख सत्य कबीर वर, जहँ न तिमिर लव लेश॥
जहँ न तिमिर लव लेश, देश सोइ चेतन जानो।
निर्णय करत सन्त जो, परख पारखी सोई मानो॥
जाहि हेतु सब त्यागि करत अनुराग विरागी।
राज्य भोग तृण पंच स्वाद अति निरश अदागी॥
गुरु सन्तन को शोधि, शरण सेवा जो कीन्हें।
करत भक्ति अति भाव, चाव ग्राहक पद लीन्हें॥
अति उदार निरधारि शुभ, जानिव प्रेम स्व शेष।
उलसत बिलसत मीन जल, निश्चल अभय स्वदेश॥
जेहि पारख बल लेय के, साहेब सत्य कबीर।
सोइ पारख धन सेय के, सकल पारखी बीर॥
सकल पारखी बीर, अजहूँ जो पारख सेवत।
नीर छीर बिलगाय, हँस गुरुपद नित धेवत॥
सोइ विराग पथ भूमि, रमत जहँ जीवन काजा।
जस प्रारब्धि का भोग, विवेक सहित सब साजा॥
कहँ ग्राम बन बाग, नदी तट निर्जन भूमी।
निरउपाध को साधि, सदा परख पद चूमी॥
सोइ सतसंग प्रसंग, चलत गंगा की धारा।
सेव्य सु सेवक भाव, उभय जहँ बोध प्रचारा॥

तन मन प्राणी योग से, भौ जब व्यथित कबीर ।
मथि मथि निर्णय प्रेम गहि, साहेब सत्य कबीर ॥
है प्राचीन जो बोध, तऊ नित नव करहु विवेक ।
पूर्व बड़े गुरुजन हुये, यह ई कहि रहि टेक ॥
यह ई कहि रहि टेक, एक की पारख कीजै ।
जो धोखा अनुमान, भास अध्यासहिं छीजै ॥
लहो सत्य पद शांत, सदा निभ्रन्त रहीजै ।
मन इन्द्रिय करि स्ववश, संत गुरु सेवा कीजै ॥
शिक्षक भूपति वैद्य, अजहुँ वर्तमान पियारा ।
है बन्धन दुख शरण, गहौ यहि बोध सुधारा ॥
सत्य कबीर व सन्त सब, पद विशाल एक टेक ।
तिनके सहित प्रमाण के, नित नव करहु विवेक ॥
महा पुरुष के पद कमल, श्रद्धांजलि शिर देत ।
श्रद्धा भक्ति सु हृदय बिच, शिष्य सु गुण शुभ हेत ॥
शिष्य सु गुण शुभ हेत, चेत अगणित दुख देखे ।
मैं अकेल करि चाह, दाह निज पर बस पेखे ॥
सेवा शरणाधार तुम्हारे, अजहुँ दर्शन पाये ।
प्रभु समर्थ पद पर्ख परम, करुणानिधि यश गाये ॥
मम स्वरूप औ बन्ध, तथा मोक्ष है पद जैसो ।
सदा अचल अविकार, कहिये पारख पद तैसो ॥
गिरत बहत लखि शिशु द्रवत, मातु सु बोधक हेत ।
निःस्वारथ परमार्थ करि, श्रद्धांजलि शिर देत ॥

प्रश्नोत्थान विधान

केहि अधार का शोधिये, केहि चाहौं के ध्यान।
मानौं जानौं काहि को, कहाँ ठहरि कल्याण॥
कहाँ ठहरि कल्याण, बात सब विधि गुरु जानौ।
मैं हूँ दीन अजान आप सु ज्ञान पिछानौ॥
केहि विधि नाशे भूल शूल शरणन तब आये।
सुने सुयस जस देखि लेखि अति प्रेम बढ़ाये॥
ज्ञानांजन दे दृष्टि पुष्टि निर्मल करि दीजै।
तुम बिन दीना नाथ कवन दारुण दुख छीजै॥
जो अविनाशी जान शुभ-नित्य स्वतंत्र स्वध्यान।
सो पद दीजै प्रेम को केहि चाहौं केहि ध्यान॥

दो०—समाधान करने लगे, लखि अधिकारी दीन।
धनि धनि सत्य कबीर गुरु, जेहि मग भवभय छीन॥

उत्तर विधान सत्य देश निर्देशक पदावली॥ बीजक मिश्रित निज परख शोधन है महान। जेहि चाहते सब जिव सुजान। जहँ सर्व दुख द्वन्दहुँ बिलान। जो सर्बकर अन्तिम सुध्यान।

साखी—साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप॥
सबसे साँचा भला, जो साँचा दिल होय।
साँच विना सुख नाहिना, कोटि करै जो कोय॥
आप ज्ञाता स्वतः पद कौ प्रमान।
रविवत हृदय विच, भासिक महान॥

मन इन्द्रियों को प्रेरत प्रदान। सोई जमा जिव सत्य जान ॥
भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देंय लखाई ।
कहहिं कबीर भूल की औसध, पारख सबकी भाई ॥
वस्तू अन्ते खोजै अन्ते, क्यों कर आवै हाथ ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ ॥
सबका स्वतः धन कहुँ न हान। अतिशय प्रवर पद शांत थान।
सब संत जन पुनि पुनि स्वधाम। नहिं थकत राजत परख ठाम।
ये मर जीवा अमृत पीवा, क्या धँसि मरसि पतार।
गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार ॥
हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंगिया, तैं किया और लगावार ॥
अस गुरुवर कबीर धीर ज्ञान। जेहि पाये गुरुपद समान।
सब नाम रूप गुण भासत जड़ अजान।
भासिक स्वयं प्रकाश बदत भवयान ॥
सेवा साधन परख लहि, लक्षण लक्षित जान।
सत्य न्याय संकेत पद, अँगुलि लक्ष दिखान ॥
मन बुधि वाणी लक्ष पद, उलटि देखु को देख।
जो देखत सो लक्ष किमि, लक्षक चेतन शेष ॥
सब पारखी निर्णय प्रमान। जेहि सैन से निज स्वतः भान ॥
चहि प्रेम युत पुनि करहु गान। अस बीजकौ-पारख-स्वधाम ॥
सकल कबीरा बोले बीरा, अजहूँ हो हुशियारा।
कहहिं कबीर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहिं पुकारा ॥

॥ सप्त दिवस विचार वर्षा ॥

सात दिन में मित्र मुझको मुक्तिद्वार बताइये ।
संतदेव विशाल कृत अनुभव सुअर्थ सुझाइये ॥
जिससे कि सब भ्रम दूर हो अविनाश अमृत पाइये ।
क्या विलम्ब क काम है बहते को नाव बिठाइये ॥
जब नेम से सुनना चहो तो नित्य नेम से आइये ।
बक्ता व श्रोता धर्म युत बैठे सुथल शुभ लाइये ॥
स्वामि सेवक भाव हित मण्डप सु साज सजाइये ।
जहै जाय सब एकाग्र हों गुरु नेम प्रेम बढ़ाइये ॥
जब तक न प्रकरण अन्त हो मानो चकोर सु चन्द्रकम् ।
दो चार घड़ि रुचि से सुनै पुनि जाय ले विश्रामकम् ॥
नर देह उत्तम साज साधन शोधबोध विकाशनम् ।
सद्गुण शतक अमृतझरी पीकर दुसह दुख नाशनम् ॥

जैसे सर्व विवेकी महापुरुष रत्न संत गुरु निज निज प्रेमी अधिकारी पाकर कुछ न कुछ कल्याण हेतु सत्संग वर्षा करते रहते यह नीयम है—साखी—

जो जेहि मारग में रहत, तेहि दिशि लावन हेत ।
निज निज प्रेमी के मिलत, तैसी शिक्षा देत ॥

(सत्य नि०)

जो निर्णय पूर्वक सत्य सिद्धांत पारखी संत कहते सुनते ठहरते चले आये हैं उसी निर्णय युक्त सद्रहस्य को आज गुरुवर विशाल देव १९ लक्षणों में विभाग कर राग द्वेश दमन हित

और स्वरूप स्थिति प्राप्ति के लक्ष्य से प्रवचन कर रहे हैं उसे आप ध्यान से सुनिये। १-गुरुभक्ति २-वैराग्य ३-दया ४-क्षमा ५-संतोप ६-सत्य ७-विवेक ८-धीर ९-वीर १०-शील ११-विचार १२-अमान १३-अकाम १४-अक्रोध १५-निर्लोभ १६-निर्मोह १७-निर्भय। विवेक युक्त आशक्तियों का दमन। प्रतिष्ठा की प्रसन्नता और मान का छेदन।

प्रथम भक्ति में गुरु आज्ञा, पालन और निज मन मारन कहा गया है इसकी विस्तृत व्याख्या 'गुरुभक्ति।प्रकरणसे मनन करें। एकही पद में अर्थ पूर्ण करें॥

'सन्मुख प्रभु के आज्ञाकारो। पारखगुरु तेई अधिकारी॥

(पंचग्रन्थी)

वैराग्य पद में तो पंच स्वाद त्याग पूर्वक मृतकत्व दशा ले सत्मार्ग ग्रहण करना है उसे-वैराग्य शतक रहस्यों से पूर्ण कीजिये। और वैराग्य वानों की सेवा संग से अपने में टिकाइये।

दया भाव में, मातृवत लक्ष का पालन करना है बच्चे को पालन के सिवा विनाश भाव माता कभी नहीं करती॥ 'निर्वैरी वर्तैं जग माहीं क्षमा अंग में तो-सहन शील होकर किसी रिपुता ठानने वाले को भी दुख न देने का' भाव पूर्ण कीजिये। दो-निज संतोप की बात ही अद्भुत शांत प्रद है-सुख विशेष का परित्याग करना है, निर्वाह पदार्थों में भी अल्प मात्रा में ही पूर्ण रखना है और तृण से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सर्व चाह परित्याग करना है सत्य ग्रहण हेतु तो यह नर जीवन अमूल्य मिला ही है।

इसमें-सत्य बचन और एकरस शुद्ध बर्ताव है तथा सत्य चैतन्य की निष्काम स्थिति बनानी है। विवेक प्रकाश लाये बिना कुछ दिखायी ही न देगा। इसमें सिद्धांत, रहस्य, सत्यासत्य सर्व का निर्णय ग्रहण है। यह धारा गंग प्रवाह वत अविभंग चलाना चाहिये। भला धैर्य विहीन कोई काम कोई पूरा कर सकता है कदापि नहीं। इसमें घबराहट परित्याग मनोद्वेग दमन कहा गया है। उचित सर्वदा प्रयत्न में लगे रहने की आवश्यकता है। धीरता नहीं लिया तो पड़े रहिये घनघोर अन्धार खंधक में। कौन निकलाने वाला है, जो गुरुदेव हैं उसी का एकमात्र सहारा है। पर अपना बल उसके साथ साथ काम करेगा नहीं तो गुरुदेव क्या करेंगे। 'इसलिये दुर्गुण दुर्भावना दुर्मति पर विजय पाने के लिये प्राण बलिदान कर देना होगा।' भूख प्यास शीत घाम सभी सहने होंगे। दुतकार अपमान तो गले का सुवर्ण माला ही है। त्याग वैराग्य सत्यसाधन एकान्त शांत जीवन धन ही है।

'महिमा आहि बिराग की, पाई तन कर धूर।'

मानुष बिना बिचार न करई। जो कुछ करे सो नाहीं टरई।
जो कुछ बुरा करम बनि आवै। परखत ताही तुरत बहावै॥
पक्का होय के सौदा लेय। धोखा धार में चिन्त न देय॥
बीर सरिस निज पद में लीन। शाहन्शाही तख्त नशीन॥
काल कला से डरे न सोय। मिथ्या जानि अपन पद जोय॥

शील बिना, परस्पर का प्रिय न्यायोक्त व्यवहार ही नहीं बनेगा, अन्याय बर्तनाहीं काँटा त्रिशूल बन कर नर्क वास कर

देगें। अतएव शील में सबकी सहनि सब कामना परित्याग और सँभल के सम्यक बोलना तथा सबको मान दान देते हुये अनभल न करना है और सद्‌गुरु की भक्ति श्रद्धा निबाहनी है। जीवन में निःशीलता काँटा है शील व्यवहार ही सौरभ युक्त पुरुष है। जों परमार्थ पथ में बलदायी है। ऐसे शील को आप रखिये। बताइये बिचार किये बिना कुछ भी आप करें तो ठीक होगा। कदापि नहीं, प्रकाश विहीन-कूप खंधक में पतन होना ही पड़ेगा। अतएव बिचार प्राप्त हेतु संसार से उपशम उदासीन होइये, उपशम हेतु गर्भ जन्ममर्ण, दैहिक दैविक भौतिक काम क्रोध लोभ, आधि-व्याधि उपाधि ये दुख दुसह की अनन्त लपटें, मुझे जलाही रही हैं-यदि मैं बिचार बल नहीं लेता हूँ, तो ये लपटें मुझे पुनः पुनः पीड़ित करेंगीं। बिना आँसू के दिल रोता रहेगा बिना बेड़ी जंजीर के दिल बँधेगा, बिना मोल तोल के सब ओर दिल बिकेगा, बिना अग्निज्वाला के शोक दावाग्नि में अन्तस चुरेगा, बिना शत्रु ठग चोर डाकू बेदर्द के ही कोटि कोटि शत्रु प्रहार जैसे अपार पीड़ा होगी। एक एक क्षण युग सहस्रों बर्ष से प्रतीत होंगें। ये सब मानसिक उपाधि की प्रबल धारा देखकर बारम्बार सोचते हुये गुरुदेव सन्त की संगत और तिनकी अनन्त युक्तियों में से कोई भी युक्ति से शीघ्र स्वरूप शांत की ओर चलिये। यही बिचार बल है। अमान निर्मान को कहा गया है। स्वचेतन से पृथक सर्व में. स्ववश का गर्व त्याग है। सर्व हितचिंतक होना है। पर अनिष्ट-बिगाड़ भाव छोड़ना है।

निष्काम, काम विहीन, ब्रह्मचर्य जीवन को बताया गया है। इसकी पूर्णता अर्थ वाह्य आकर्षणीय विजातीय घट संसर्ग निकटत्व एकान्तत्व अष्ट मैथुन छोड़ कर निष्काम भाव पूर्ण होना है। यह तो जीवन सार कर्तव्य है। इसी से मुक्त स्थित होती है। इसकी नितान्त आवश्यकता है। अक्रोध में पराये जीवन और मान्यताकी रक्षा है और विपरीत देखकर भी तामस को न लेना है। रविवत यही तो जीवन से शान्ति कमल विकसित करेगा। इसी को अहिंसा धर्म कहते हैं। जो मन कर्म वाणी से सर्व हित चेष्टा सजीव रक्खे। निर्लोभ होने के लिये सर्व तृष्णा जनक वस्तुवों के संग्रह को दूर से छोडना है। आवश्यकीय ग्रहण ये सदुपयोगी व्यवहार करके निर्मान रहना है। निर्मोह तो पंथीवत लक्षसे पूर्ण होता है। राग द्वेष कामना और बदला ईर्षा की गन्ध मात्र यहाँ नहीं होती यही जीवन्मुक्ति भूमि है। अभय होइये। स्वरूप बल स्मृति करके प्रारब्ध भोग जान करके आसक्तियों के दमन पश्चात या उसके साथ ही विवेक प्रबल करते हुये फल अचल भूमि प्राप्त हेतु दिन रात विवेक चिंतन धारा प्रवाहित करना चाहिये। अभेद संग रंग छोड़ना होगा उदासीनता ग्रहण और मन प्राणी पदार्थों से सावधान होकर स्वरूप में ही स्ववश रहना चाहिये। भौतिक या कोई भी प्रतिष्ठा में हर्षोत्फुल्ल हो अभिमानी बनने से शीघ्र ही स्थिति छूट कर प्राणी पदार्थ इन्द्रिय मन की गुलामी परवशता स्वीकार हो जाती है। इस महा रोग से छुटकारा पाने के लिये हर्ष और

मद ममता वर्धक संग वस्तु ऐश्वर्य परित्याग कहा गया है। गुरू ज्ञान ही में समस्त बोध विचार विराग तप समाधी ही सर्वस्व पारख शान्त हो जाना है।

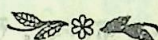
ये उन्नीस सु लक्षण सद्गुण शतक में पूर्ण प्रबन्ध कहे गये हैं। अतएव यहाँ संक्षिप्त वर्णन हुये हैं, वहाँसे देखकर पुष्टीकरण करिये या कथा प्रवचन से धारणा बना लीजिये।

प्रश्न—ये सब रहस्य लाना तो बड़ा ही कठिन दीखता है।

उत्तर—हाँ! निश्चय समझ लाभ न देख पाने से कठिन ही है। सत्संग द्वारा लाभ समझ के निश्चय और नेम बनाते बनाते दृढ़ हो जाने पर सब कुछ सरलहो जाता है। गृह धंधामें नित्य एक पल की छुट्टी नहीं दीखती। पर जब कोई नातेदारीमें मरने या कोई विशेष काम का सन्देश पाते ही शीघ्र ही मनुष्य चल पड़ता है वहाँ चाहे चार दिन लगे या आठ हमें एक दिन भी सदाचरण सत्संग स्वरूप बोध स्थिति के तरफ झाँकने का भी अवसर नहीं था। अब आज दिन ऐसा आया कि सब समय प्रमार्थ ही के लिये है। बताइये इसमें क्या जादू है क्या सिद्धि क्या दैव का खेल है? बस सत्संग करते करते दृष्टि घूमने ही की तो सिद्धि है। प्रिय बन्धुओं आप प्रथम से चिंता ही मत कीजिये मात्र सद्गुरु के सत्संग और सद्ग्रन्थ विचार से समझ के सत्य सार पर ध्यान जमा दीजिये फिर क्या? ध्यान जमते ही सब कुछ उसी के लिये हो रहेगा। किंचित चित्त दीजिये गुरुदेव आप से धन दौलत जमीन स्त्री राज काज कुछ नहीं

मांगते मात्र एक क्षण चित्त दीजिये चित्त देते ही सत्यन्याय में सदा के लिये आप क्या सबके सब जो कोई भी समझेगा वह गुरु पद में आ टिकेगा !

साखी—मैं चितवत हौं तोहिं को, तूँ चितवत कछु और ।
लानत ऐसे चित्त पर, एक चित्त दुइ ठौर ॥



अध्याय-१३

(पंच महिमा, परमार्थ सिद्धि)

एक बार रमन्त पहुँचे, श्री गुरु जहँ नदि बहै ।
जहँ दूर तक है दृश्य सुन्दर, शांत निर्जन थल रहै ॥
ते तीर जंगल मुदित खगमृग, वायु शीतल शुचि बहै ।
तहँ शाँत मुद्रा बैठि आसन, शांत जनु जग नहिं अहै ॥१॥
बहु देर के पश्चात साक्षि बृत्ति, जब बाहर किये ।
पुनि ढूढ़ि पहुँचा एक, अधिकारी तहाँ सन्मुख हिये ॥
नित एकरस परमार्थ पथ में, जीव यह कैसे रहै ।
इस प्रश्न के उत्तर कहे, गुरु पंच महिमा तू गहै ॥२॥
मैं सर्प से काटा गया, या ब्याघ्र गासे स्वप्न हो ।
जल से डुबूँ अग्नी बरूँ, मम शिर नहीं मम मृत्युहो ॥
हूँ भिक्षु चोर बँधा गया, पड़ि जेल रोगी भोग हूँ ।
पुनि जागते दुख दूर सब यो, कहि विशाल स्वबोध हूँ ॥३॥

है स्वबोध अनन्त महिमा, जो सदा सौभाग्य है ।
जग मोह हन्ता स्वप्न था, देहादि बुद्धि अभाग्य है ॥
सत्संग करि जागृत हुवा, देखा स्वतः सुविचार से ।
संज्ञा विशाल ये देवते, चैतन्य तू निरधार से ॥४॥
अपनेहि भूल बँधा रहा, तेरे सहायक भोग के ।
जो खानि वानी सब कुटुम्बी, सर्व भरमिक लोकके ॥
तूँ दुःख सब में देख कर, गुरु शर्ण आया शोध के ।
निर्णय किया निज रूपका, कहते विशाल प्रबोध के ॥५॥
पुनि संत सेवा भक्ति गहि, समता व धर्म सुपंथ में ।
चलता रहा पुष्टी किया, परमार्थ शक्ति अनन्त में ॥
इह जेल बेड़ी बज्र से भी, बंध कुल का तोड़ कर ।
वैराग्य तूँ धारण किया, महिमा विशाल स्वबोध वर ॥६॥
है भूख प्यास समान नहिं, यह काम वेग है कल्पना ।
आदत पड़ी साधक मिले, इस हेतु होती जल्पना ॥
सब बिघ्न चिंता शोक तृष्णा, बंध जान के जीतकम् ।
नित मोहकों से रूक्ष हो, अनुभव बिशाल प्रतितकम् ॥७॥
सत्य चिद निज लक्ष से, अक्रिय अचल अथाह है ।
इमि लक्षमें पत्थर शिला से, एक बृत्ति प्रवाह है ॥
जप योग आठो याम यहि, तब काम वेग बिध्वंस हो ।
साधन बिबिध करि के भले, अनुभव विशाल प्रत्यक्ष हो ॥८॥
कोटि युक्ती सहन निश्चय, गहि अनन्त जोजग विचकम् ।
वहि उलटि लक्ष स्वरूप तर्क, जो परख शोध अनन्तकम् ॥

चिद सामना नहिं करि सकै, जो काल कल्पित मनगतिम् ।
अस आप बल स्मर्ण करि, निज एकरस रहनी गहम् ९
यहि भाँति से निजरूप बल, महिमा अनन्त प्रकाशतम् ।
लहि धन्य बोध स्वरूप जय जय, जयति निर्णय शासकम् ॥
स्मृति यह भूले नहीं, निजरूप बल निर्णय धरम् ।
कोई विघ्न मनभव नहिं रुकै, यों कहि विशाल सुधावरम् १०

साधु संत महिमा

मन भोग जग सब दुक्ख लखि, तेहि त्याग मुक्ती हेतु से ।
शुभ सन्त जन निर्णय सहित, सतपंथ लक्ष सचेतु से ॥
गहते गहावते चल रहे, मनमार सादी चाल से ।
वे शक्ति भर किस कामना हित, दुक्ख दें जन पाल से ११
यहि भाँति संत सदा सहायक, शत्रु मित्र समान से ।
सतशील समता और क्षमता, चिन्ह जाहि अमान से ॥
श्रद्धा अश्रद्धा जन विजन सब, पालते हित ध्यान से ।
ऐसे सुसंत रूचै जिसे, ते शीघ्र कर कल्याण से १२
निज मान मन से विरुद्ध लखि, जो संत जन से रूठि हैं ।
निर्णय कथा रुचि हैं नहीं, सब दोष दुर्गुण जूठि हैं ॥
जग जन रिझावन व्यर्थ ही, तेहि काल मन जग कूटि हैं ।
लख साधु संग अनन्त महिमा, गहि विशाल सो छुटि हैं १३
जो शोध बोध रहस्य निर्णय, स्वप्न में नहिं प्रासकम् ।
सत्संग बल वह प्राप्त भौ, जो भूत में नहि थाहकम् ॥

जो ज्ञात नहिं सो ज्ञात हो, जो मानते महिमानतम् ।
सत्संग बल महिमा अमित, तई सुबुध जो धारतम् ॥१४॥

गुरुदेव महिम

पालक सहायक बोध के, पुष्टक निबाहक आप हैं ।
चैतन्य बोध प्रकाश कर, चैतन्य रूपी आप हैं ॥
यह पिण्ड औ ब्रह्माण्ड सबही, जड़ विजाति प्रत्यक्ष है ।
आभाव से नहिं भाव हो, चैतन्य तो अपरोक्ष है ॥१५॥
यहि भाँति दीन दयाल ने, कहि युक्ति युक्त प्रसंगसे ।
अति शीघ्र हृदि तल बेधते, अज्ञान तम हो भंग से ॥
उत्पत्ति नाश बिकाश जस, तसही सदैव अनादि से ।
कारण ये चारों तत्व हैं, कर्त्ता सु जीव अनादि से ॥१६॥
कर्त्ता का कर्ता कार्ण का कारण, कहीं होता नहीं ।
गुण धर्म शक्तिअनादिदुइ, कोइअन्यत्र वशक्ती नहीं ॥
यह ग्रन्थ पन्थ अनन्त जो, सुख भोग योग अनन्तहैं ।
सब ज्ञान औ विज्ञान जे, नर जीव शक्ति स्वतंत्र हैं ॥१७॥
हो शीत बर्षादिक सकल, औ बन विभाग जहाँतलग ।
जड़ प्रमाणु प्रकृति में, ये सब क्रिया परत्यक्ष जग ॥
आभाव से यदि भाव हो, या नव विकाश जो सृष्टिकी ।
आरम्भ में जब कुछ नहीं, केहिभाँतिकल्पितवृष्टिकी ॥१८॥
किहँ काल में जल भुन्मि नहिं, तब कौन कैसे कहँ रहे ।
अनुमान सब जग बीच में, सब वस्तु, सृष्टी की रहे ॥

फिर कौनअनुभवसे लिखा, कोइ दिन नहीं यहजग रहे ।
अनुमान कैसे व बनै, जिसका प्रत्यक्ष न कहुँ रहे ॥१९॥
जो सर्वथा आभाव सूना, वो कहाँ से आ गया ।
जो भला अब आ गया, तब पूर्व में भी पा गया ॥
इस भाँति से गुरु देव जू, संदेह बादल तोड़कर ।
निर्भय अनादि स्वरूप थल में शीघ्रवृत्ती जोड़कर ॥२०॥
गुरु देव तेज अनन्त है, केहि भाँति से उपमा कहूँ ।
जो वेद शास्त्र पुराण सब, अवतार बाद में ढूढ़ हूँ ॥
क्या गुरु बिना कुछ सूझता, हो ईशब्रह्म या देव हूँ ।
गुरुपद विशाल विशाल महिमा, जानि मनवच सेवहूँ ॥२१॥

(गुरु कबीर महिमा)

यह अनादी विश्व के विच, सर्व में नर श्रेष्ठ हैं ।
है पशु समान रजो तमी, तिनसे सतो हि वरेष्ठ हैं ॥
यह जड़ प्रकृती तत्व से, कोइ भिन्न द्रष्टा ध्यान है ।
है नित्य जीव सु कर्म फल, आवा गमन जो मान है॥२२॥
जे अहिंसा मार्ग युत, सब सद्‌गुणों को धारते ।
ते ऋषि मुनीसिद्धांतमत, बर जन्म फल जो मानते ॥
ये सर्व जीव अनादि ग्रन्थि में, बहे आते देख रहे ।
निज दुक्ख तजने हेतु से, सुख युक्ति सब ध्याते रहे ॥२३॥
सब शोध बोध जहाँ तलक, परत्यक्षमतिगति यंत्र जू ।
चैतन्य में जिव में शोध बल, नर देह मध्य अनन्त जू ।

सिद्धान्त सब शोधन कि शक्ती, संस्कार बलन्त जू ॥
दुख दृष्टिले पुनि मुक्ति इच्छा, सत्यभाव मिलन्त जू ॥२४॥
है कौन सत्य ये प्रश्न से, उत्तर विविधिलाते भये ।
इह सर्ब मत सन्देह से, दृष्टी उलटि ध्याते भये ॥
मन सर्ब कल्पित मानना, जिसके अधार सो शेष मैं ।
सब संस्कार मनोवृत्ती, लखि भिन्न रहि अवशेष मैं ॥२५॥
मत सब थापक जीव मैं, चैतन्य सत्य प्रकाश हूँ ।
इह व्याप्य व्यापक एक है,जड़भास भिन्न स्वज्ञात हूँ ॥
जो सर्ब लक्षक लक्ष्य से, है भिन्न ही अपरोक्ष है ।
पारख प्रकाशी सत्य सत्ता, जान मात्र सदोक्ष है ॥२६॥
सबखानि जीव अनन्त सम, पारख स्वलक्ष्य अकेल है ।
द्वै ग्रंथि विच सम्बन्ध भ्रम, पारख विचार सेठे लहै॥
अस शोध बोध प्रकाश मत, नर जीव तेई सब शिरे ।
सर्बभ्रांतीभास दलि मलि, जीव की स्थिति करे ॥२७॥
अस गुरु कबीरप्रताप लख, जेहिजीववादशिरोमणम् ।
त ग्रन्थ बीजक सैन दे, लखु जीवधन जो गुप्ततम् ॥
पुनि कौन रंगये जीव कहि,जाग्रत स्वरूप येपारखम् ।
जड़वादसबहीभ्रान्त मत, करि खण्डसत्य प्रकाशतम् ॥२८॥
सदगुरु कबीर के परखमतको,तुच्छलखिजे छोड़ि हैं ।
तइ खानि बानी मोहनी विच, भ्रष्टबहुविधि रोइहैं ॥
पुनि जे कबीरके लक्ष पारख, संत बीच में शोधिहैं ।
गुरु बोध सेवा पाय ते, बर्तमान मुक्त समोधिहैं ॥२९॥

जग ब्रह्मविश्वविकाशवाद, जे भ्रांत मत सब ध्वंसकम् ।
आनन्द सुख मन भासकालको, नष्टकरि वैराग्यकम् ॥
सदगुरु कबीर अखण्डपद जो, सर्वपरिक्षक वरम् ।
गुरुपद व निज पद संतपद, स्थितिविशालसमानकम् ॥३०॥

(सदग्रन्थ सदाचार महिमा)

जे परख निष्ठ हैं सन्तजन, ते बोधशोध अनन्त हैं ।
नितनव विवेक प्रफुल्लचित, सब भ्रांत करते अन्त हैं ॥
इह जड़ प्रवृत्ति प्रकृति से, चैतन्य मथिमथि काढ़ते ।
जड़ देह हन्ता तोड़ि फोड़ि, व दिव्य देशनखान ते ॥३१॥
निज है अखण्ड अगाढ़ सूक्षम, सार सत्य सु जीव है ।
निर्वासना से मुक्त हो, गहि वासना जन्मीव है ॥
पुनि एक एक विवेक सैनिक, में महान अनन्तबल ।
समता क्षमा शीलादि युत, सब दोष दुर्गुण जायँटल ॥३२॥
कहि मुखाग्र सुयुक्ति निर्णय, लेख कोइ सदग्रन्थ हैं ।
एकत्र बहु निर्णय भरे, जिसके पठन श्रम अंत हैं ॥
सत्संग औ सदग्रन्थ में, पुनि सदगुणौं मन जोड़िहैं ।
ते धन्य बड़ भागी विजय, लहि परख पद में सोहिहैं ॥३३॥
अत्यन्त बज्र समान आदत, भोग वृत्ति विध्वंसि हैं ।
ते हंसवत सब सदगुणौं चुनि, ज्ञान सिन्धु समञ्जि हैं ॥
हिम्मत पछ्छर को तोड़ि पग, साहस सदा भव भंजिहैं ।
निश्चित निर्भय रूप में, परमार्थ जन मन रंजि हैं ॥३४॥

॥ सद्ग्रन्थ सद्विवाद महिमा ॥

ये पञ्च महिमा चित धरे, निर्णय करै जन मध्यतम् ।
सेवै विविध विधिभाव युत, जब जौन जाहि समानतम् ॥
कबहूँ गिरे नहिं मार्ग से, सतमार्ग नित्य निवारतम् ।
सदगुरु कबीर विशाल संत, समान निजपद धारतम् ॥३५॥

॥ शिष्य बन्दनाः—अष्टक ॥

को अस कृपाल सम्भाल जीवहि, मानदै परखावनम् ।
चैतन्य रूप अनूप भूप, महान पद ठहरावनम् ॥१॥
इह प्रत्यक्ष अनादि जग, अनुमान कल्पित खण्डनम् ।
अन्तस व इन्द्रिय प्रेरि घेरि, मनो मयं रिपु जीतनम् ॥
द्वै कर भुजा पद नेत्र सम युत, देह नर शुभ साधनम् ।
गुरु साधुवेष विशेष मुद्रा, शांत पद निरधारनम् ॥
निर्णय सुधा मृत बर्षि हर्षि, समान पारख धारनम् ।
जय जय स्वबोध अबोध ध्वंसक, सदगुरू सततं भजम् ॥२॥
कहँ जीव यह पथ भूलि के, जग बन विषे दुख पावनम् ।
योषित महा माया व काया, मोह मद बिच धावनम् ॥
तहँ विश्व जड़ ऐवर्श्य मद विच, फूलि भूलि भुलावनम् ।
ते सर्व विघ्न प्रलोभ छोभ, बिध्वंस जीव बचावनम् ॥३॥
जे ब्रह्म बादी अखिल जग कहि, ब्रह्म रूप मिलावनम् ।
जे विश्ववादी जड़ अहं कहि, भोग पंच रमावनम् ॥
जे ईश बादी प्रोक्ष प्रेरक, मानि परबश भावनम् ।
ते सर्व मन भव भास ग्रंथी, छेदि गुरु परखावनम् ॥४॥

कहुँ प्राप्त कछु करनो नहीं, नित प्राप्त चेतन नित्यकम् ।
नित मुक्त रूप सरूप निर्मल, सत्य शांत सदा भजम् ॥
इह वासना मन लक्षभिन्नहि, भास पखि के डालनम् ।
पारख परख निज आप भासिक, शुद्धरूप रहावनम् ॥५॥
द्रष्टा पना अभ्यास पुष्ट, मनोगती बिलगावनम् ।
संयम व साधन विविधि विधि, निर्णय विवेक सुहावनम् ॥
सुख लक्ष तोड़ि सदा सजग, निजरूप लक्ष समावनम् ।
मन सुषुप्ति जागृत मोह तम, सब निष्प्रयोजन जानतम् ॥६॥
सब प्रयोजन भावना, अभिलास बोध से चूरनम् ।
यह देह ग्रंथी भास मनगति, तोड़ि फोड़ि बिधूरनम् ॥
होना रहा पाना रहा, मिलना रहा सो पूरनम् ।
सो परख अपना पाय पद, पूरण भया निर्वाहनम् ॥७॥
प्रारब्ध भोग समाप्त इमि, स्थित सदा अविकारतम् ।
अमृत कथा अमृत तथा, अमृत सदा अमृतपदम् ॥
देहादि भासक प्रत्यक्ष कर्ता, सो स्वयं अपरोक्षम् ।
देह साधन त्यागते ही, जन्म मृत्यु विबर्जितम् ॥८॥
दोहा—वन्दन अष्टक पाठ करि, गुरु पद ध्यान लगाय ।
सदा एकरस थिर रहे, जीवन्मुक्त रहाय ॥

॥ शब्द—षष्ठामृत ॥१॥

भावै मेरे मन को पारख गुरु की रहनी ॥टेक॥
नीकी नीकी सीख देवैं, शोधि शोधि काज करैं ।
रक्षि रक्षि जन मन, दुख दोष दहनी ॥१॥

मग चलैं धीरज से, रुचि लागी वनही में।
भाँति भाँति अनुभव, हंस चाल गहनी ॥२॥
जग से निराश अति, शोभत विराग मग।
काहू केरो आश नाहीं, धीर वीर सहनी ॥३॥
प्रेम दास हाथ जोड़े, शरण लगाय लिये।
गुरू गुण गावै जासे, भव भय तरनी ॥४॥

शब्द ॥ २ ॥

मेरे मन रुचत जु पारख गुरु के चरना ॥ टेक ॥
केते पूजे देवी देवा, केते जावै तीरथ में।
मेरे एक आश दृढ़, साहेब के शरना ॥ १ ॥
जेते अवतार माने, सबही प्रपञ्च मग।
विश्व अभिमान गहि, भव डूबि मरना ॥ २ ॥
तन मन जग ब्रह्म, सबही प्रखावत हैं।
पारख स्वरूप गुरु, भव भय तरना ॥ ३ ॥
प्रेम दास बोध भयो, गुरु जी से एक रस।
फिर काको यश गावैं नमो नमो करना ॥ ४ ॥

शब्द ॥ ३ ॥

दरश जो पारख प्रभू के बड़े भाग्य पाइये ॥ टेक ॥
एकरस चाल देखा, रक्षपाल भाव देखा।
अतिशय विनम्र देखा, काम क्रोध नाइये ॥ १ ॥
परम विराग देखा, शुद्ध सु विचार देखा।
बड़ो हि सजग देखा, समता बढ़ाइये ॥ २ ॥

सब साधु गुण देखा, यथा योग्य भाव देखा।
चेतन स्वपक्ष माँहि, स्वरूप स्थिति रहाये ॥ ३ ॥
प्रेम दास दर्श पाये, अतिशय मोद लाये।
शीश को नवाय निज, सेवा पद भाइये ॥ ४ ॥

शब्द ॥ ४ ॥

मेरे मन गड़िगे जो पारख प्रभूके वयना ॥ टेक ॥
काहू रुचे वेद गीता, काहू रुचे भोग लोग।
काहू राग रोस दोष, सदा दुख मनना ॥ १ ॥
जासे सब बोध मिलै, जड़ अरु चेतन को।
बन्ध मोक्ष भेद जानि, दिजपद लहना ॥ २ ॥
भवयान मुक्तिद्वार, सरल प्रबन्ध सब।
पठन मनन करि, पर्ख बोध लहना ॥ ३ ॥
साहेब कबीर केरो, भाव जो पारख दृढ़।
साधु गुरु प्रेग नेम, स्थिती को लहना ॥ ४ ॥

शब्द ॥ ५ ॥

जन हितकारी हैं, कबीर देव दानियाँ ॥ टेक ॥
निज रूप बोध दिये, हंस गुण प्रेम दिये।
सबसे सजग दिये, सतसंग बानियाँ ॥ १ ॥
मन चाल शत्रु कहे, सावधान सत्य दिये।
शान्ति को स्वरूप दिये, लक्ष रोकी ध्यानियाँ ॥ २ ॥
अक्रिय अचाह जिये, अचल स्वदेश दिये।
वही जाप लक्ष वृत्ति, मनो वेग हानियाँ ॥ ३ ॥

प्रेम शान्ति भाव गहि, बार बार गुण जपे।
कामना विनाश भयो, निराधार ठानियाँ॥ ४ ॥

शब्द॥ ६॥

ऐसो अति विशद अभंग गुरू की युक्तियाँ॥ टेक॥
सब को कल्याण मग, परम पुनीत यह।
भवयान परम विचार, गुरुवर युक्तियाँ॥ १ ॥
मुक्तिद्वार प्रबल प्रचण्ड तेज राशि वर।
ऐसो सत्यनिष्ठा शीघ्र, नाशै तम आँधिया॥ २ ॥
भव को मनन धार, उलटि के मनन कर।
गुरुपद अर्थ भाव, तदाकार वृत्तियाँ॥ ३ ॥
प्रेम नेम सादर, पढ़त औ पढ़ावत हैं।
भवयान मुक्तिद्वार, मनन हो मुक्तियाँ॥ ४ ॥

॥ बन्दगी पञ्चक॥

बन्दा गिरत पद कमल में, गुरु आपकी है बन्दगी।
मन मान कृत भव बन्धनौ को, हरलिये गुरु बन्दगी॥
करबद्ध अंगुलि टेकिशिर, त्रय बार गुरु तव बन्दगी।
जनमादि त्रय दुख नष्ट करि, भरि बोध गुरुनित बन्दगी॥
इस बन्दगी परताप से जीवन सफल भौ बन्दगी।
वह भूमिका निज प्राप्त भौ, नित शुद्ध अविचल बन्दगी॥
करि प्रणाम नमो नमस्ते, दण्डवत गुरु बन्दगी।
किंचित विलग नहिं बन्दगी से, कर्म मनबच बन्दगी॥
वहि शुद्ध अति साहित्य पद, गौरव वही है बन्दगी।

जिससे नशै भ्रम बन्ध सब वहि सदगुरू की बन्दगी ॥
चैतन्य शुद्ध सुजान साँचो, बोध वह हो बन्दगी ।
आशक्ति कलिमल नष्ट हो, जड़ ग्रंथि छेदन बन्दगी ॥
शुद्ध सब व्यवहार सह, सुविचार संयम बन्दगी ।
एकान्त पथ नैराश्य हो, उपराम धन्य सु बन्दगी ॥
संदेह गत दुइ बस्तु सत, दृष्टि अमल वर बन्दगी ।
सद्ग्रन्थ शोधि सुलक्ष स्थिति, सतसंग सेवा बन्दगी ॥
हे सदगुरू तव बोध रहनी, में सदा रमि बन्दगी ।
संत भक्त सुचाल रहनी, सो ग्रहण सब बन्दगी ॥
यहि भाँति से सब बन्दगी, कहि बन्दगी हो बन्दगी ।
यह प्रेम जन की बन्दगी. श्रद्धा सहित सब बन्दगी ॥

॥ मंगल ॥

कौन करै अब योग भोग सब, पारख गुरू मिले ज्ञान हो ।
शोक मोह तम चीरि प्रगट भयो, नित्य अमर पद भान हो ॥
परख विलास मगन मन अपने, परखि परखि भवहान हो ।
रक्षक भक्षक दृष्टि परै जब, तब पावै निज थान हो ॥
नयनामृत अंजन करि नीके, सब गयो मान गुमान हो ।
जब ठहर्‍यो भासिक पद चेतन, दृश्य भास बिलगान हो ॥
जगत ब्रह्म औ देह अंश तजि, ह्वै निराश सुख खान हो ।
तजि कुसंग कुबिचार भलि बिधि, सार शब्द गहि ध्यान हो ॥
पारख प्रभु के ऐन हजूरी, मिटि गयो ऐंचातान हो ।
अब यह देह रहै जहँवाँ पुनी, नहिं छूटे सदज्ञान हो ॥

आठौ याम निरन्तर पारख, करि ठहराव सुजान हो।
श्री गुरुदेव कबीर कृपाबल, प्रेम द्वन्द दुख हान हो॥

प्रश्न—पद

सद्‌गुरु भक्ति को आप बताते चलें।
अपने शरणों में आप निभाते चलें॥ टेक॥
विषय सुख की कामना, सब जग नाच नचाय।
सबै गुलामी सब सहत, सब दुख भोगत हाय॥
ऐसी साँपिनि से आप दुराते चलें॥ १॥
जनम जन्म क्यों दौड़ता, सबै ठौर निज अर्पि।
दाम काम बिन लेउ सब, मैं दुखिया दुख डर्पि॥
ऐसे दुःखों से पीछा छुड़ाते चलें॥ २॥
मैं कैसे सब कह सकूँ, बालकपन हठ लोभ।
निज करनी भरनी भरूँ, मन बस पल पल क्षोभ॥
मेरी कुमती में आग लगाते चलें॥ ३॥
प्रेम दास एक दीन है, चाहत निज कल्यान।
गुरु समर्थ परवीन हो, दाता परख प्रदान॥
सेवा श्रद्धा पै ज्ञान धराते चलें॥ ४॥

उत्तर—पद

प्यारे भक्ती क अंग सुनाऊँ तुझे।
प्यारे ज्ञान कि गंगा नहाऊँ तुझे॥ टेक॥
सद्‌बुद्धि साधन सद्‌गुणौं सिद्धान्त प्राप्ती के लिये।
मन कर्म बच शुद्धी भले पावन परम पद के लिये॥

शांती सुमति समता सहित ब्यवहार बर्तने के लिये ।
गुरु संत की भक्ती करने हेतु फलव र्णन किये ॥
प्यारे मुक्ती का साज सजाऊँ तुझे ॥ १ ॥

सुख भोग मान प्रवीन सब दुख भोगते छाती फटे ।
पर हाय ये नहिं जानते ये आदतें दुख में कुटे ॥
जग ओर जहँ सब भूल है तहँ क्यों मदान्धी तू जुटे ।
श्वान पाँखी मीन पशु इव देखु अजहूँ चित फटे ॥
प्यारे सोते से आज जगाऊँ तुझे ॥ २ ॥

भाव श्रद्धा सेवा निश्चय सहन शील अनन्त से ।
तू बली बल देव उतही जहँ न कोउ रक्षन्त से ॥
यहि पलौ निज दृष्टि उलटि के देखु तू गुरु संग ले ।
बलि पशु तू छूट शीघ्रहि प्रेम सदगुरु मन्त्र ले ॥
प्यारे ! अमृत क बुन्द चखाऊँ तुझे ॥ ३ ॥

साखी—अरब खरब लो द्रब्य है, उदय अस्त लो राज ।
भक्ति महात्मा ना तुले, ई सब कौने काज ॥बी०

जब पार उतरना चहिये । तब केवट से मिलि रहिये ॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानहु एक भक्ति कर नाता ॥
जांति पाति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुण चतुराई ॥
भक्ति हीन नर सोहैं कैसे । बिन जल बारिद देखिय जैसे ॥
(रामायण)

लाभ कवन यहि भक्ति हमारी । हानि न भज्यो मोहि तनु धारी ॥
(विश्राम सागर)

इष्ट प्रेम दीक्षा गुरू, सेवा ध्यान प्रसन्न ।
मुदित बितावै रात दिन, गुरु रुख साधि अमन्न ॥

भवयान भक्ति भरण छठां शब्द में 'करौ गुरु भक्ति रोग छीजै । विस्तार है मनन कीजिये—

सुनि अस वचन भगनि रस साने । प्रेम पुलकि गुरुपद सन्माने ॥

एकरस भक्ति की युक्ति, प्रथम भक्ति का अंग सद्‌गुरु शरणागति में जीवन पर्यन्त रहने का प्रवल निश्चय मूल है ।

प्रश्न—सद्‌गुरु में एकरस भक्ति भाव एक निष्ठा जीवन पर्यन्त बनी रहे वह कौन सा उपाय है ? उत्तर-परमार्थ रूप अविचल स्वरूप स्थिति और शुद्धता से शरीर की प्रारब्ध यात्रा, दोनों शुद्धि बुद्धि निश्चय ध्येय के आधार पर चलते रहते हैं, जहाँ शुद्ध ध्येय निश्चय परिवर्तन हुवा कि तत्क्षण भाव भक्ति रहस्य सब के सब उलट जायेंगे। अतएव एक ग्राम्य से दूसरे ग्राम्य में जाने न्याय अपने लक्ष गति को सर्वथा सिद्धांत की ओर रखना पड़ेगा। और असत्य अध्रुव मिथ्या ध्येय से हटना होगा, सद्‌गुरु संत के द्वारा ही सद्‌बोध प्राप्त हुवा, आप ही के द्वारा रक्षण पोषण जीवन भर परमार्थ पथ पर चलने के लिये एकरस में अडिग्ग रूप से टिकने की शक्ति साहस एवं सत्साधन युक्तियाँ मिलती रहेंगी। 'चाँदनी चौक की रात जंगल में स्वतंत्र रहना जैसे बकरी बच्चे को अनर्थ कारी है एक दिन

उसे भेड़िया खा ही लेता है। तैसे इस मन इन्द्रिय वश वर्ती नर जीवों की गति मति है। यदि वे गुरु संत सद्रहस्य रक्षक के ऐन घेरा में रहने की प्रतंत्रता न लेंगे तो उन्हें सहज ही दुर्भावना दुराचरण और अनेक अनर्थकारी लत आदतें पथ भ्रष्ट करके गुरु विमुख कराही देगीं। कथन का सार उद्देश्य यह हुवा कि एकरस भक्तिभाव निभाने के लिये, गुरुदेव के सिद्धांत और रहस्य दोनों नियमों के मध्य अपने को निछावर करते रहना चाहिये। ॥ गजल ॥

अब दीन दयाल के मंत्र सुनो, निज दुर्गुण दूरि बहा देना।
सत्संग कि धारा निर्मल है, तहँ डुबकी आप लगा लेना ॥टे०॥
चेतन शक्ति को जानो प्यारे, त्याग ग्रहण जो करता सारे।
छोड़ि कुचिंतन चिंतन निजपद, यहि पुरुषार्थ करा लेना ॥१॥
शुभ चरित्र बल मिलता है, सद्गुरु पद में ढलता है।
श्रद्धा औ सद्बुद्धि साधना, श्रद्धा भाव बढ़ा लेना ॥२॥
छै पल ही पल की फेरी है, जहँ बँध मोक्ष की ढेरी है।
निश्चय ध्यान पलट निज पद में, क्षण क्षण शक्ति बढ़ा लेना ॥३॥
दुख क्या है ? जो मन बस नाचो, उसे त्याग गुरु पद में राचो।
प्रेम सहित गुरु सेवा लेकर, यकरस शांत सदा लेना ॥ ४ ॥

दोहा—ऐसे संत विशाल के, सुने वचन परबीन।
नित नव श्रद्धा भाव से, गुरु मग के आधीन ॥

प्रत्येक व्यवहार में सावधानी रखना ही भक्ति मार्ग में टिकने की भूमि है।

पुनः गुरुदेव ने कहा–प्रत्येक अनर्थकारी कुसंग कुभाव को तो सम्पूर्णतः । दूर से परित्याग होना दूसरे आवश्यकीय संबंध में भी अग्नि जल-रूप से काम भी लिया जाता है और साथ ही जल में डूबने गिरने से बचाया भी जाता है । विवेक के साथ सावधानी आवश्यक है । सामान्य वर्ग के साथ विशेष वर्ग भक्त संत सज्जनों के समाज, सब में सबके कष्ट प्रद बातों और कर्तव्यों को न कर न्याय युक्त सर्व मान रक्षा करके बर्ताव उचित है । पूज्य पुरुषों को धक्का न पड़े विक्षेप न पड़े, निज कल्याण कार्य बनता रहे वह उपाय ढंग रहस्य अपनाना ऊपर उठने की सुन्दर सीढ़ी है । अन्य मण्डल में जाकर वहाँ के पुज्य पुरुष अपने द्वारा अपमानित न हों इसका ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है । एकाकी किसी का विशेष संबंध करना राग द्वेष का मूल है । कुसंग प्रीति तो बुद्धि भ्रमति करने में मद्यपान ही है । अतएव यह मन्त्र स्मरण रहे । 'जगत में रहि कै चलौ बचाय । कोइ नहिं आपन जग मन परखो, फन्दा बाँधि के जाँय पराय । पूरा शब्द भवयान जगत जहर में देखिये ।

करहु विचार जो सब दुख जाई । परि हरि झूँठा केर सगाई ।

तीसरे एकरस भक्ति निभाने के लिये परमार्थ सिद्धि लक्ष्य से सहन शील होकर निर्दोष निश्चय होकर स्थिर होइये ।

[कठिन को सरल बनाना]

प्र०–समाज की ओर से, और मनोभावना की ओर से,

अथवा इष्ट देव की ओर से, कुछ उनके साथ निबहने में कठिनता प्राप्त होकर विवेक वैराग्य सदाचरण से, मन साहस हीन होने लगे, तो क्या उपाय करना चाहिये। उत्तर—साहस हीन होने की एक क्षण भी चिन्तना न करे यही विवेक प्रबल उदय रक्खे, क्या स्वार्थ जाल में चारों ओर से सहना परिश्रम विघ्न बाधा सहन नहीं करने पड़ते। खेती ब्यापार विद्या पठन नौकरी कोई भी कार्य हो सब में विघ्न बाधा सहन कर पुनि पुनि उन्हीं कार्यों में लोग लगे ही रहते हैं। यह प्रत्यक्ष है। जैसे किसान भूरा पाला पत्थर अतिवृष्टि नदी बाढ़ आदि घाटा सहन करते हुये भी, अपना कार्य ब्यवहार नहीं छोड़ते, अद्भुत। जिस परमार्थ पथ के चलने से, अनन्त अनादि निर्भय अविचल स्ववश स्वतंत्र मुक्ति स्थिति का महा लाभ प्राप्त होता है। उसके लिये समस्त दुख सहना तृण उठाने के समान हल्का है। और समस्त सुखों का परित्याग करके ब्रह्मचर्य एकान्त शान्त जीवन ब्यतीत करना, मानो जेल की बेड़ी काट कर स्ववश घर में पहुँचना है। सदगुरू विशाल देव आप यह चौपाई साहस पर पुकारते थे।

उभय भाँति देखिस निजमरणा। तब ताकेसि रघुनायक शरणा।

साखी—सद्मग गामी शूर जो, साहस दिन दिन दून।
कादर बनौ न भूलि कोइ, सिद्धि काज दुख भून॥
जाहि मननमें सुख नितै, ध्यान क्रिया सुख ध्येय।
घाटा तेहि में कौन है, जो औरहिं चित देय॥

स्वबसत्व पथ पूर्ण करने में कुछ विलम्ब लगे तो घबराना नहीं प्रत्युत साहसी बनना और प्रथम से भी अधिक सत्पुरुषार्थ से संलग्न हो हो एकरस अभ्यास पुष्ट बना लेना। न करने से भला होगा हि क्या ? करते हि करता को फल मिलता है।
लगो पगो औ चलो शूर से, निश्चय ही घर अपना मिलता है॥
साखी—कर बहियाँ बल आपनी, छाँड़ि बिरानी आश।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरे पियास॥
दुख सुख अर्पण तृण सम करिकै, ध्येय लिहे बिलगान।
समर भूमि पर अड़े शूरवर, बिजयी मोक्ष लहान॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खानि।
शीश दिये जो गुरु मिलैं, तो भी सस्ता जान॥
भली भई जो गुरु मिले, ना तरु होती हान।
दीपक माहि पतंग ज्यों, पड़ता आय निदान॥

चौथे विशुद्ध भक्ति सेवा साधन बन्दगी विवेक दृढ़ रखना। नतमस्तक होकर त्रिवार बन्दगी करने का अर्थ और सेवा भाव एकान्त में शान्त वृत्ति से स्थायीमान गुरुवर विशाल देव दृश्यमान हैं। कुछ विलम्ब से सहज ही उठकर धीरे धीरे घूमते हुये सन्मुख श्रद्धालु सेवक से आप पूछ उठते हैं। तुमको सेवा बन्दगी करने का रहस्य ज्ञात है। सेवकपद रखके मिलने और बिलुड़ने समय प्रणाम बन्दगी क्यों की जाती है। श्रद्धालु मुमुक्षु ने कहा सरकार आपही समझा दिये। गुरुदेव बोले मिलने समय बन्दगी करने का भाव यह है कि अनादि काल से पंच

विषय हेतु कितने कामी क्रोधी लोभी मोही विषयी प्रपंची के पैरों को चूमा सेवा शरण लिया पर गुलामी न छूटी दिनोदिन परतंत्रता बढ़ती ही आई। आज आप बन्दीमोचन दर्शन देकर मेरी कुबुद्धि को हरण कर सत्यज्ञान दान देकर मुझे स्ववश कर दिये हो, आज मैं आप ही का बल पाकर मुक्ति के फाटक पर आ गया, कितनी बड़ी सौभाग्य आज मेरी उदय हुई। सब प्रकार जड़ासक्त जीव की दृष्टि का अज्ञान माड़ा हटाय स्वच्छ पारख दृष्टि दे दिये हो इसी हेतु मैं आपका दर्शन पाकर बार-म्बार बलि जाता हूँ, आप के नियमानुसार भेष रेख धारण कर सेवा करते हुए त्रिबार हाथ धर शिर दे गिरता हुँ कि तीनों ताप जन्म मरण गर्भ तथा काम क्रोध और दैत्यों से छुटकारा मिले और आपका जो प्रवर सत्य पारख सिद्धांत है उसमें मैं एकरस आपही सदृश स्थित रहूँ। ऐसा आशिर्बाद चाहता हुँ। और बिछुड़न अवसर में बन्दगी करने का तात्पर्य है कि अभी तक तो आप के संग प्रताप से सेवा युक्त गुरुपद में स्थित हूँ, प्रारब्ध वश बिछोह हो रहा है समय समय बिछुड़न तो अनि-वार्य ही हैप्रारब्धांत या अन्य कारण बश पुनः दर्शन हो या न हो, निश्चत नहीं किया जा सकता। धन्य आज बन्दगी दर्शन सेवा पूजा तो कर लूँ। जिससे गुरुपद को ही ओर श्रद्धा-सुदृढ़ रहने से पुनः पुनः गुरु साहेब के दर्शन एवं सेवा बन्दगी करने का सुअवसर प्राप्त होता रहे। अथवा शरीर ही अपना असाध्य हो या छूट जाय तो गुरु निष्ठा के आधार पर सहज

ही गुरुपद निजपद में सदा के लिए शांत हो जाऊँ। इस प्रकार श्रवण कर प्रेमी जिज्ञासु करबद्ध शिर झुकाय मधुर वचन से बोला हे प्रभो जैसे माता किसी न किसी बहाने से बच्चे को पयपान कराती ही रहती है। इसी प्रकार आप सत्य साहेब बात बात में सत्यपद को पुष्ट करते रहते हैं। धन्य ! धन्य ! परमार्थ के रक्षक पक्षक। [भक्ति उल्लास]

जन्म अनन्त सबै कुछ कीन्हें, नहिं गुरुभक्ति मिलेवो।
भाग्यउदय जोआजु मिलेसोइ, दिन दिन अधिक रुचेवो॥

[पंचम] एकरस निश्चल भक्ति को ही बना लेने से सर्व दुख ग्रन्थि की आशक्ति सहज ही नष्ट हो जाती है। आसक्ति की पहिचान सन्मुख रखिये॥

नदी तट पर घूमते हुए एक उच्चस्थान चट्टान पाकर एकान्त निवासी उदार विचार वर्षायक संत प्रवर गुरुवर विशाल देव आसन आसीन हो रहे हैं। बहुत देर मनो निवृत्ति दशा में स्थित होने के पश्चात धीरे धीरे चेष्टा करते हुए बोल उठे तब जो समीप में दास स्थित था अब और निकट आ गया है, गुरुदेव ने कहा आसक्ति को पंच विषय की ओर लगाये रहने से बंध प्रवाह चलता रहता है अतएव आसक्ति की पारख रखना सदैव कल्याणकारी है।

किसी का पालतू कुत्ता अन्य मनुष्य को काट खाया पालने वाला अपयश के भय से कुत्ते को त्याग करना चाहा। उसे भय देकर खेद दिया, थोड़ी दूर गया फिर दौड़कर कुत्ता आ बैठा

पुनः वह डंडों से बारम्बार मार के खेद आवै थोड़ी देर में देखे कि वह कुत्ता द्वार पर आ ही तो गया है। शीत समय जल वर्षा था सब लोग आग ताप रहे थे उसी धुनी के निकट कुत्ता भी आकर बैठ जाय, सब लोग उसे लाठी से मारे वह जान छोड़ लेट लगाले पुनः उसका पैर पकड़ घसीट घसीट दूर डाल आवैं तो भी वह आ जाय। गृह मालिक बहुत ही संकट में था इसलिए वह निरंतर कई दिन इस प्रकार का प्रयत्न किया जब खाने पीने बैठने किसी प्रकार का आधार न दिया सब प्रकार निराधार निराश्रय दिखाकर उसे खेदता ही रहा सब क्षण सावधान हुआ तब वह दूर हुआ। घर त्याग किया। पाँखी तो दीप स्नेह में जल बल के खाक ही हो जाती है—

आसक्ति कि जो प्रिय बिन देखे।रुचत न कछु तन धन केहि लेखे

दोहा—कामिहि नारि पियार जिमि, लोभी के प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥
ऐसहिं सदगुरु भक्ति पियारो। सहज होय जीवन निस्तारो॥

(आसक्ति की पहिचान)

ऐ हमारे प्रिय परमार्थगामी सुजन सुभक्त सुसंत समाज यदि आप अनन्त अनादि पद में शांत होना चाहते हैं तो जितना पंच भोग सुख हेतु नारी बानी वंचक ठगों में आप की आसक्ती है उतना ही उलट कर ब्रह्मचर्य सत्यसाधन सत्यचर्चा सत्यगुरु सेवा उपासना में लगाते ही जाइये बस आप सहज ही जीवन्मुक्त दशा में सुशोभित हो जायेंगे।

[वेद पुराण नीति शास्त्रों का निचोड़ शुभ सम्मति पर ध्यान दीजिये]

शुचि सुशील सेवक सुमति, कहु प्रिय काहि न लाग।
वेद पुराण कहे नीति अस, सावधान सुनु काग॥

१–वाह्यान्तर तनमन की पवित्रता, २–कोमल हितकर व्यवहार ३-सेवामेंपरीश्रमी होना, ४परिणाम सोची होकर सत्यपोषण युक्त प्रेम रूपी सद्बुद्धि रखना, बताइये ये चारो लक्षण जो ग्रहण कर ले तो वह किसका प्यारा नहीं होगा। अवश्य वह सबका प्रेम भाजन बन शीघ्र कल्याण कर लेगा। भक्ति के आदि अन्त निभाने से परमार्थ सिद्ध हो जाता है इसके लिये गुरुजन से विनीत भाव से प्रार्थना करते हुये अपना जीवन निष्कलुष बना लेना महा लाभ है। गुरु संत से देह के दुख प्रद स्वार्थ सुख न चाह कर निरन्तर परमार्थ के ही लिये निष्ठा रखनी चाहिये यहाँ यह मंत्र न भूलना—

'भक्ति दान गुरु दीजिये देवन के देवा'
सुखसंपति आनन्द घना सुन्दर बर नारी।
सपनेउ मे इच्छा ना चले, गुरुदया है तुम्हारी
अष्ट सिद्धि नव निद्धि हैं वैकुण्ठ कि आशा।
सो गुरु तुमसे याँचो नहीं, जब लगि घट श्वासा।

दोहा–भक्त वने जग मन विषय, फल भोगैं त्रय ताप।
बोधक गुरु की भक्ति कस, मिटिहैं सब संताप॥

सद्ग्रन्थों में मानसिक पूर्व धारा में वहुते हुये का चित्रण

बड़ी खूबी से किया गया। वह सब मनन कर लीजिये—

यहाँ सार तत्व संक्षिप्त में सुनिये—

दोहा–तिय के हित से तजत जन, तन मन धन कुल लाज।
मन सी एक न देत है, निज के हेतु कु काज॥
मिले बुराई मोल की, पुनि जग निन्दा होय।
करत भलाई यश मिलै, मोल न लागै कोय॥

कीर्तन पद

जय जय गुरु जय जय गुरु जय जय ॥ टेक॥
सद्गुरु की भक्ती के बिना कुछ काम ना बना।
निज रूप बोध ना हुवा तो सब बिफल घना॥
काम क्रोध लोभ ये यम दूत भूत हैं।
ये आग बिना ज्वाल में बिकराल कूत हैं॥ जय०॥
गुरुवर जी मधुर बैन से सब ताप हर लिये।
चैतन्य जड़ अनादि जग उभय अखा दिये॥
अध्यास भूल मेल से सब खेल जिव किये।
गुरु की कृपा अनन्त है नित प्रेम पद दिये॥
जय जय गुरू जय जय गुरू जय जय ॥ २॥

शिष्य-भक्ति अंग सुनि शीश झुँकाये। तनमन धन वलि दे तब पाये॥
कहँ हम जीव बहेतू नदि से। दे दिज शरण अचल गिरिवर से॥
स्वामी बोल को पटतर नाही। जासे जीव मुक्त पद पाहीं॥

[हितमंत्रणा]

प्यारे! भक्ति बिना जीवन बेकार। जीवन बेकार॥टेक॥

प्रकाश बिना क्या कुछ दिखलायेगा ।

जब तक ज्ञान प्रकाश न पायेगा ॥

प्यारे तब तक कहो मझधार । बहो मझधार ॥प्यारे॥

जब संत समागम में जावोगे । तब क्षति लाभ परख पावोगे ॥

प्यारे! जड़ ग्रन्थी का होगा निवार। होगा निवार॥प्यारे॥

जब देह कि रक्षा साथ तुम्हारे है ।

तब मन चंचल का लार तुँधारे है ॥

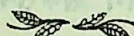
प्यारे! मन संयम ही से हो निस्तार । से हो निस्तार॥प्यारे॥

जब इच्छा पूर्ति विवशता लेते सब हैं ।

तब स्ववश हेतु नैया पर चढ़ लो अब हैं ॥

प्यारे ! गुरु-पद प्रेम से होव विचार ।

होवै विचार । प्यारे भक्ति वि० ॥



अध्याय-१४

नेपाली शिक्षा—नौ नियम चौपाई सबसे बड़ी सत्यनिर्णय की बात

(नेपाली श्री आज्ञा साहेब कृत)

ज़स्तो भोजन आफैले खाये मात्र भोक शान्त हुन्छ न खाये भोक शान्त हुदैन खाय मात्र शान्त हुन्छ न खाये शान्त हुदैन, आखा देखि दैन, तस्तै आफ्तु कल्याण को लागी आफैले सब तरफ बाट

मन लगाइ हटायेर परमार्थ को बाटो लाग्नु अति आवश्यकता छ, विशेष साहेब को हित उपदेश मनन गर्नु सब प्रकार बाट आफ्नु समझ र ज्ञान बढ़ाउने काम गर्नु परछ।

प्रश्न—गुरु सन्त हरु बाट मनुष्य भक्त हरु लाइ के लाभ मिलदछ ? उत्तर—वैराग्य र स्वरूप बोध ज्ञान भये का पारख निष्ठ सन्त ले मिथ्या, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, छुटाइ दिनु हुन्छ, झूठो भरमना मा हैरान हुनु र धोखा खानु पर्दैन। सत्य स्वरूप को यथार्थ बोध प्राप्त हुन्छ, जस्तो लाख करोड़ सम्पति पयेर राज्य सुख पाउँदा म धनी हूँ नरेसहूँ भन्ने इत्यादि प्रतीति हुन्छ। तस्तै सत्य स्वरूप को बोध भये पछि मानुष लाइ येस्तो निश्चय प्रतीति हुन्छ कि मता चैतन्य अजर, अमर, अविनाशी यो रहे छु, देह ता नाशमान विछुड़ हुने वस्तु यो रहे छ भन्ने इत्यादि निश्चय भई, अनुमान कल्पनाको भरमना-तीर्थ, बर्त जड़को भावना, मानन्दी यो रहे छ भन्ने इत्यादिको कल्पना र चक्कर गुरुवा हरू को पञ्जा बाट छुट्टी पाइन्छ, निर्भय भयेर वैराग्य बोध पूर्ण भै सन्तगुरू को भक्ति, स्वरूप विचार मनन, सत्य ज्ञानको चर्चा, दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील, सन्तोष, इत्यादि मा खुब अघी सरेर आफु लाई निहाल गरि दिन्छन तब म धन्य रहेछु, सन्त गुरू को सत्य ज्ञान पायेर निहाल हुने भये भन्ने हर्ष सहित खुशी भये र दिन बिताउँ दछन। "इष्ट प्रेम दिक्षा गुरु, सेवा ध्यान प्रसन्न। मुदित बितावै राति दिन, गुरु रुख साधि अमन्य॥ "यस्को अर्थ मुक्तिद्वार को आदि से अंत

तक यकइस रहनि ले भरिये को छ खोलिये कोछ।

पृथ्वी को भारि चौरस गोला देखिन्छ परन्तु तस्कोगति क्रिया नजर बाट सन्मुख मा देखिदैन, चारो तत्व कारण रूप बाट अनन्त कार्य भै रहे को छ, सो क्रिया द्वारा नै दिन रात घट बढ, उज्यालो-अँध्यारो चन्द्र सूर्य, उत्तरायन, दक्षिणायन, जाड़ो, गर्मी, बर्षा, शीशिर, धूप छ ऋतु, बाह मैना, पला, घड़ि मिनट, घण्टा, औंसी पूरणिमा, चन्द्र ग्रहन, सूर्य ग्रहण, तत्वो प्रकृति चालुसे भूकम्प, औरभी नाना मायावि प्रकृया भैरहेकोछ।

॥ सूर्य बाट भये को ॥

सूर्य बाट छ मैन्हा उत्तरायन, छ मैन्हा दक्षिणायन, रात, दीन, दस दीशा, बाह्र मैन्हा, छ ऋतु, रात दिन का पला, घड़ि मीनेट घण्टा, नीयम पूर्वक और बहुत है।

॥ चंद्रमा बाट भये को ॥

चन्द्रमा मैन्हा दीन उत्तरायन मैन्हा दीन दक्षीणायन, पंद्रह दीन, शुक्ल पक्षे, पंद्रह दीन कृष्ण पक्षे, सोरह तीथि, पूर्णीमा, औंसी, सत्ताइस नक्षत्र, नीयम पूर्वक और बहुत है। अनियम क्रिया—सूर्य ग्रहण, चंद्रग्रहण, भूकम्प, पूछे तारा, ग्रह का हेर फेर आदि सर्व अन्न, फल फूल, कन्दमूल, आदि दीन रात, वर्ष महीना सात बार सम्पूर्ण सृष्टि को विस्तार सिद्धि भै रहे को छ, आपु पनि पल पल मा बिति रहे को छ, तैसै मा देह को ब्यवहार, पञ्चविषय, घर धन कुटुम्बी, नौकरी चाकरी, खेती सन्मुख छ तैसै मा सबै अल्झे का छन, एक छिन फुर्सद छैन,

परन्तु यो सबै पूर्व शुभा शुभ कर्म धर्म भक्ति कै फल हो, ज्ञान लेनै सबै बाट फुर्सद पाइन छ । तेसले-धर्म, भक्ति सतसंग, ज्ञान योग, बोध, बिचार, यो सातौटा न भै कुनै कुरा पनि प्राप्त हुन सक्तैन। आज जो प्राप्त छ त्योपनि पूर्व कर्तव्य कै फल हो, अतः अब हामि हरूले यस्तो कर्म गर्नु पर्छ कि फेरी फेरी दुख परिश्रम कष्ट भोगन न परोस, यस्को लागी साधु गुरू को सेवा भक्ति, सत्साधन संत गुरू का बचन पालन गरी पुरुपार्थमा जुटनु पर्छ, किन भने ।

"काल करन्ते काल है, आज करे सो अब ।
छिन में परलय होत है, बहुरिन करिहै कब ॥"
बिना सतकासंले, विनगुरू कृपा लेई फजिति ।
अवस्थै छुट्तैनन, सकल मन को खेल न जीति ॥

[संत भक्त से लाभ]

भक्ति १ सत्संग २ दया ३ क्षमा ४ समता ५ नम्रता ६ हितैषिता ७ परोपकारता ८ निर्मानता ९ शील १० अपने गुण अवगुण सामने राखने ११ संत को अपने ऊपर दया रहने १२ आफु लाई दुर्गुण बाट बचाइ दिने १३ वैराग्य को स्थिति ढङ्ग जनाई बताई दिने १४ यथार्थ ज्ञान रहस्य थाह हुने १५ बोध बैराग्य में चतुर्वनाइ दिने १६ केहि कुरामें पनि पक्ष पर्न न परें १७ बात ठम्पाई भन्न सकने १८ अकैं प्रसंग भन्न नं पर्ने १९ एस्तो हुनु पर्छ भनि बताई दिने गुरू लाइ बारम्बार बन्दना गर्नु ।

साखी—जंकशन समान संसार गति, सबमें सबका मेल।

सावधान हो परख चलै, नहिं भूलैगे गैल ॥

॥ गुरू वचन उपदेश ॥

चार खानि के जीवों की प्रारब्ध भोग में जो जो मानसिक शारीरिक दैहिक, दैविक, भौतिक कष्ट तीन ताप भोगने में न चाहिये ता पनि जबर्जस्ति भोग्नु परछ बिना भोगे छुट्टी नहीं मिलता, उस को देखते सुनते रोम खड़े हो जाते हैं, मन में यही होने लगता है कि ऐसी आपत्ति शत्रु को भी भोगन न पर, अपने को कौन कहे। बस इत्यादि दुख से बचने के लिए बुद्धिमान को क्या करना चाहिये। जब तक देह लेना न छूटे तब तक दुख से छूटने को कौन से बच सकता है। "सब औसर सब जीव को, जहँ लग खानिन भोग। रहत अकेले बन रमत, निज निज मन उद्योग।" अतः दुख से बचना हो तो अपना ध्येय निश्चय पुरुषार्थ प्रथम परमार्थ की तरफ ही रक्खे, बाद में खान पान ब्योहार की तरफ लगावै। मुख्य काम कल्याण कार्य ही समझे, आगे बढ़ता रहे, पढ़ने सुनने, गुनने, गुरू में गुरुजनों की दर्शन भक्ति करने का सार है, नहीं तो "बौड़ी है छीमी नहीं" "तलाब है पानी नहीं" "सहर है मनुष्य नहीं" सूर्य है प्रकाश नहीं के समान मनुष्य है मनुष्य के गुण लक्षण एक नहीं है ऐसा समझ के मनुष्य को गुण लक्षण धारणा करना चाहिये।

(प्राचीन संत का अमृत दान)

इनार बाट पानी झिकदा धेरै ने लामु डोरि इनार भित्र जान्छ तर अलि कति मात्र डोरी पनि यदि हात मा बांकि रह्यो भने तस बाट तानेर बालटी भरि पानी बाहिर निकाली आफुले पनि पियेर तिर्षा मेटने गर्मि शांत गर्न सकिन्छ, हात गोडा धुन पाइन्छ, अरूले पनी पीयेर तिर्षा मेटन पाउन। तर त्यों अलिकति बाकी रहे को डोरी पनि यदि हात बाट फुत्क्यो भने त्यै हात को अलि कति डोरी मात्र जांदै न परन्तु सम्पूर्ण डोरी र बालटी समेत इनार भीत्र पानी भन्दा पनि तल हीलोमा पुगी गाड़िन्छ, तिर्षा ले कष्टित हुनु परदछ। फेरी त्यो बालटी डोरी निकाल न लाई झन् लामु डोरी चाहिन्द, फलास को को कांटा को झुन्नो चाहिन्छ, धेरै बेर सम्म मेहनत गरर खोज दा मात्र बल्ल बल्ल फेला पर्द छ साथी तान्दापनि लेदो हीलो यो भरि ये आउँदछ तेस हिलो लाई फेरी होस गरेर राम्रो संग गर्न खोजे पनि धमीलो पानि आउँदछ, चेहि वेर पानी थिर गरायेर संङ लो न भये सम्म पानी पियेर प्यास मेटन पाईदैन। तेस्तै आज यो अवस्था सम्म को आयू अकारथ मा इनार मै गै सक्यो जान पनि यसरी गयो कि भने जस्तो गरी आटे आटे को कां मा लाग्न सकेन, अब जो बाकी रहे को आयू मात्र पनि यदी परमार्थ मा, भक्ति सत्संग, साधन, ज्ञान, वैराग्य मालगाउन सक्यौं भने हामिले मनुष्य जन्म पाये को सफल भो, हामि मुक्ति गति मा प्राप्त भै हाल छौं। यदि अब बांकी रहे को जिन्दगी

पनी अल्प समय पनि यसै बित्यो, भजन भक्ति सत्संग साधन संभाल न सक्रिये न भने फेरी पछी ताउनु पर्नेछ, अरू केही उपाय चलने छैन, फेरी मनुष्य चोला पाउनु भने को ता कता हो कता, विना शुभ कर्म ले बार बार मनुष्य चोला प्राप्त भै रहँ दैन, यस्कारण खुब होस गरेर अब बांकी रहे को हाम्रो यो छोटो जिन्दगी समय लाइ परमार्थै को पुरुपार्थ मा सचेष्ट भै परमार्थ मा लगाई हालनु पर्छ नत्र भने "अनी पछितायेर हुन्छ के ! जब पछिले खाइ सक्यो खेत ।

प्रार्थना

बिर्सी न सन्कु शिक्षा, अनमोल आज पायें ।
बिर्से को वस्तु न वस्यो, गुरु धन्यता मनायें ॥टे०
तिलले पहाड़ छेको, गल माल भैं भुले को ।
अपरोक्ष आफु लाई, अबयो प्रभू प्रखाये ॥ १ ॥
ईर्षा अहं उमानें, जग भोग मान ख्वाहिश ।
ज्ञान को तगारो पक्का, हित अति सुन्न पायें ॥ २ ॥
आशा अहं बढ्याई, छल स्वार्थ पूर्ण बादल ।
जग जन विजाति घट मा, दुख दृष्टि दिल टिकायें ॥ ३ ॥
अनकूल मा न भूलौं, प्रतिकूल पर्खि टारौं ।
निर्णय रहन गुरु को, आज्ञा शिरै चढ़ायें ॥ ४ ॥

॥ डायरी–छन्द ॥

चेत कर नर चेत कर, गफलत में सोना छोड़ दे ।
जागत्त उठ तत्काल, गुरु चरणोंमें नित चित्तको जोड़ दे ॥

मानुष्य तन संसार में, मिलना नहीं है बार बार।
हो सजग ले लाभ इसका, नाम गुरु का मत बिसार ॥ १
विषय मद में चूर होकर, क्यों दिवाना हो रहा।
आयु ये अनमोल तेरे, क्यों वृथा तूँ खो रहा ॥
त्याग दे आशा विषय की, काट ममता पास को।
ध्यान कर गुरु का सदा, करम फल हर एक श्वास को ॥ २
विषय मदों को छोड़ गुरु पद, प्रेम मद तू पान कर।
हो दिवाना प्रेम में, श्री गुरु का गुण गान कर ॥
परम प्रियतम हृदय धन के, प्रेम मद में चूर हो।
छका रहा दिन रात तू, आनन्द में भर पूर हो ॥ ३

॥ पारख सिद्धान्त को नियमावलि ॥

अहिंसा ब्रह्मचर्यै ली, गुरु देव उपासना।
शुद्धाचार्य रहि नित्य, सब मा दया भावना ॥ १ ॥
चैतन्य जड़ दोटै को, अनादी नित्य बोध होस।
वासना युक्त कर्मै फल, पुनर्जन्म बुझी लियोस ॥ २ ॥
स्वरूप बोध स्थिति ले, वासना क्षय निश्चय।
गुण ग्राही बनी धारी, बिवेक दृढ़ अक्षय ॥ ३ ॥
संयम विराग धारे रे, जड़ हन्ता दमन गरुन।
निर्वासना मनो द्वेग शांत, एकान्त मा सधै रहुन ॥ ४ ॥
द्रष्टापना का अभ्यास, जीवन्मुक्त स्थिती गरी।
बिदेह मुक्ति को प्राप्ति, हुन्छ सत्य सँधै भरी ॥ ५ ॥

संक्षेप अर्थ-१ मनबचन कर्म बाट हिंसाको आठ दोष देखि बचेर राम्रो संग अहिंसा धर्म पालन गर्नु। २–त्यागी संतर ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी हरूले मन बच कर्म बाट अष्ट मैथुन त्याग गरेर पूर्ण रीति बाट ब्रह्मचर्य ब्रत धारण गर्नु गृहस्थ भक्त हरूले पनि व्याभिचार बृत्ति आदि लाई सर्वथा त्याग गरेर व्यवहार मा न्याय नीति युक्त सम्बन्ध मा पनि १-२ सन्तान उत्पत्ति न भये सम्म मात्र संग्रह सहबास मा रही तेस पछि, स्त्री पुरुष दुबैले त्याग भाव मा रहेर धर्म भक्ति सत्संगको विशेष अवलम्ब लिनु। ३-सम्पूर्ण भ्रम सन्देह निर्मूल गरेर पारख सत्य स्वरूप को बोध दान दी सत्य रहस्य को यथार्थ परिचय गराई दिने अरुयस काम मा सहायता दिने पारखी संत गुरु को मन को मन बच कर्म बाट आफुले सके सम्म शक्ति लगाई सेवा भक्ति गर्नु, गुरू को अनसा पालन गर्दै रहनु। ४-शरीर सफाई, नित्य स्नान गर्नु, कपड़ा पात्र हरु धोई माझि शुद्ध राख्नु, शुद्ध भूमि हेरेर वस्तु, सुद्धर सफाइ राख्नु खाने पिने पदार्थ हरू हेरी केलाई अमनियाँ गरी, पानि छानि शुद्ध गरेर खानु पिउनु, भित्र मन मा राग द्वेष, कुभावना हरू उत्पन्न न पाउने गरी सत्संग भक्ति साधन द्वारा कुवासना हरू बढ़ादैं गर्नु ५-आफुले सके सम्म प्राणि मात्रको हित चिताउनु, योग्य सहायता दिनु, कसै लाई दुख दिने सताउने हानि नोकसानी गरी दिने मन मा कुभावना सम्म पनि न राखी अरू बाट आफु लाई कष्ट हानि पर्न आयेमा पनि बची सही रहनु ६ जड़ चार तत्व र अनन्त देह धारी चेचत जीव सत्य स्वतन्त्र अनादि नित्य छन,

जड़ तत्व हरू को गुण धर्म शक्ति बाट प्रकृतिक नियमानुसार सन्सार को सृष्टि परिस्थिति प्रवाह रूप धारा चली रहे को छ अरु चारखानि चेतन चाहीं जीव को कर्मानुसार प्रवाह रूप बाट अनादि काल देखि चालु भैई रहे को छ। ७-सत्य नित्य जीव हरूले आफु ले गरे का कर्मानुसार खानिमा गई देह धारण गरेर दुःख सुख जन्म-मरण आदि फल भोगी रहे का छन, इसवै काम को निमित्त अन्य पृथक कर्तादि को आवश्यकता पनि पर्दैन, इत्यादि सत्संग द्वारा राम्रो संग समझ हुनु पर्छ। ८-देहको प्रेरक द्रष्टा इच्छा वासना देखि पृथक स्वतः सत्य चैतन्य लाई परिक्षा गरेर रहस्य सहित द्रष्टा स्वरूप स्थिति को पूर्ण अभ्यास गरेर मात्र बन्धन रूप वासना हरू को जड़ निर्मूल हुन सक छ भन्ने परीक्षा सहित निश्चय ता बनाउनु। ९-शोध रहस्य को निमित्त पुष्टि को निमित्त गुणग्राही बनी सबै बाट शुभ गुण हरू बटुल्नु। १०-जड़ चेतन, धर्मअधर्म,हानि लाभ, बन्धमोक्ष, साधक,बाधक, बन्ने बिगड़ने, को मन मा निर्णय विवेक गर्दै रहनु, लोभ, मोह, बश, मन को वेग मा न बग्नु ११-काम,क्रोध, लोभ,मोह, राग, द्वेष, लत आसक्ति, सुसंगादि बन्धन कारी दुर्गुण हरू लाई आफु मा प्रवेश हुन न दिनु, सत पुरुषार्थ को अवलम्ब द्वारा रोगी ले प्रहेज संयम गरे झैं माथि का दुर्गुण हरू देखि फरक रहनु। १२-देह विषय नश्वर भोगादि देखि उपराम रहनु, हमेशा मनमा निश्चय राख्नु कि स्वरूप देखि पृथक घर शरीरादि सम्पूर्ण एक दिन अवश्य विछोड़ हुनेहुन। १३-जड़ देह नै मैं

हूँ, बिजाति प्राणी पदार्थ मेरा सुख का साधन हुन, मयत्रो ठुलो धानी मानी ज्ञानी हूँ भन्ने इत्यादि अभिमान लाई उखेल दै गर्नु आफु शुद्ध चेतन अमान स्वरूप हुनाले स्वरूप लक्ष लिई हमेशा निर्मानता युक्त मैं रहनु १४-अंतकरण वाट उठने सर्व वासना लाई गुरु भक्ति, स्वरूप वोध, वैराग्य को साधन द्वारा हटायेर वासना रहित रहनु। १५-जुन जुन विषय मा मन उद्वेगित भई भाग्दछ त्येस वाट फर्कायेर थचारी स्वरूप मैं शांत रहनु, फुर्सद निकालेर नित्य केहि समय एकान्त बस्ने नियम सहित गर्दै गर्नु, आवश्यक, देह निर्बाह ब्यवहार लियेर बाँकी एकान्त मैं रहनु। १६-मुख्य वन्धन चित्त चतुष्टय र दस इन्द्रियको बिउ वासना रहने इनकै हो, इनले कृया मा प्रवृत्ति गराउन न पाउदै इच्छा चाहना समूह वासना हरु लाई नेहेरेर बस्ने गर्नु, स्फूर्णा उठने वृत्तिकै हठाउने गर्नु,यो अन्यास मा आफ्नो पूर्ण स्वतंत्रता स्वबशता प्राप्ति गर्नु पर्दछ। १७-माथिवताये अनुसार सबै शुभ साधन हरु गर्दै रहनाले परिणाम मा सम्पूर्ण शुभ रहस्य हरू पुष्ट भये पछि राग वृत्ति हरूले भुलाउन घिच्याउन सक्तैनन मात्र देह को आवश्यक निर्वाह लियेर सुख को आशा र जड़ देह को भोग मानन्दी हरु मा प्रेम चाह प्रवृत्ति सर्वथा निर्मूल भई स्वरूप शांति स्थिति प्राप्ति हुन्छ, यसैलाई जीवन्मुक्त दशा भन्दछन। १८-तेस्ता जीवन्मुक्तपुरुष को प्रारब्ध यात्रा समाप्त भए पछि निःसन्देह विदेह मुक्तिगति प्राप्ति हुन्छ, तेस्ता पुरुषको फेरी संसार मा जन्म लिनु पर्दैन, सदा को लागि स्वरूप देश मा शान्त रहन्छन, यही पद

प्राप्त गर्ने लक्ष लियेर हामि हरु सबैले पनि कल्याण मार्ग मा कटीबद्ध होऊँ, यथार्थ विचार रूप बाट स्वरूप बोध प्राप्ति भये पछि स्वार्थ कामना रहित मुक्ति साधन को पुरुषार्थ गर्दा गर्दै प्रारब्ध देह भोग समाप्त भई कल्याण कै ध्येय लक्ष बाट शरीर छुट्यो भने पनि अत्यन्त अन्यत्र वासना न हुनाले तिनको पनि मुक्ति स्थिति भई हाल्द छ। लौ योता झट कल्याण पुरुषार्थ मा साहस हिम्मत जोश भरीने बोध पाइयो, अबपनि किन एता उती उल्झने त ? साधन पुरुषार्थ मा लागी हालौं

(यो अपना बोध मा निर्णय भए का प्रबन्ध को वर्णन)

दोहा--स्वरूप बोध निर्णय सरल, जड़ से चेतन भिन्न।
विविध युक्ति से जानिये, विवश वासना खिन्न ॥१॥
आवा गमन औ कर्म फल, भोग सुखहिं दुख रूप।
ताहि स्ववश करि मुक्ति लहि, तजि मानन्दी कूप ॥२॥
मुक्ति माहिं कैसे रहत, केहि हित मुक्ती होत।
बाह्य ज्ञान तहँ क्यों नहीं, कस प्रारब्धि वितोत ॥३॥
विधि वत ये निर्णय सरल, साधु रहस्य परसंग।
गुरू उपकार औ वन्दना, जीव स्ववश तजि तङ्ग ॥४॥

संक्षेप अर्थः-(१) स्वरूप बोध को सरलता पूर्बक निर्णय, यो अपना बोध को पहिलो प्रसंग मा भये को छ। २-चार तत्व जड़ र चैतन्य जीव दुबै को भिन्न भिन्न लक्षण जस्ता को तस्तो निर्णय पूर्वक प्रत्यक्ष प्रमाण सहित बताएर। अनादि जड़ तत्व हरू को गुण धर्म शक्ति मिलाप बाटै अनादि काल देखि

कारण चार तत्त्व हरू बाट—कार्य रूप बीज वृक्षादि फल फूल मूल, अन्नादि नाना खाद्य पदार्थ औ फलाम, तामो, पीतल, जस्ता, काँसो, सुन, चाँदी, हिरा, पत्थर मोति आदि अदि सम्पूर्ण जगत को उत्पत्ति विनाश, नदी को धारा बेगझैं कार्य रूप बन्ने बिग्रने भै रहे को छ। कारण कार्य देखि चैतन्य जीव बेग्लै छ स्वतन्त्र अनादि अखण्ड एकरस भिन्न सत्य वस्तु पदार्थ रूप हो भन्ने इत्यादि निर्णय बिस्तार पूर्वक दोस्रो र तेस्रो प्रसंग मा भये को छ। ३—जीव वासना को वशमा कसरी बाँधिए को छ। ४—आवागमन करम फल को दुःख कसरी जीव ले भागि रहे को छ ? ४—आवागमन कर्म फल को दुःख कसरी जीव ले भोगी रहे को छ ? यस बन्धन बाट छुटने उपाय क्या हो ? इत्यादि निर्णय करना। चौथो र सातौं प्रसंग मा राम्रो सँग भए को छ। ५—कर्मफ़ल भोग को लागि जीव को चार खानि मा गमना गमन कसरी भइ रहे को छ ! ६—विषय सुख भोग लाई दुख रूप किन भले को हो ? विषय भोग मा पर्नाले कुन-कुन दुख पर्छ ? ७—सो भोग त्याग्ना ले शान्ति मुक्ती स्थिति प्राप्ति हुन्छ, मानन्दी बश दुःख मा पर्नु पर्दै न भन्ने इत्यादि निर्णय चौथो, सातौं पाँचौं र तेस्रो प्रसंग मा सुन्दर ढङ्ग ले बिस्तार संग खुलासा वर्णन भए को छ। ८—जीव चैतन्य मुक्त भए पछि कहाँ कसरी रहन्छ ? ९—के को निम्ति के कस्तो दुःख बाट बन्न फुर्सद लिन को लागि मुक्त हुन को आवश्यक परे को हो ? १०—मुक्त भयेर स्थित शान्त

भए पछि बाहिरी ज्ञान किन नरहे को हो ? ११–बोध भए पछि कस्तो समझ र रहस्य स्वभाव धारण गरेर प्रारब्ध बिताउनु पर्छ ? इत्यादि कुराको निर्णय विशेषरूप बाट दसौं र नवौं छैठौं आठौं प्रसंगमा बताइए को छ । १२–साधु संत ले कस्तो रहस्य आचरण मा रहनु पर्छ ? १३–बोध दाता रक्षक सहायता सन्त गुरु को उपकार मनो र बन्दना कसरी गर्ने ? मन्ने कुरा को वर्णन र आफु लाई हमेशां वासना को र मनको-वशमा सम्झी आफ्नु मन परी गर्ने स्वभाव लाई छ । रे र पहिले अज्ञान दशा को दुखलाई न बिर्सी एकरस चाल बाट हितैषी गुरु संत को भक्ति उपासना गरी पुजारी बन्नाले बिस्तार बिस्तार जीव को सबै रहस्य स्वभाव आचरण शुद्ध भई दुख परबसता छुटी बोध र रहस्य पूर्ण भए पछि सदा को लागि मुक्ति स्थिति प्राप्त हुन्छ, यसै कारण ले भक्ति धरम समुदाय भने को हो । इत्यादि खुलासा ए धारौं र बाह्रौं प्रसंग मा राम्रो संग बताइए को छ । यो सम्पूर्ण अपना बोध सत्य निर्णय को सूत्र समान ग्रन्थ हो । यस लाई पढ़ी सुनी गुनी यस्को मर्म निर्णय बुझे र सबै कल्यानार्थी हरुले धारण गर्नु कण्ठ श्रो बनाउनु । मुक्ति को सरल सोझो सजीलो बाटो यही हो ।

महा वाक्य गुरु सूत्र

१–न कोई रहा न रहता है न रही का कही ? संसार बिलकुल विपरीत है, समझ रक्खो कुछ और पर निकल परता

कुछ औरही। गुरु उपदेशामृत—

मुख्य अपना परमार्थ पुरुषार्थ करता रहे। सबका हित होय अपना भी हित हो वहि कार्य करै इष्ट की उपासना, मनसाय, जन्म भर पालन करै का परी। सदगुरु देव का वानी वचन यथार्थ है ही उसी अनुसार बर्तै। जौन निश्चय से वैराग्य लिया गया है उस में आगे बढ़ै कम न परै।

१ म को हुँ। २ जगत के हो। ३ बन्धन के हो। ४ कसरी नाश हुन्छ। ५ जड़ के हो। ६ चेतन के हो। ७ इसको भेद कसरी जानीन्छ। ८ गुरु को हुन्। ९ गुरुवा कोहुन, अपने मनमा गम्भीरता से विचार गर्नु ॥१॥ समता, क्षमा, दया, निर्वैरता, निर्मानता, अक्रोध, निर्दम्भता, हितैषीता, अहिंसा, सरलता, सहन शील, नम्रता, निरभिमान, इ तेरह। चौपाई सुनो—

अक्रोध निदम्भ हितैषी दाया। निर्मान निर्वैर सहन शील पाया
नम्रता अहिंसा सरलता कमाया। समता क्षमा से अभिमान नशाया
कल्याणार्थिको लागि का खास नियम श्रीसद्गुरु विशालदेव कृत

चौपाई

मन सोहरौना नहीं बनावै। सहन शील बनि आपु रहावै॥
मन संकल्प करै नहि पूरा। जानि कै बन्ध तजै तेहि शूरा॥
बस्तुन प्राप्ति माहिं तजि संचय। खास आवश्यक राखि असंचय॥
नहि समाज को पीड़ा देवै। बनै तहाँ तक हितही सेवै॥
त्यागि जगत को घूमि न देखै। मानुष जन्म सुफल करि लेखै॥

बनि प्रतिकूल न गुरु के रहिये। पालन राय सदा दिल चहिये ॥
जो कुछ आपन मानि जहाँलो ।सो सब इष्ट काहि दिल गुनलो ॥
गुरु उपकार मानि दिल धरई ।गुरु की निन्दा कबहुँ न करई ॥
धर्म मई अंतस यहि भाँती। मारग विघ्न ताहि भेंटाती ॥
सावधान हो इष्ट सदाहीं। अपने काम में पूर रहहीं ॥
साखी–स्वबश शक्ति अपने बने, प्राप्ति साज भग केर।
सिद्धि होय कल्याण पद, करि परिश्रम न देर ॥

संक्षेप अर्थ–मन लाई पुल पुल्यायेर न राख्नु सहन शील भै भोक, प्यास, जाड़ो, गर्मी, सुख, दुख, रोग ब्याधि. कटुक वचन आदि सहन शक्ति बढ़ायेर रात दिन भजन गर्न सक्ने हुनु १-मन को संकल्प (भोग सुख लत आदत अनुमान सम्बन्धी) वासना, पूर्ति गर्न पछि न लाग्नु बन्धदायक जानेर छाडि दिनु, येहि शूर बीर्ताहो २-प्राप्त भयेका पदार्थ हरु संचय गरीथुप्पाई राख्ने वाला लाइ छाड़ि केवल निर्वाह मात्र ग्रहण गरे र संचय भार रहित हलुका भयेर वस्नु ३-आफ्नु शक्तिले भेटे सम्म समाज हरु र आफ्नु घर बोल्लो पल्लो घर का सबै लाई पनि कष्ट न होस येस्को रथाल राख्नु मन वाणी शरीर सम्पत्ति ले सके सम्म सबै को हित गर्दै रहनु ४-आफुले पहिले त्यागे के भोग संग्रहादि र लत आदत हनू तिर फेरी वृत्ति घुमाए र जो लोभी छैन तेसैले मनुष्य जन्म पाए को सफल गर्‍यो भनि समझनु ५-अपने इष्ट गुरुदेवको प्रतिकूल वर्तिन वन्नु वहाँको मनसाय सधैं हर्ष सहित गर्दै रहनु आफ्नु माने को जाति तन मन धन प्राणी सबै इष्टदेव

कै हो भन्ने समझनु आफ्नु न समझनु ७-आफु लाई गुरूबाट भए को उपकार सहायता को याद राख्नु गुरूको निन्दा चरचा तुच्छता कैलेन गर्नु । यस्तो स्वभाव बनायो भने तेस्को हृदय मा धर्म पूरा बन्द छ, तेस लाई परमार्थ मार्ग मा कुनै धोखा बिघ्न बाधाले छुन सक्तैन ८-९इष्ट (सबको आधारिक) अगुवा शिक्षक ले पनि आफ्नु काम रहन आचरण बोध वैराग्य मा हमेशा सजग रहनुको अतिआवश्यकता छ १०-यहधारणा बाट आफ्नु परमार्थ मार्ग मा चलने शक्ति पुष्ट भै मार्ग को सामग्री (सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, वैराग्य, गुरु भक्ति, दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील, सन्तोष, आदि सम्पूर्ण संत लक्षण आफुमा प्राप्त हुन्छ तेस्को कल्याण मुक्ति पद अवश्य सुलभता से सिद्धि हुने छ, अतः ई लक्षण हरू पालन गर्ना मा तुरन्त मेहनत गरी हालनु टाल टोल न गर्नु चाडै गरि हालनु ।

॥ मुमुक्षु उद्गार ॥

चरण पंकजमा सानो मनको वेग बिसाउँछु ।
गुरूपद गुरू को घेरा मुख्य आज्ञा म गाउँछु ॥ १ ॥
संसारै स्वप्नवत सार रहित र स्वार्थ पूर्ण छ ।
देह दुइ दिन को दुर्गुण दुख रोग ले पूर्ण छ ॥ २ ॥
वासना जीव को पासो भ्रामक् काल सरुप त्यो ।
सबै देखि फरक् मेरो असंग सत् स्वरूप यो ॥ ३ ॥
स्वयं प्रकाश चैतन्य द्रष्टा संतत एकरस ।
हूँ अनाशी अचल् अमृत जानें गुरु कृपाले बस ॥ ४ ॥

यो कालो भूल आसक्ती अवश्य शून्य गर्दछ ।
द्रष्टा वैराग्य का आजै झिल्लिम् रोपि पहिर्दछ ॥ ५ ॥
विशुद्ध हृदय राख्छु वासनाले बिगार्दिन ।
अमुल्य सुनको शैय्या मैला गरी लतार्दिन ॥ ६ ॥
यै जन्ममा सबै कार्य सँभाल्दछु म डट्दछु ।
फेरी देह गुरु लिन्न शान्ति मुक्ति म लुट्दछु ॥ ७ ॥

॥ नेपाली भाषा समाप्त ॥

॥ सन्त बचनामृत ॥

दो०-विनय करौं अति प्रीति युत, हे गुरु दीन दयाल ।
जन्म मरण को दुक्ख बहु, दीजै सबहीं टाल ॥
मैं अपराधी क्रूर बहु, सुनिये दीन दयाल ।
निज पद रज लघु जानिके, करिये मोहिं बहाल ॥

कबीर पंथी क्या नहीं मानते ? क्या कैसा मानते हैं ।

१-कितने लोग वाद-विवाद करते हैं कि "कबीर पंथी कुछ नहीं मानते" अरे भाई ! कुछ कैसे नहीं मानते ? वे सब कुछ मानते हैं ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नर्क, तीर्थ, ब्रत, मूर्ति पूजन आदि वे क्या नहीं मानते ? हाँ उनके मानने की शैली विलक्षण है (जड़ को जड़ चेतन को चेतन) मानते हैं । कबीर पन्थी जो जैसा मानते हैं, आगे थोड़ा स्पष्ट किया जाता है । किस प्रकार क्या मानते क्या नहीं मानते, निर्णय युक्त वस्तु गुण धर्म युक्त जड़ चेतन दो पदार्थ अनादि मानते हैं । २-कबीर पंथी ईश्वर मानते हैं । ईश्वर कहते हैं स्वामी को । वेद, कुरान, पुराण तथा नाना मत पन्थ की कल्पना करने वाला चैतन जीव

ही है, अतः वही सबका स्वामी है। अर्थात् चेतन जीव ही ईश्वर (स्वामी) है। जैसे कहा है—

दो०—ज्ञान श्री ब्रह्मण्डता, यश विद्या बल होय।
ये बड़ गुण गहे पाइये, ईश जानिये सोय॥

इसके ऊपर कल्पित ईश्वर नहीं मानते।

॥ कबीर पन्थी क्या नहीं मानते ॥

३—कबीर पन्थी ब्रह्म मानते हैं। ब्रह्म कहते हैं बड़ा को, और सबसे बड़ा चेतन जीव ही है। जीव के बिना सब निर्जीव (जड़ मुरदा) है। "जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः अर्थात् जीव ही ब्रह्म है दूसरा नहीं। 'जीवतीति जीवः' जो सदैव जीवित रहे, कभी न मरे वह जीव है। तथा 'न जीवो मृयते' हाँ ! जो भ्रम मात्र का निराकार (शून्य) व्यापक माना गया है, उससे तो नहीं मानते 'जैसा वेदांती व्यापक पूर्णानन्द की कल्पना करते वैसा नहीं उसके बारे में तो कहा गया है 'ब्रह्म बड़ा की जहाँ से आया' इत्यादि। ४—कबीर पन्थी परमात्मा मानते हैं। परम्+आत्मा, परमात्मा। अर्थात् कल्याण स्वरूप को परमात्मा कहते हैं, वह शुद्ध चेतन जीव ही स्वस्वरूपस्थ होने पर कल्याण स्वरूप है। अर्थात जीव ही परमात्मा है। किन्तु सर्व व्यापक नहीं जड़ चेतन प्रत्यक्ष भिन्न धर्मी एक देशी अनादि हैं। ५—कबीर पंथी आत्मा मानते हैं। आत्म कहते हैं अपने आप को। सो अपना आप चेतन जीव ही है। गीताके तेरहवें अध्यायके बाइसवें श्लोक में आता है। उपद्रष्टा नु मन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।

परमात्मे चप्युक्तो देहेऽस्मिन पुरुष परः ॥ अर्थ-इस देह में रहते हुए भी चेतन पुरुष इससे परे है, द्रष्टा, प्रेरक, भरता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा है। इस प्रकार सत्य जीव के प्रभुता को स्वीकार करते हुए अन्य पौराणिक कल्पित गाथाका त्याग करते हैं। ६-इसी बात को सद्गुरु श्री कबीर साहेब पुष्ट करते हैं कि जीव ही सर्वश्रेष्ठ है। यथा—"बीजक वित्त बतावै, जो वित्त गुप्ता होय। ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥"
अविगति की गति काहु न जानी। एक जीव कित कहहु बखानी॥
दो०-जीव बिना नहीं आत्मा, जीव बिना नहिं ब्रह्म।
जीव बिना शीवो नहिं, जीव बिना सब भ्रम॥
साँचा शब्द कबीर का, प्रगट कहौं जग माहिं।
जैसा का तैसा कहै, सो तो निन्दा नाहिं॥

७-कबीर पन्थी स्वर्ग मानते हैं-सकल शुभ कर्मों का फल उदय होकर सबसे उत्तम सुन्दर मनुष्य-भक्त कुल में जन्म लेकर हंस गुण सम्पन्न धारण कर सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति, वैराग्य आदि सम्पूर्ण बोध भाव धारण हो-दैवी सम्पति सहित सकल शुभ गुण सम्पन्न सो जीवन्मुक्त रहन धारणकरके अनन्त जन्म के वासना क्षय कर अन्तिम में मुक्त दशाधारण सो स्वर्ग कहो या जीवन्मुक्त यही स्वर्ग मानते हैं।
नरक सो कौन घोर निज देही। तृष्णा त्यागि स्वर्ग सुख येही॥
इसके अतिरिक्त स्वर्ग लोक कल्पित है—
बैठा पण्डित पढ़ै पुरान। बिन देखै का करै बखान॥ वि०

८-कबीर पन्थी नर्क भी मानते हैं—जीव हिंसा व्यभिचारादि कर्म से नाना पाप भोग योनियों में शरीर धारण कर जीव हिंसादि-हिंसा होने कीजगह—वे हैं—लात, हात, दाँत, लाठी, शस्त्र आदि, झाड़ू, बहारु में। दाल, चावल, साक आदि में, लीपन, पोतनमें, लकड़ी आदिमें चूल्हे पर आगि जलाने कीजगह में जीव हिंसा होती है, इन सब जगह में होशियारी न करनेसे बहुत जीव मर जाते हैं, और दुःख पाते हैं, यहि पाप से नाना पाप भोग योनिमें जन्म लेके नाना दुःख भोगना ही नर्क है। पाप कर्मोंका फल नाना पाप योनियोंमें शरीर धारण कर असह्य दुःख भोगना ही नर्क मानते है। इन ग्रह से जीव को युक्ति पूर्वक बचा लेना भक्ति का मूल है। यथा—

नहिं कोई दुखसुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता॥

९-कबीर पन्थी भूत मानते हैं-जो चतुर महा भूतों से अनन्त वासना से बना हुवा शरीर को अपना करके मानते, अपने को बिसार देते, सोई भूत मानते भूत बने जो जीव हैं, सोई बनावै भूत। बिमल दृष्टि दै आपनी, कीन्हों जीव सपूत॥ कबीर पन्थी प्रेत भी मानते हैं जो जीवों को अनेक प्रकार के झंझट लगा के दुख देते, दुनियाँ में बेइमानी, ठगाई, घूस खोरी, अन्याई बलात्कार छल कपट तथा किसी प्रकार से जीव धारी गरीब जीवों को बिना अपराध दुख देते सोई जीव को प्रेत मानते हैं मछरी माँस कै भोजन बनावै, चुड़इल बैठि रसोइयाँ भूत प्रेत सब जेवन लागे, दनवाँ करैं बखनवां।" १०-कबीर

पन्थी करता को भी मानते हैं जैसे माता पिता संयोग द्वारा गर्भ में जीव वासना रूपी बीज लेकर जाता है, सोई बीज से तत्वो संयोग द्वारा अन्नत वासना रूपी मसला लेकर स्थूल शरीर बनता है,उसी वासना को करता कहते हैं वासना का सरूप ये है शब्द, स्पर्स, रूप, रस, गन्ध, चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार, यही सूक्ष्म शरीर या वासन को ही करता मानते हैं सोई करता है। जो कुछ मानते हैं चेतन को ही मानते, चेतन बिना कुछ नहीं होता। शरीर धारण करके पाप कर्मों को फल में नाना दुख भोगना ही नरक है। शुभ कर्मों के फल में आज तथा पुनर्जन्म में सुख भोगना ही स्वर्ग है किन्तु।

यहि तन कह फल बिषय न भाई।स्वर्गहुँ स्वल्प अन्त दुखदाई॥

इस प्रकार अन्य स्वर्ग सुख भी दुख रूपही है ॥रामा०॥

११—कबीर पन्थी नाना चेतन जीवों को स्वरूप से नित्य अवि-नाशी मानते हैं। कर्म वासना बस फल भोग तथा कर्म वासना त्याग से सदैव के लिये जीव का मोक्ष मानते हैं।

१२—कबीर पन्थी सत्संगादि को तीर्थ मानतेहैं तीर्थ वही जोकि पाप से तारत, पाप वही मन मध्य बिकारा। सो सत्संग तीरथ सत्य है। तदुगुण नाशत लागे न बारा॥ जिसके प्रमाण रामायण तथा समस्त शास्त्रों में भरे पड़े है।

जहाँ राम तहँ अवध निवासू। जहाँ सन्त तहँ तीरथ बासू।
मुद मंगल मय सन्त समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥

श्रोता त्रिविधि समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सन्त सभा अनुपम अधम, सकल सुमंगल मूल॥

१३–कबीर पन्थी मूर्ति पूजन मानते हैं। हाँ वे अवश्य चेतन मूर्ति ही पूजते हैं। जड़ मूर्ति नहीं ?

पूजा तीन भाँति की हेरी। प्रतिमा वैष्णव आतम केरी।
उत्तम आतम मध्यम साधू। कछु कनिष्ट प्रतिमा अवराधू॥

'दाना दार कबीर है, भूसा है संसार।
भूसा भूसा उड़ि गया, रहिगौ दानादार॥

तो क्या चेतन मूर्ति जड़ मूर्ति से भी गयी बीती है।

१४-परन्तु अन्य मत के जड़ मूर्ति पूजने के बिचारशील कबीर पन्थी अनुचित खण्डन नहीं करते। क्योंकि सामान्य जीवों के लिये वह भी धर्म की ओर प्रवृत्त कराने का साधन है। इसके अतिरिक्त सबकी योग्यता एक हो भी नहीं सकती। कोई नहीं मूली पाता है, तो मूली के पत्ता ही सही। किसी को जब तक विवेकियों का सत्संग नहीं मिलता, स्वरूप ज्ञान नहीं होता, तब तक कोई भी धर्म अंग लेकर चलने से अन्तकरण पवित्र होकर सत्संग का अधिकारी होता है। अतएव परम मतके मूर्ति पूजन पर कबीर पन्थियों का कटाक्ष नहीं है। १५-वास्तव में कबीर पन्थी सत्य को मानते हैं। सदगुरु श्रीकबीर साहेब का उपदेश है।

दोहा–साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच हैं, ताके हृदय आप॥

सत्य के समान तप नहीं, झूठ के सदृश्य पाप नहीं; जिसके हृदय में सत्य है, उसके हृदय में अपने आप चेतन की स्थिति है इसी को रामजी जावालिसे कहते हैं। सत्य मेवेश्वरो लोके, सत्य धर्मः सदाश्रितः। सत्यं मूलानि सर्वाणि, सत्यानास्ति परम्पदम्।

अर्थ-जगत में सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्यके ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है सत्य से बढ़ कर दूसरा कोई परम पद नहीं है। श्री गाँधी जी भी कहते हैं ईश्वर सत्य है, ऐसा कहने की अपेक्षा यह कहना युक्ति युक्त है कि सत्य ही ईश्वर है।

साखी-सबसे साँचा भला, जो साँचा दिल होय।
साँच बिना सुख नाहिना, कोटि करै जो कोय॥

प्रश्न—वृक्षों में चेतन जीव है कि नहीं।

उत्तर—कोई भी गुण धर्म बिना परीक्षा किये कैसे समझ सकोगे। अतः पारख प्राप्त करो।

जड़ चेतन दो वस्तु है, अति प्रसिद्ध जग माहिं।
इनकी पारख प्राप्ति बिन, बंधन छूटत नाहिं॥

वृक्षों में चेतन जीव नहीं है क्यों कि इसको हेतु श्रवण कीजिये॥ सतोष०॥

जहाँ जीव तहँ चेतन होई। दुख सुख सब विधि जानै सोई॥
जीव अजीवहिं करै बिचारा। जड़ चेतन जो है संसारा॥
जैसे उष्ण अनल को कर्मा। सदा शीत है जल को धर्मा॥

सूर प्रकाश भिन्न नहि होई। वैसे जीव धर्म चिद होई ॥
सकल पसारा जड़ को होई। पाँचो तत्व कहावै सोई ॥
जैसे केश उधमज है देहा। ऐसे अंकूरज पृथ्वी नेहा ॥
हरा सूखा जो शंका होई। ताकर भेद तुम लेहु बिलोई ॥
चिखुर बढ़ाये बहु बिधि बाढ़ै। अनल जराय छिन मोडारै ॥
लोहू चर्म है चिखुर अधारा। जल पृथ्वी अंकूरज को सारा ॥

अंकुरज भछै सो मानवा, माँस भछै सो श्वान।
जीव बधै सो काल है, सदा नरक परवान ॥
जीयत जीव मुर्दा करै, कर्महि भया कसाय।
मरही खाय चमरा भया, अधम कर्म के दाय ॥ पं० म०

जड़ तत्वों की पृथक पृथक गति और शक्तियाँ देख कर ही उनके सृष्टि-रचनात्मक का यथार्थ ज्ञान पाया जाता है। पृथ्वी के कणों में, जल के अणुवों में, अग्नि और वायु के परमाणुवों में स्वभाव से गति चलन क्रिया है जो साधक बाधक अन्यशक्तियों द्वारा निज निज शक्ति गति बढ़ती और रुकती रहती है। जड़ तत्वों के परमाणुवों में ही स्वभावतः, चलन गति है। अग्नि तृण को भस्म करती है। जल बस्तुवों को शीतल करता है। चुम्बक लोहा को आकर्षित कर लेता है। बत्ती तेल को खैंच कर ज्योति में भिड़ा देती है। उसमें वायु साधक होती है। चूना में पानी डाल देने से खौलने लगता है। बन्दूक में कितनी जोर से गोली का शब्द होता है। इन सब बातों से अनुभव हुआ कि निर्जीव पदार्थ भी भीतरी शक्ति द्वारा कहीं

गमन शील होते श्वासवत क्रिया भी करते, उनकी परस्पर वृद्धि भी होती, कारबन, आक्सीजन-गैस भी लेते छोड़ते जैसे लालटेन या कोयला कंकड़ आदिकों का बढ़ना, मुर्दावों का फूलना सड़ना आदि। उत्तेजन जहर आदि पदार्थों को लीलिये। जहाँ पीली छूही मिट्टी आदि की खानि होती है वहाँ वही वस्तु जनन उत्पत्ति प्राप्त होती है जो उसकी योग्यता में हो सके दूसरी नहीं। इस प्रकार जहाँ चेतन का मुख्य ज्ञान धर्म-सुख दुख मन त्याग ग्रहण न हो वहाँ जड़ तत्वों को ही कार्य जड़ जानना चाहिये जैसे सर्व बृक्ष जड़ हैं।

[पुनः जीव निर्जीव विचार]

जीवाजीव के लक्षणों को आप सब सुनें और निर्णय करें कि वृक्षों में जीव है कि नहीं जीव विज्ञान में लिखा है प्रथम सायंश मत से जीव लक्षण—जीवधारियों में कुछ बिशेष गुण मिलते हैं जिनकी सहायता से जीवित को निर्जीव बस्तुवों से अलग पहिचाना जाता है वे विशेष गुण तथा लक्षण निम्नलिखित हैं १-गति भीतरकी प्रेरणासे चलन शक्ति २-भोजनकी आवश्यकता ३ श्वासनश्वाँस लेना४ बृद्धि प्रत्येक जीवित वस्तु बृद्धि अर्थातउनमें बढ़नेकी शक्ति होतीहै ५ उत्तेजन शीलता अनकूल तथा प्रतिकूल प्रभावों का अनुभव करना, काँटा लगने पर हम तुरंत पैर हटा लेते हैं ६उत्सर्जन हानि कारक पदार्थोंको बाहर निकालनेके लिये शरीर में कुछ अंग होते हैं जिनके द्वारा वे शरीर के बाहर निक-

लते रहतेहैं इसको उत्सर्जन कहतेहैं ७ जनन जन्म देना कृषि और सरल विज्ञान में लिखा है- प्रमाण- हवा का यह वही भाग है जो हमारे रक्त को शुद्ध करता है इस गैस को आकसीजन कहते हैं पत्तियाँ श्वाँस लेने का कार्य दिन रात करती रहती हैं परन्तु ये खाना बनाने का कार्य रात में नहीं कर सकतीं इस लिये रात में पत्तियाँ केवल कारबनडाई आक्साइड एक अशुद्ध गैस है छोड़ती रहती, अब विचार करके न्याय तुला पर ठीक तौलना चाहिये, सब मान लें या कोई न मानें विद्वान मान लें या अविद्वान धनी मानी प्रतिष्ठित मानलें या निर्धन समूह, इन बातों से सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता ! सत्य कातो वस्तुके गुण लक्षण युक्त प्रत्यक्ष यथार्थ बोध से ही निर्णय हो सकता है। जैसे सूर्यका उसके प्रकाश तेज से सत्य का प्रत्यक्ष बोध होता है। अब बृक्षों में जीव मानने वाले का पूर्वापर विरोध की पूर्ण पारख करनी चाहिये। हवा के शुद्ध अंश कोआकसीजन अशुद्ध अंश अशुद्ध गैस को कार्बन डाई आक्साइड माना गया है सरल विज्ञान में कहा गया है पेंड़ पौधे अपने सभी अंगों से श्वाँस लेते हैं फिर दूसरी जगह में लिखा है अधिकांश जंन्तुवों में श्वाँस लेने के लिये विशेष अंग होते है, जैसे मछलियों में गलफड़े मेढकोंमें फेंफड़े तथा खाल, और मनुष्य में फेंफड़े। अब पाठक जन देखैं कि जब जंतुवों के लक्षणों में विशेष अंग माना-पाया-देखा गया-वैसे ही किसी भी बनस्पती बृक्षों में कहाँ प्रत्यक्ष है-कोई भी ज्ञानी विज्ञानी बृक्षों में बिशेष अंग गलफड़े फेफड़े आदि नहीं दिखा सकते तब उनमें

जीव मानना ही पक्षपात की बात है रही बात दो गैसी की, तो सुनिये-केवल दो प्रकार के गैस मात्र से चेतना शक्ति नहीं सिद्ध हो सकती क्योंकि धुवाँ रूपी कार्बन निकालते हुये ज्योति रूपी आक्सीजन लेते हुये, ज्योति कटती हुई प्रत्यक्ष दीपक में भी पाई जाती है किंतु उसमें जीव होना कोई ज्ञानी विज्ञानी नहीं मान सकता अन्तरसे बढ़नेकी बातमेंतो कंकड़ आदि निर्जीव धातुयें भी बढ़ती रहतीं, ऐसे ही-धरती फूल (कुकुर्मुत्ता' जिसे कहते हैं वह सड़ गल काष्ठ गोवर की जगहों में दृश्य होते खुली छतुरी के जैसे थोड़ा बढ़कर रुक जाते इससे सिद्ध हुवा कि निर्जीव पदार्थ भी बढ़ते जीव बिहीन मुर्दा भी फूल जाते सड़ते प्रत्यक्ष दृश्य गोचर हैं। प्रथम वाइ लोजी (जीव विज्ञान) में लिखा है पाँचवीं उत्तेजन शीलता-इसका अर्थ यह है कि अनुकूल प्रतिकूल का अनुभव करना वृक्षों में अनुकूलता का ज्ञान होता' तो वे भी शत्रु को दूर से देख कर कँप जाते बदला लेते और अनुकूलता को दूर से देख हर्षित हो हँसी या फुल्ल बदन दिखाई देते। ऐसा तो नहीं हैं, फिर कैसे अनुभूति ज्ञान माना जाय फिर अनुभूतिज्ञान करने के साधन भी होते हैं कि जैसे जन्तुवों में होते हैं पाँच ज्ञानेन्द्री पाँच कर्म इन्द्री-ऐसा वृक्षों में किसने देखा, आप देखे हैं तो बताते क्यों नहीं-

दोहा-बड़े बड़े बृक्षन सब लखैं, इन्द्री परैं न देखि।
कहाँ छिपाये वे रहैं, करौ विचार तिसेखि॥

श्री काशी साहेब निपक्ष सत्य ज्ञान दर्शन में निर्णय किये हैं- वृक्षादि फूटना और बढ़ना गुमड़ा होना इत्यादि एक का दूसरे पर कलम बँध जाना तिन पर बाँदा होना इत्यादि जल में स्वयं शक्तियाँ हैं। इसलिये वृक्षादि स्थावर खानि देहधारी अनेक जीव नहीं, जहाँ सुख दुःखादि जानना धर्म, जाग्रत स्वप्न और सुसुति ये तीन अवस्थायें, इन्द्रियों द्वारा चलन बोलना आदि क्रियायें और इच्छा अनिच्छाआदि शक्ति प्रगट है, वहाँ ही चैतन्य जीवों का निवास है। ऐसा देहधारी जीवों का अनुभव सिद्ध लक्षण है परन्तु इन सबों का अभाव रहने से वृक्षादि स्थावर खानि केवल तत्व रूप जड़ हैं। सत्संग या भवयान के तेरहवें पाठ जड़ जेतन निर्णय में इसका विशद विवेचन देखिये।

प्रतिमा कृत्तिमके आधार से सिद्धांत समझना अंगुलि चन्द्रन्याय

कुण्डलिया छन्द—

टकरे मकरे मनुज इक, विविध तमासा चाह।
एते महँ सन्मुख भयो, भेंड़ादास मनाह॥
भेंड़ा दास मनाह, कह्यो टकरे मकरे से।
हमरे पीछे आव, रचूँ तब खेल घरे से॥
अस कहि भेंड़ादास वह, घहु रुपिया बनि लाह।

दोहा—दुखई नगर में भ्रमत, भेंड़ादास के संग।
दुख पायो शोध्यो परख, थीर भयो गुरु रंग॥

एक टकरे मकरे मनुष्य था, उसे बहुत-बहुत तमासा देखने

की लालसा उत्पन्न हुई कि इतने में भेंडादास नामक बहुरूपी मनुष्य उसके सामने आखड़ा हुआ [देह सब मनुष्य से मुख भेंडा के समान था, अतः उसका नाम भेड़ादास था] ऐसा मन रूप भेड़ादास टकरे मकरे से बोला-आप हमारे पीछे पीछे शीघ्रता से चलते चलिये। नये नये खेल मैं अपनी शक्ति से आपको दिखलाऊँगा। ऐसा कह के वह भेड़ादास पग पग में बहुत बहुत रूप धारण किया। एक पग में साँप, दूसरे पग मैं पुनः बीछी नर्दहा के कीड़े-गदहा-पशु-पक्षी, आदि पग पग में यानी क्षण क्षण में अखिल चार खानियों की देहों को स्वाँग दिखाते जाय और आप भागते जाय, साथ ही टकरे मकरे भी दौड़ रहे हैं टकरे मकरे को भेड़ादास की अत्यन्त ममता हो रही है। पुनः टकरे मकरे ने पूछा–भेड़ादास तुम कहाँ—दौंड़ते चले जा रहे हो ? भेड़ादास बोले–मेरे नगर का नाम है" दुखई नगर। वहाँ ही मैं जा रहा हूँ" इतने कहते कहते ही दुखई नगर का फाटक आ गया। फाटक आते ही टकरे मकरे देखते क्या हैं कि भेड़ा दास हमारे भीतर अदृश्यसा हो रहा है इतने में टकरे मकरे ने उस दुखई नगर के फाटक पर अगणित जीवों के बालक-जवान वृद्ध सब अवस्था और सब अवस्थाओं के व्यापार रूप कारखाना देख रहा है। देखते देखते स्वयं टकरे मकरे का भी शरीर बदल कर बालक बन रहा है धूल धाल के नाना खेल कूद में आगे गुल्ली डंडा-चकई-भौंरा लुक-लुकवा-कबड्डी आदि खेल करते करते स्वयं हृष्ट पुष्ट जवान हो रहे हैं अतः खेल खूद की जगह

कामाग्नि हृदय में धधकने लगी टकरे मकरे ने बड़े प्रयत्न से स्त्री प्राप्त किया। नट मर्कट कुत्ते और गदहे के समान निःशंक हो टकरे मकरे चर्म संघर्षण में अपनी जवानी खो कर बूढ़े हो रहे हैं। बूढ़े के सब दुर्दशा सहते हुये अंत में मृत्यु होकर दुखई नगर के भीतर प्रवेश हो रहे हैं। अहो! उसके भीतर प्रवेश होते ही नरक का दुख उसके आगे अल्प जानने में आ रहा है। गर्भ या देहाभिमान रूप पीव रक्त मल मूत्र के समुद्र में डुबाये जाना, काम क्रोधादि रूप मुगदर ऊपर से खाना, प्रतिकूलता रूप अग्नि कुण्ड में हमेशा जलना, युवावस्थादि तरवार की धार पर चल-चल के नाना संकट झेलते हुये क्षण क्षण में बाल यौवन मृत्यादि दशा को प्राप्त होकर समग्र संसारिक कष्टों को पाना, स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म वासनाओं से फिर स्थूल देह धारण कर तन मन के सब दुखों को भोगते रहना ही दुखई नगर के भ्रमण करने का फल टकरे मकरे को प्राप्त हुआ। टकरे मकरे सब दुर्दशाओं को भोगते हुये भेड़ादास से बोले-दुख छूटने का कोई उपाय है? अहो! इसमें तो हमने अनंत असह दुख पाये उससे छूटने की आधार कौन है? भेड़ादास ने ईश्वर के शरण जाने को बताया टकरे मकरे वेद प्रतिपादित कर्मोपासनादि से ईश्वर साक्षात करते करते ही दुखही नगर का सरूप ही विराट रूप या सर्व व्यापक या सर्व रूप मानकर फिर उसी दुखई नगर में बेचारा पड़ने लगा। पुनः दुख निवृत्यार्थ एक अद्वैत बाद ग्रहण किया जिसमें बीज वृक्षवत एक ब्रह्म दुखई नगर का सरूप ही

ठहरा। पुनः जड़वाद विज्ञान कल्पित बाल बुद्धिवाद ग्रहण किया वो तो किंचित भी दुखई नगर से पृथक नहीं। वो तो सरासर चर्मेन्द्रियों को अपना स्वरूप मान कर गोबरौरा कीड़ा के समान पंच भोगासक्त होकर दुखई नगर में आते जाते रहते हैं। पुनः टकरे मकरे ने सोचा कि अहो! ईश और ब्रह्म तथा प्रकृतिवाद से भी मैं इस दुखई नगर से नहीं बच सका। अहो? और कौन उपाय? इस दुखई नगर से छूटने का है। और इससे बिना छुटकारा पाये कहाँ कुशल? चैन? विश्राम!!! ऐसा सोच विचार करते करते भेड़ादास का चरित्र ही मेरे सब दुःख का कारण है, यह विचार आते ही टकरे मकरे भेड़ादास के तरफ से अपनी सूरत पलट कर फिर विचारने लगे कि कौन सी चीज अमृत है? विचारते-विचारते एका एक टकरे मकरे को गुरु ऐसे पवित्र नाम और उनके गुण लक्षण, सब जानने में आ गये। अपनी ही ही सब कल्पना समझने में आ गयी और अपना आप शुद्ध चैतन्य सब से गरिष्ठ पद भ्रम नाशक सर्वोपरि है ऐसा निश्चय होते ही भेड़ादास और दुखई नगर क्षणमात्र में जागृत होने पर जैसे स्वप्न बिला जाता है तैसे दुखई नगर का सब तमासा खतम हो गया। और टकरे मकरे सर्व दुख द्वन्द रहित सदा के लिये एकरस सुखी अटल हो गये। सिद्धांत—नाना मन मानन्दी करके विषयों में टक्कर मारने वाला यह जीव भी टकरे मकरे है। यह भेड़ादास बहुरूपिया खानी बानी की मनोवृत्ति रूपी मन मानन्दी है। मनुष्य, पशु पक्षी कृमि आदि चार राशियों में

बारम्बार तन धर धर के अपार कष्ट भोगना यह भेड़ादास रूपी कुसंग का परिणाम है। टक्कर खाना मक्कर ढोंग कपट पाखंड इर्ष्या राग करना जीव का स्वभाव स बन गया है। किन्तु जड़ दृश्य से पृथक स्वरूप होने के कारण शुभ संस्कार-दुखों के टक्कर से स्वरूप दृष्टि प्राप्त हो जाती है तब जीव परम पद को प्राप्त कर लेता है। अतः शुभ संयोग की योग्यता भिड़ाते रहने का परम पुरुषार्थ करना ही बुद्धिमानी है।

दृष्टान्त—एक घर में दो भाई थे, दोनों बड़े शीलवान थे, कभी किसी से कठोर बर्ताव नहीं करते थे। एक दिन दीवारके बड़े ताक में घी की हण्डी रक्खी थी। उसे बड़ा भाई उतारकर छोटे भाई को पकड़ाने लगा। हण्डी देते-लेते में दोनों के हाथ से छूट कर जमीनमें गिर कर चूर्ण हो गई। घी सब माटी में मिल गया। यह बात देख कर देने वालेने कहा–भाई दुखी न होवो। हमसे देते ही न बना। तब तक लेने वाले ने कहा—देखिये बड़े भ्राता, आपसे देते तो बना हमसे ही लेते न बना, अतः मेरी भूल की माफी मिले। बड़ेने कहा—भाई तुम्हारी भूल हो तो माफी मिले। भूल-चूक तो मेरी है। अतः अब क्या हो सकता है? आगे से सम्हल कर काम करेंगे, जिससे खता न होने पावे। देखिये यह शील का एक लौकिक दृष्टान्त है। अगर सच्चा शील हो तो अपनी ही भूल-चूक नजर में आकर दूसरा कैसा भी कोई क्यों न हो उसके साथ कठोरतासे बर्तनेका कोई हेतु ही नहीं रह जाता। शीलबर्तावके लिये वाक्यमें बड़ासंयम रखनाचाहिये।

[संसार में सबसे बड़ी बात]

दृष्टान्त—एक राजा ने अपने मंत्री के मरने के पश्चात् नियमानुसार मंत्री के लड़कों के पढ़ाने का पूर्ण प्रबन्ध कर मंत्री के स्थानापन्न दूसरा मन्त्री उस समय तक के नियत किया जब तक कि पूर्व मन्त्री के लड़के पढ़ लिख कर योग्य न हो जायँ। कुछ काल के पश्चात् जब पूर्व मन्त्री के लड़के पढ़ लिख कर योग्य हुये तब इस स्थापन्न मन्त्री ने ९६ सहस्त्र मुद्रा पूर्व मंत्री के नाम राजा के खाते में डाल दिया, और जब राजा पूर्व मन्त्री के लड़कों को मन्त्री पद देने लगे, तब इस मन्त्री ने राजा के सामने खाता ले जाकर रख दिया और कहा—"अन्नदाता इन बच्चों के बाप के नाम ९६ सहस्त्र मुद्रा आप का पड़ा हुआ है, जब तक यह सम्पूर्ण रुपया आपका न चुका दें तब तक यह पद इन्हें न दिया जावे। राजा की भी समझ में ऐसा ही आ गया, राजा ने लड़कों से कहा—जब तक तुम हमारा सब रूपया न दे दोगे तब तक तुम्हें यह पद न मिलेगा। पूर्व मन्त्री के लड़के बड़े चतुर और बुद्धिमान थे। अतएव बच्चों ने कहा—श्रीमान् यदि हमें मन्त्री पद नहीं दिया जाता, तो जब तक हमें कोई दूसरा काम दिया जावे, जिससे हमारे पेट का पालन हो और आपका रूपया भी पटे। राजा ने बच्चों की प्रार्थना सुनकर एक बच्चे को अपनी ड्योढ़ी पर दरबानी का काम और दूसरे को बगीचे में माली का काम दे दिया। बच्चे बहुत दिन तक यह काम करते ही रहे। परन्तु इन कामों में बच्चों को वेतन उतना

ही मिलता था कि जिससे उनके पेट का पालन हो सके। अतः लड़कों ने सोचा कि इस प्रकार से तो हम लोगों से ९६ सहस्र रुपिया नहीं दिया जा सकता है और न मन्त्री का पद ही मिल सकता है। इसलिये कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये कि जिससे राजा के ऋण से शीघ्र उऋण हो मन्त्री पद प्राप्त करें। अतः लड़कों ने आपस में कुछ सम्मति कर दूसरे दिन जब राजा साहेब बाहर निकले, तो बड़े लड़केने जो दरवान बना था, उसने राजा से पूछा—महाराज! संसार में सबसे बड़ी चीज क्या है? राजाने कहा मैं इसका उत्तर कल दूँगा। दूसरे दिन राजा ने प्रातःकाल दरबार में आते ही इस बात को सम्पूर्ण सभाके लोगों से पूछा—भाई, सभा के लोगो! संसारमें सबसे बड़ी चीज क्या है? किसी ने कहा—अन्नदाता! सबसे बड़ा हाथी। किसी ने कहा—ऊँट किसी ने कहा—सबसे बड़ा खजूर। किसी ने कहा—सबसे बड़ा झाड़। किसी ने पहाड़, किसी ने रुपया, किसी ने बल। ये सब उत्तर राजा ने दरवान को दिये, पर दरवान ने इनमें से एक को भी न माना। जब राज्य के सम्पूर्ण मनुष्य उत्तर दे चुके, तब राजा ने सोचा कि अब केवल हमारे बगीचे का माली शेष है, उसे भी बुलाकर पूछना चाहिये, देखें वह क्या उत्तर देता है? अतः राजा ने पूर्व मंत्री के छोटे पुत्र माली को बुलाकर पूछा—संसार में सबसे बड़ी चीज क्या है? उसने कहा यदि मेरे बाप के नाम से ३२ सहस्र रुपया काट दिया जावे तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे दूँ। माली की यह बात सुनकर राजा तथा

सम्पूर्ण सभा के लोग चकित हो गये। अन्त में राजा ने कहा तुम्हारे बाप के नाम से ३२ सहस्र रुपया काट दिया जावेगा, तुम बताओ कि संसार में सबसे बड़ी चीज क्या है ? मालीने कहा संसार में सबसे बड़ी चीज है बात। यह उत्तर सुन राजा के भी मन में निश्चय हो गया कि ठीक है और दरवान ने भी मान लिया। पुनः दरवान ने पूछा—महाराज ! सबसे बड़ी चीज बात तो है पर वह रहती कहाँ है ? राजा ने फिर दरवान से यही कहा मैं इसका उत्तर कल दूँगा। और राजा ने सभा में आकर उसी भाँति पूछा—संसार में सबसे बड़ी चीज बात तो है पर वह रहती कहाँ है ? किसी ने कहा—अन्नदाता ! धनवानों के पास। किसी ने कहा बलवानों के पास। किसी ने कहा विद्वानों के पास। राजाने पूर्व की भाँति ये सब उत्तर दरवान को दिये पर दरवान ने एक भी उत्तर स्वीकार न किया। पुनः राजा ने बगीचे से माली को बुलाकर यह प्रश्न किया—संसार में सबसे बड़ी चीज बात है, पर वह रहती कहाँ है ? इसने कहा—महाराज ! ३२ सहस्र फिर निकालवा दीजिये। राजा ने यह सुन तुरन्त ही आज्ञा दी आप उत्तर दें ३२ सहस्र और निकाल दिये जावेंगे। माली ने उत्तर दिया—संसार में सबसे बड़ी चीज बात है और वह रहती है असिलों के पास। उत्तर सुनकर राजा के समझ में आ गया और दरवान को यही उत्तर दिया, दरवान ने भी स्वीकार किया। पुनः दरवान ने राजा साहिब से प्रश्न किया—संसार में सबसे बड़ी

चीज बात, रहती तो है असिलों के पास और खाती क्या है ? राजा ने कल का वादा कर पुनः जाकर दूसरे दिन अपनी सभा में यह प्रश्न किया, प्रश्न सुनकर सब सभा चकित हो गई, कुछ समय तक सबके सभी मौन साध गये, पश्चात् कुछ आदमियों ने सलाह कर कहा—महाराज ! कहीं बात भी खाया करती है? राजा ने माली को बुलाकर कहा—संसार में सबसे बड़ी चीज है बात, सो रहती असिलों के पास और खाती क्या है ? इसने कहा—३२ सहस्र रुपया जो मेरे पिता के नाम बाकी है यदि वह भी कटा दें, तो मैं बता दूँ कि वह खाती क्या है ? राजा ने उसी समय स्वीकार कर कहा—आप उत्तर दीजिये। इसने कहा महाराज ! संसार में सबसे बड़ी चीज बात है, जो रहती है असिलों के पास, पर खाती है गम। राजा ने मान लिया और यही उत्तर दरवान को दिया, दरवान ने भी मान लिया। फिर दरवानने राजासे प्रश्न किया संसारमें सबसे बड़ीचीजहैबात रहती है असिलों के पास और खाती है गम, पर करती हैं क्या ? राजा ने फिर भी कल कहकर दूसरे दिन अपनी सभा में यह प्रश्न किया। सभा के लोग थोड़ी देर तो चुप रहे और फिर बोले—महाराज ! बात भी कहीं काम किया करती है ? राजा ने पुनः माली को बुलाकर उत्तर पूछा। उसने कहा—महाराज ! अबकी बार हमारे पिता का मंत्रीपद हम दोनों भाइयों में से किसी को दिया जावे, क्योंकि आपका ऋण भी पट गया और यह मंत्री जो मेरे पिता के स्थान पर है इसने मेरे पिता के नाम

९६सहस्त्र रुपया बिलकुल झूठा डाला है, इसलिये इसे कठिन दण्ड दिया जावे, तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे सकता हूँ। राजा ने सच्चा हाल समझ कर स्वीकार किया और कहा—आप उत्तर दीजिये! ऐसा ही होगा। माली ने कहा—महाराज! संसार में सबसे बड़ी चीज है बात, और वह रहती है असिलों के पास खाती है गम तथा करती है वह वह काम जो धन, बल, विद्या, किसी से न हो सके, राजा ने उत्तर स्वीकार किया और इन बच्चों को मंत्रीपद देदिया झूठे मंत्रीको कठिन दण्ड दिया।—इस पर कबीर साहेब ने कहा है

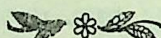
दोहा—शब्दै मारा गिर पड़ा, शब्दै छोड़ा राज।
जिन्ह जिन्ह शब्द विवेकिया, तिनका सरिगौ काज॥
बोली तो अमोल है, जो कोइ बोले जान।
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन॥

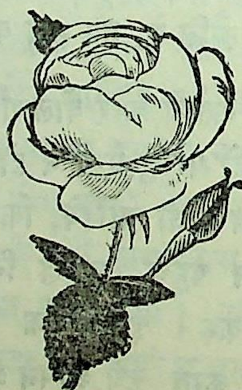
सारांश—अपने कर्तव्य और बोलचाल से चाहिये तो सब को सुख पहुँचे, हित हो परन्तु ऐसा न हो सके तो कम से कम इसकी तो फिक्र अवश्य होनी चाहिये, कि किसी की हानि या दुख हमारे ओर से न पहुंचे—पारख निष्ठ श्री पूरण साहिब 'सकलो दुर्मति दूर करु। इस बीजक साखी टीका में सत्य विचार धैर्य का वर्णन करते हुये आपने शील लक्षण में बताये कि फिर शील तत्व लेके सकल व्यवहार करने लगा, मृदु-मीठा वचन सबसे बोलने लगा, शील सकल सुख की खानि सकल दुख

सुख वर्तमान में जो बर्ते सो सहन करना और उसमें आसक्त न होना, आसक्त न होते सबसे मीठे रहना सोई शील। धन्य-धन्य ऐसे वचन को मनन करके अवश्य धारण करना चाहिये।

शिक्षा—छन्द—

हर्ज खर्च कुछ नाहीं, शील मिलाहीं क्यों न गेह बड़ भागी।
क्या तब जावै सब गुन आवै सुन्दर सुयश सुभागी॥
गुरु समयम आखी, तुम बड़ साखी, जीवन प्राण पियारे।
किहि विधि गुण गाऊँ का समझाऊँ, तुम सब जानन हारे॥१॥





सदगुरवे नमः

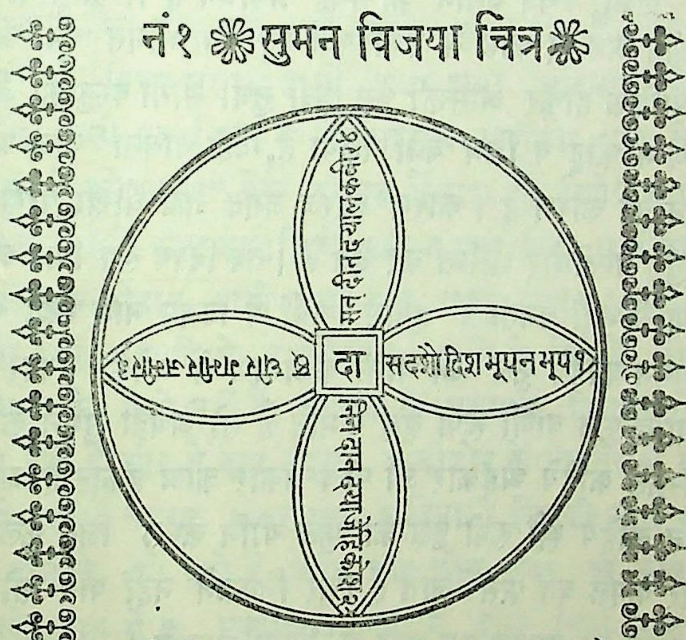
अध्याय-१५

पारखी संत महरम साहेब की बानी ।

निम्न लिखित ये पाँचो चित्र । अर्थ भाव समझैं जे मित्र ॥
पुनि सुधार लेंगे जो चरित्र । अवश्य होंय वे जीव पवित्र ॥

सद्गुरु विशाल साहेब के शिष्य महरम दास जी कृत ।

नं १ ❋सुमन विजया चित्र❋



छन्द—दास दशौ दिश भूपन भूप।पभू न पभू शदि शौद सदा।
दाछ मधीर गंभीर जमीर । रमी जर भीगंर धीम छदा ॥ १ ॥
दानिन दान दया जेहि कोश । शकोहिजे यादन दान निदा ।
दासन दीन दयाल कबीर । खीकल याद न दीन सदा ॥२॥

॥ टीका सुमन चित्र ॥

सद्गुरु बन्दीछोर उर, टीका करिये गौर ।
कृपा दृष्टि वर कीजिये, ममता घुसै न और ॥१॥
सूध न उलटो बाँचि ये, अर्थ एकही खान ।
नाम गतागत पाइये, सीखो गुरु से जान ॥२॥

शंका, चित्र बनाने का क्या प्रयोजन है ॥ सामाधान ॥ ये जीव अनादि काल से पंचविषयों का भोग भोगते चला आया है आशिक होकर आसक्ती बस देखी सुनी भोगी बस्तु को अतः-करण में फोटू व चित्र बना लिया है, वही वासना बीज अवा-गवन का कारण है । कारण कारज जगत ब्रह्म धोखा परखा के सद्गुरु बन्दीछोर शांन्ति कर देते हैं । तब विषय रूप चित्र अंत:-करण में नहीं बनता है इसीसे चित्रों में बिजय नाम रखा गया है सुमन कहिये फूल जो वानी के प्रमाण से अनेक प्रकार के स्वर्गादि फूल वाणी रूपी बृक्ष में माने हैं सो अथवा सुमन कहिये फूल-फूल कहिये अहंकार जो पाँच प्रकार कात्र हंकार है अथवा सुमन कहिये स्त्री रूपी बृक्ष का फूल योनि कमल जिन फूलों में भ्रमर कमल वत फँस जाते हैं फिर निकलने नहीं पाते सो इन से बचने का उपदेश इस छन्द में किया गया है ।

॥ छन्द मूल ॥

दास दसौ दिस भूपन भूप पभूनपभू सदि सौद सदा ॥

टीका—दास दसौ दिस भूपन भूप उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम नैऋत्य वायब्य अग्नेय ईशान आकाश पाताल के बीच

में जो देहधारी जीव हैं सो माया कल्पना अनुमान के दास हैं सद्गुरु के दास कोई विरले हैं। भूपनभूप भूप कहिये राजा भूपन के भूप कहिये बादशाह सो भी माया कल्पना अनुमान के दास हैं सदगुरु के नहीं पमून भूप वोमालिक नहीं हो सकते हैं जिन को स्वरूप का बोध नहीं है। सदि सौद सदा ॥ सदि जिनको कोई काल में नाश नहीं है सो चेतन अजर अमर अविनासी है। सौद सदा। सौ कहिये मुर्दा को जिनकी सब प्रकार की विषय मर गई है सो अजर अमर अविनासी चेतन पद को यानी पदार्थ प्राप्त हैं सोई सद्गुरु बन्दीछोर जड़ चेतन की ग्रन्थी खोलने वाले ऐसे सद्गुरु हैं सदा के लिये" दानिन दान दया जेहि कोस सकोहि जे याद न दान निदा ॥ टीका ॥ पृथ्वी दान गोदान हाथी घोड़ा दान कन्या दान सुवर्ण दान विद्या दान इत्यादि ये दान ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये हैं जीवके कल्याण के लिये नहीं हैं, क्योंकि ये नासमान बिजाती छूट जाने वाले हैं और ये दान सद्गुरू बन्दीछोर के पटतर में कोई दानी नहीं हैं सद्गुरू अजर अमर अविनासी जिसकी नास नहीं ऐसे दान के देने वाले हैं दया जेहि कोस, दया का खजाना जिनके पास में है, सकोहि जे याद न दान निदा सकोहि जिन्होंने सद्गुरू बन्दीछोर से शक करते हैं इतबार नहीं है सतगुरु के सनमुख नहीं है बल्कि पीठ फेरी है सद्गुरू के बचनों को इतबार नहीं रखते हैं सो नादान है निदा फारसी में शब्द को कहते हैं सो शब्द है तो शब्द मात्र के गुलाम हैं शब्दी चेतन

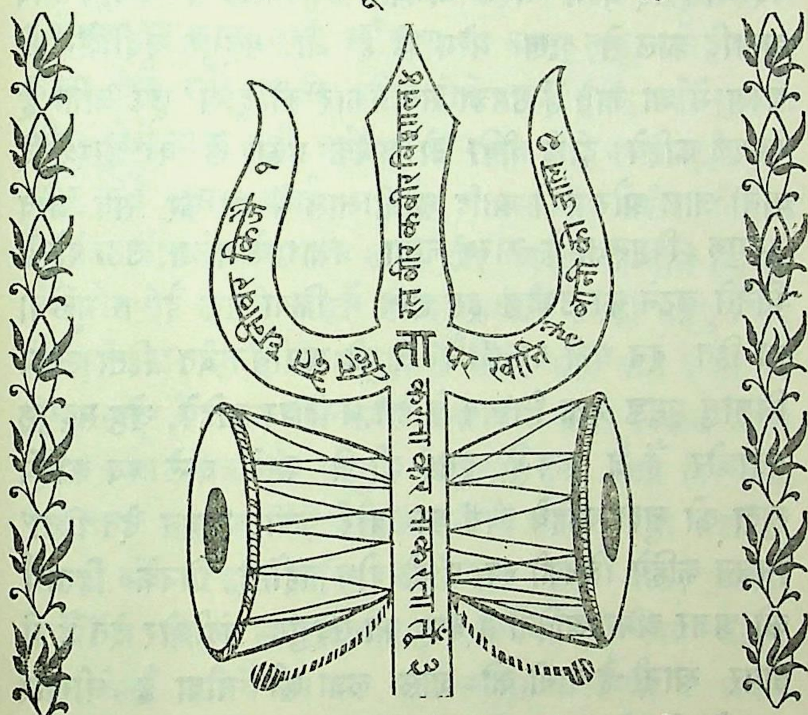
का बोध नहीं है सो नदान चौरासी के पात्र हैं दाछम धीर गंभीर जमीर रमीजर भींगर धीम क्षदा "टीका दया क्षमा सत्य धीर्य विचार विवेक वैराग्य गुरुभक्ती के सम्पन्य सद्गुरु हैं गंभीर अचल जमीर अंतः करण के जानने वाले रौशन जमीर हैं जर कहिये निरंतर भीतर बाहर एकरस हैं भींगर दूसरे कीट को पकड़ लाता है उसके पर को काट डालता है तब अपना शब्द सुनाता है जब शब्द सुनकर ग्रहण कर लेता है तब भृंग ही हो जाता है तैसा ही सद्गुरु बन्दीछोर का मंत्र उपदेश शिष्य ग्रहण कर लेता है तब सद्गुरू का स्वरूप ही बन जाता है धीम बुद्धी निर्णय रूप धीम आहिस्ते शांति के साथ में छदा कहिये उपदेस क्षद कहिये मुखारबिन्द से उपदेस सद्गुरु बंदीछोर करते हैं निर्णय के सहित जड़चेतन की ग्रंथी खोलने के वास्ते।

दासन दीन दयाल कबीर रवीकलयाद न दीन सदा ॥ टीका ॥ दासन मुमुक्षु भक्तन के दयाल कबीर काया बीर रवीकल यादन दीन सदा, रवी कहिये सूर्य वत ज्ञान कल अज्ञान अंधकार के नास करने वाले हैं सद्गुरु बन्दीछोर का ज्ञानसूर्यवत है क्यों कि सूर्य के उदय होने पर तारागण छिप जाते हैं जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दुर्वेश ब्राह्मण इनका सिद्धांत शब्द मात्र है शब्द जड़ है शब्दी चेतन को नहीं जानते हैं इसी से तारागणवत है सूर्य के उदय में तारागण छिप जाते हैं, सद्गुरु बन्दीछोर का उपदेश जो ग्रहण कर लेता है वह ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा करता धरता पारब्रह्म, खुदादि,देवता, सुइयाँ, भवानी, भूतप्रेतादि भ्रम मात्र

मानन्दी मात्रमिथ्याहै "यादन दीन सदा" सदगुरु वन्दीछोरका उपदेश ग्रहणकरनेवाले संत गुरु चैतन्यके सिवाय और किसीके दीननहींहोतेहैं

॥ इति अर्थ सुमन विजय चित्र ॥

नं २ ❋ त्रिशूल विजय चित्र ❋



छं०- ता हित देन धनीवर कीजै, जै की खनी धन देत हिता ।
तापर खानि है बानीको जाल, लजाको नीवा है निखारपता ॥
ता करता करता करता तूँ, तू तारक तारक तारक ता ।
तारत बीर कबीर विशाल, लशा विर बीक रबी तरता ॥

त्रिशूल विजय चित्र का अर्थ–ध्याता ध्यान ध्येय ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय कर्त्ता कर्म क्रया प्रमाता प्रमण प्रमेय अध्यात्म अधिदैव अधिभूत मल विक्षेप आवर्ण देहिक दैविक भौतिक वात पित्त कफ रजोगुण सतोगुण तमोगुण काल संधि झाँई तत्त पद त्वं पद असि पद जन्म मरण गर्भवास ये त्रिशूल से अबोध जीव अनादि काल से दुःख भोग रहे हैं जो सद्गुरु बंदीछोर की शरण में आ जाते हैं उसका सब प्रकार का दुःख छूट जाता है त्रिशूल कहिये दुःख पीड़ा जो अनेक प्रकार के वेद शास्त्रादि वानी जाल और स्त्री आदि खानी जाल में पड़ कर सब जीव सदगुरु विमुखता के कारण नाना प्रकार के क्लेश उठा रहे हैं तिनसे छूटने का उपदेश इस छन्द में किया गया है ॥ मूल ॥ ता हित देन धनी बर कीजै जै की खनीधन देत हिता टीका जिज्ञासु मुमुक्ष भक्त शिष्यन के हेत धनी बर कहिये, श्रेष्ठ सदगुरु वंदीछोर हैं जै रूप हैं दूसरे की जै करने वाले रब कहिये खुदा को खुदा कहिये स्वयं कायावीर कबीर निधन देत हिता' निधन कहिये जिनको स्वरूप को बोध नहीं है तिनके हितार्थ को अजर अमर अविनाशी वस्तु को सद्गुरु बंदीछोर देते हैं ॥ तापर खानी है वानी को जाल लजा की नीचा है नीखार पता ये जीव के ऊपर दो जाल फँसाने के लिये बहुत भारी हैं एक स्त्री पुत्रादि दूसरा गुरुवा मिथ्या बानी जाल में फसाने वाले हैं अब सदगुरु कहते हैं मैंने खानी जाल और वानी जाल को परखा दिया हूँ अब इसकी लज्जा तुम्हारे हाथ में है सद-

गुरु के वचन पर पुष्ट हो जावोगे तो निखार पता निखर कहिये विषय रूपी खार काँटा से रहित और निखर कहिये जैसे धोबी कपड़ा को निखार डालता है तब मल से रहित स्वच्छ हो जाता है तब स्वास्वरूप को पता लग जाता है॥ताकर ताकर ता करता करता तू तू तारक तारक तारक ता॥ टीका॥ रजोगुण का करता तूही, सतोगुण का करता तुही, तमोगुण का करता तुही, रजो गुण से रहित होने वाला तुहीं, सतो गुण से रहित होने वाला तुही, तमोगुण से रहित होने वाला तुही, तेरे ऊपर कोई दूसरा कर्त्ता नहीं है "तारत वीर कवीर विशाल लसाविर वीक रवी तरता" तारत वीर कवीर जिन्होंने सद्‌गुरु बंदीछोर से छल से रहित प्रीति करते हैं उनको सद्‌गुरु भव सिन्धु से तार देते हैं जो सद्‌गुरु से प्रीति करने वाले हैं वो भी वीर बहादुर हैं तारत वीर कवीरकाया वीर कवीर विशाल मलसे रहित स्वक्ष पवित्र ऐसे सद्‌गुरु बंदीछोर हैं। लशा विर वीक रवी तरता सद्‌गुरु बंदीछोरके चरणों में लसने वाला लशाविर विषयों की तरफ से साविर कहिये सब्र करने वाला अथवा विषयों से विमुख संतोषी वीक कहिये बैयत को बैयत कहिये चेला, चेला कहिये तन मन धन सद्‌गुरु के चरणों में अर्पण करने वाला रवी तरता ऐसे शिष्य का ज्ञान सूर्यवत् विषय रूपी अँधकार को नाश कर देता है। तरता संसय रूपी समुद्र से पार हो जाता है सद्‌गुरु बंदीछोर का स्वरूप ही बन जाता है॥ इति त्रिशूल विजय का अर्थ समाप्तः।

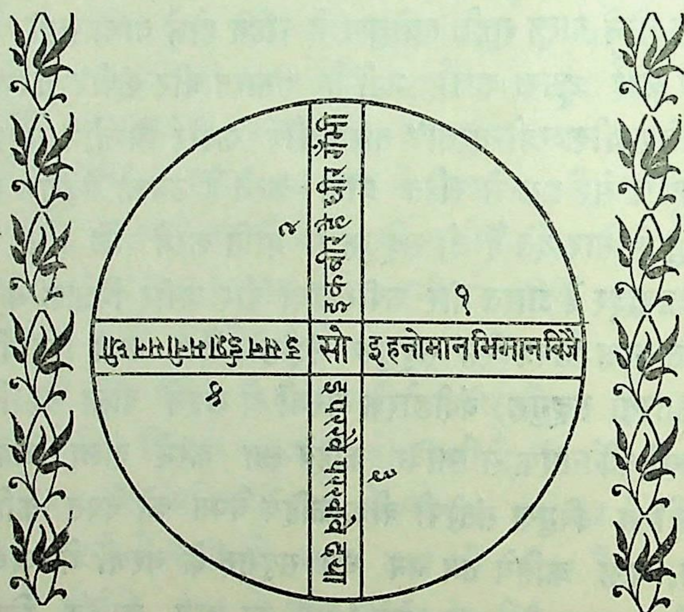
प्रश्न—पारखी संत महरम साहेब कृत प्रश्नोत्तर।

क्या करतेहो ?क्या धरते हो ? क्या जानते हो ?क्या मानतेहो।

उत्तर— चौपाई

जड़ चेतन की निर्णय करते। दया विचार हृदय में धरते ॥
जड़ के बाद चेतन को जानत। संत गुरुवर गुरु को मानत ॥

नं ३ चक्र विजय चित्र



सवैया छन्द—

सोइ हनोमान भिमान विजै, जै विन मा भिन मनोहइ सो।
सोइ कबीर है धीर गँभी, भींगर धी है रवी कइ सो ॥

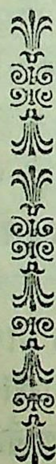
सोइ परखै परखावे दया, याद व खा रप खैर पइसो ।
सोइ सन ईश मनीसत धी, धी न सीन मश ई नसइसो ॥३॥

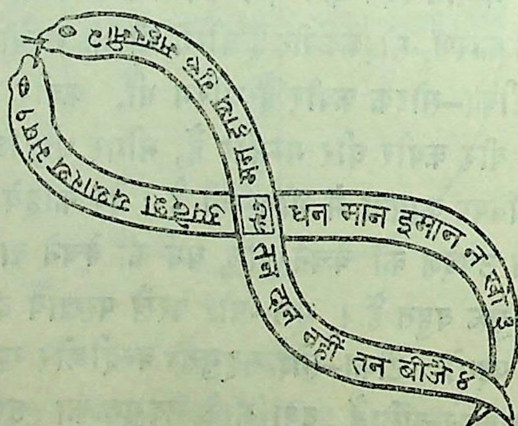
चक्र विजय चित्र का अर्थ—चक्र कहिये जगत ब्रह्म स्वर्ग नर्क पाप पुन्य जन्म मरण सुख दुःख धड़ी यन्त्र की नाईं रहट चक्रवत सद्गुरु बिमुखता के कारण अनेक प्रकार के दुःखों को चौरासी में चक्र खा रहे हैं, तिनसे छूटने का उपाय व उपदेश इस छन्द में किया गया है । इसीलिये चक्रबिजे नाम रखा गया है । मूल—सोइ हनोमान भिमान त्रिजै, जै विन मा भिन मानो हइ सो । टीका—सोई हनोमान है जो मान मानन्दी आदि सब प्रकार के अभिमान को जीत लेवे, जै विनमा भिन जैसे रहित हैं सो माया कल्पना अनुमान के गुलाम हैं । भिन गुरुपद से भिन्न अलग हैं, मानो हइ सो, हइ कहिये सरायँ के घोड़ा वत पंच विषय भोग में रात दिन दौड़ दौड़ पच पच के मरते हैं, सद्गुरू विमुखता के कारण, सोइककबीर है धीरग भी भी गरधी हैर वीक कइ सो । टीका—सोइक कबीर है धीरग भी, कबीर बहुत हैं । मगर काया बीर कबीर धीर गम्भीर हैं, भीगर धी, जिनकी धी नाम बुद्धि विषय कामना में भीग रही है । हैर कहिये अफ़सोस वीक कहिये उपदेश को बेचने वाले, धर्म को बेचने वाले, कइसो ऐसे वंचक गुरू बहुत हैं । मूल—सोइ परखै परखावै दया यादवै खारप खैर पइसो । टीका—सोई सद्गुरु बन्दीछोर खानी-बानी जाल को परखाने वाले हैं, दया करके सद्गुरु का उपदेश कैसा है यादवै खारप-खारप कहिये चूरण को जो खाता है । विषय

रूपी बदहजमीको नष्ट कर देता है, खैर पइसो खैर कहिये कुशल को प्राप्त हो जाता है। मूल–सोइशन ईश मुनीसन धी धीन सनी मुसई नसइसो। टीका–सोइसन ईश, सोईशन को ईश है मुनीसन की धी बुद्धी जानने वाले हैं। धीनसनी मुसई नसइ सो। धी जिनकी बुद्धी विषय में नहीं सनी है, तिनका विवेक रूपी धन चोर नहीं मूस सकते हैं। अथवा नहीं चोरा सकते हैं दूसरा अर्थ धीनसनी मुसई नसइसो धी बुद्धी जिनकी विषयमें सनी है तिनका विवेक रूपी धन चोर मूस लेवेंगे, अथवा चोरा लेवेंगे। नसइसो किसी की सइ सिफारिश नहीं लग सक्ती है।

॥ इति टीका चक्र बिजय चित्र का समाप्त ॥

❋ नं०४ अथ सर्प विजय चित्र ❋







दै उपदेश यथारथ भेष, षभे थरथाय शदेपउ दै ।
दै मन हाथ गुरू महरमी, मीरहम॰ रुगु थहा नम दै ॥१
दै धन मान ईमान नहीं खो, खो हिंन नमाई नमा नथ दै ।
दै तन दान नहीं तन बीजै, जैवि नत हींन नदा नत दै ॥२

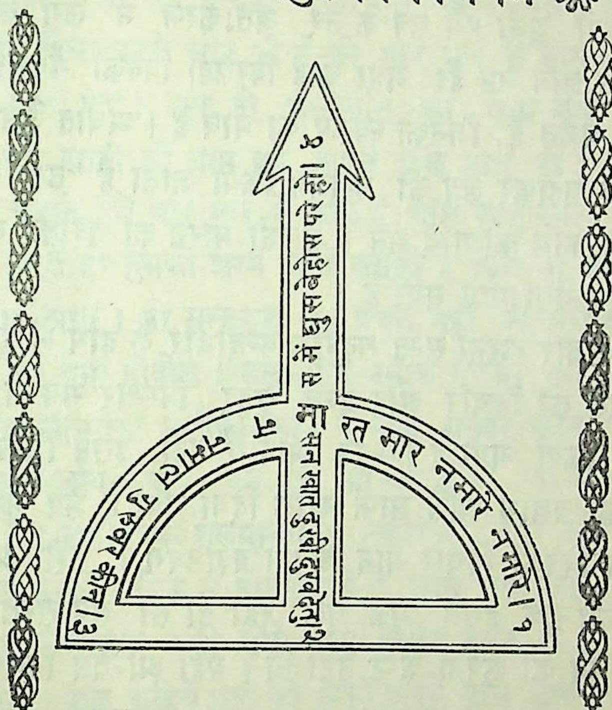
सर्प विजय चित्र का अर्थ । सो पाँच प्रकार का अभिमान ये है१ विश्व अभिमान साढ़े तीन हाथ की देह नेत्र स्थान जागृत अवस्था कर्म काण्ड२ तैजस अभिमान कंठस्थान अंगूठा भर की मूर्ती उपासना काण्ड स्वप्न अवस्था३ प्राज्ञ अभिमान हृदय स्थान अर्द्ध अंगुष्ठ कीमूर्ती योग काण्ड सुषुप्ति अवस्था४ प्रत्यगात्मा अभिमान मसूर प्रमाण मूर्ती ज्ञान कांड नाभी स्थान तुरिया अवस्था५ निरंजन अभिमान प्रमान हीन सिखा मध्ये भ्रमर गुफा कैवल्य देह विज्ञान कहते हैं ये पंच प्रकार के पंच अभिमान पंच मुखी सर्प जिसको डसता है वह जीता नहीं है अथवा कल्याण गती को प्राप्त नहीं होता है अजगर आदि खानी को जाता है जिसके मारने की युक्ती उपदेश इस छन्द में किया व दर्शाया गया है । मू॰ दैउपदीस यथारथ भेश शभे थरथा जस दीप उदै ॥

टीका—दैउपदीस यथारथ भेश । सद्गुरु बन्दीछोर का यथार्थ उपदेश भेष हिन्दू तुरुक इसाई आदि से विलक्षण अथवा न्यारा अलग देते हैं यथार्थ भेष कहिये कण्ठी व एकही मणिका हीरागुथ कहिये ग्रन्थीकी नाश बहानहो जाती हैरू कहिये प्रकाश प्रकाश रूपी उपदेश सदगुरु बदीछोर का है मदादि अंधकार

का नाश कर देते हैं ॥ मूल ॥ दैधन मान इमान नहीं खो खो हीन नमा इनमा नध दै ॥ टीका ॥ दै धनमान सदगुरु बन्दी छोर कहते हैं कि धन और मान विचार के सहित देना मगर इमान को नहीं खोना। खोहीननमा, जो ईमान धर्म को खो देते हैं सो मति बुद्धि के हीन हैं ॥ इनमानधदै, जो सदगुरु बन्दीछोर का वचन नहीं मानते हैं सो पंच विषय रूपी कोल्हू में नधे कोपीन कफनी अचला सभे थरथा काम क्रोध आदि थरथा शांति हो जाते हैं तिनका यश दीप दीप में उदय हो जाता है ॥ मू० दैमन हाथ गुरू महरमी मीरहमरू गुथ हान मदै ॥ टीका ॥ दै मन हाथ शिष्य सदगुरु बन्दीछोर महरमी गुरू भेदी के हाथ में अपना मन दे देते हैं। तब सदगुरू बन्दी-छोर अपना स्वरूप ही बना लेते हैं। मी रह मरु गुथ हान मदै। मीर कहिये मालिक रहमरू कहिये रहेम करने वाले। गुथ हान मदै गुथ ग्रन्थी गु कहिय अंधकार हानमदै विषय रूपी अंधकार मदादि की रहता है ॥मू०॥ दै तन दान नहीं तन बीजै जै वीनत हीन नदान तदै ॥टीका॥ दै तन दान, तन शरीर का दान चहै हो जावे मगर तन से वीर्यब्रह्मचर्य का भंग न होने पावे। जै बीनत हीन न दान तदै। जिन्हों ने जै से रहित हैं उनका सदगुरु से नाता नहीं है सो नादान है और मदांध हैं उनका कल्याण नहीं हो सकता है।

इति सर्प त्रिजय चित्र का अर्थ समाप्त ॥

❁ नम्बर ५ धनुष विजय चित्र ❁



छन्द—

मारन मार नमारे नमारे, रेमान रेमान रमा नरमा ।
मासन खात दुखी दुख देतू , तू देख दुखी दुतखान समा ॥१
मानन माल गुरूवर कीन, नकीर स्वरूगु लमा ननमा ।
मांस में घुस वेहोस परेहो, होरेप सहोवे सधु में समा ॥

॥ धनुष विजय चित्र का अर्थ ॥

टीका—धनुष कहिये स्त्री की त्रिकुटी उसी कटाक्ष नेत्र

कहिये तीर वा शखान जैसी तीर के मारे ब्रह्मा विष्णु महेशादि और ऋषी मुनी हुये सब के उर अंतःकरण में लगे तब सब प्रकारका ज्ञान नष्ट हो गया कोई बिरलेही विवेकी विचारमान संत ही बचते हैं, जिनको स्वरूप का बोध है। अर्थात जैसे धनुष पर बाण चढ़ाकर शत्रु को पराजय किया जाता है उसी प्रकार शत्रु जो काम क्रोधादि मन है उसको मारने का तरीका उपदेश इस छन्द में दर्शाया गया है।

विस्तार करना सन्त सद्गुरू बन्दीछोर के हाथ में है परंतु देश काल को विचार और ग्रन्थ बृहद विस्तार भय से केवल शब्दार्थ किया गया है विस्तृत भावार्थ नहीं इसमें सिर्फ छन्द रचने की यथार्थ आशै साफ खोल दिया गया है शेष अर्थ संत महात्मा विवेकी विचार मान अपना बढ़ालेवेंगे। मेरी प्रार्थना है की जो कुछ इसमें भूल चूक रही हो सो सब सन्त सज्जन सुधार लेने की कृपया कष्ट उठायेंगे। यही अन्तिम विनय है।

मूल—मारन मार नमारे नमारे रेमान रेमान रमानरमा। टीका—मारन कहिये मन को जिस करके पशु पक्षी मनुष्य देवता राक्षस देहधारी इत्यादि सब दुखी हो रहे हैं सो मन और काम क्रोध मद लोभ मोह अहँकार आशा तृष्णा ममत्व मानन्दी आदि ये सब मन के अंग हैं सो मन को मार। नमारे नमारे। चींटी से हाथी तक जहाँ तक देहधारी जीव हैं तिनको नहीं मारना। रेमान रेमान। बच्चा लाल मुनुवा मान जावो किसी जीव को दुःख नहीं देना जहाँ तक बन सके और हो सके जहाँतक चेतन

रसा है बल्कि उपकार करना मानुष्य का धर्म है। मूल–मासन खात दुखी दुख देतु तु देख दुखी दुत खान समा। टीका– जिन्होंने हिंसा करते और जीवों को मार मार के मांस खाते हैं दुखी दुख देतु। एक तो अधोगति का ऐसा कर्म किया है कि पशु खानी को प्राप्त हुये महान दुःख भोग रहे हैं तिनको मनुष्य कहाते हुये मार मार के खाते हैं चील गिद्ध स्वानादि का अहार करते हो तुमको शरम नहीं लगती है।मूल–तु देख दुखी दुत खान समा। जो सन्तगुरू का बचन नहीं मानोगे तो पशु खानी को प्राप्त होवोगे। मूल–मान नमाल गुरूवर कीन नकीर बरू गुल माननमा। टीका–मान न माल गुरुवर कीन जो संत गुरू का निर्णय रूपी वचन नहीं मानता है वो ना माल कहा जाता है। नकीर बरू गुलमाननमा, नकीर बरू कीर कहिये तोते को बरू कहिये बल्कि तू तोता नहीं है मगर श्रेष्ठ सन्त गुरू का बचन नहीं मानता है तो तोते चश्म बेशील जरूर ही है। गुल-माननमा। गुल कहिये फूल को अपने अपने मान गुमान घमण्ड में फूले हो तो अधोगति को प्राप्त होवोगे। मूल–मास में घूस बेहोस परे हो, होरे पस हो बेसधू में समा। टीका–मास में घूस मास कहिये मूत्रेन्द्रिय मास कहिये गर्भवास को जो सन्त गुरू का सत्संग नहीं करोगे और निर्णय रूपी वचन को नहीं मानोगे तो मांस गर्भवास में घूसोगे मूड़ नीचे होगा और गोड़ ऊपर होंगे और आँख नाक कान मुख सब बन्द होगा बेहोश परेहो जठराग्नि का तड़ाका लगेगा तब तलमला तलमला करदुख

भोगोगे। होरे पश हो बेस घूमे समा। मानुष का जन्म प्राप्त होते हुये पशू का कर्म करता है तो पशू खानी को प्राप्त होवेगा अभी सबेर है चेत करो बेस घूमे समा। अनादि कालसे चौरासी में घूमते घूमते अब मानुष जन्म को प्राप्त भये हो अब तो पशु मत बनो प्यारे लाल अब बानी जाल का अर्थ सुनिये मास में घूस बेहोस परे हो होरे पस हो बेस घूमे समा। टीका–मास कहिये बानी को चार वेद छ शास्त्र अट्ठारह पुरान नौ व्याकरण चौदा विद्या सुर्ती असमृती कुरान इंजीलादि का सिद्धान्त ईश्वर प्रमात्मा ब्रह्म पारब्रह्म खोदादि सो शब्द मात्र शब्द जड़ है शब्दी चेतनका नहीं धर्मो है इसीसे कल्यान गतीको नहीं प्राप्त होवेंगे।

दो॰–सद्‌गुरु बन्दीछोर को, कृपा से हो गया अर्थ।
मेरा इसमें कुछ नहीं, सद्‌गुरु ही को सामर्थ॥ १

इति धनुष बिजै चित्रका अर्थ समाप्तः

दोहा–मास महीना को कहत, मास उर्द्ध को नाम।
मासिक धर्म को मास कहि, खानी गर्भ को ठाम॥ १
मास कुपथ को कहत हैं, मास मिथ्या को नाम।
मद्य मांस खाने लगे, राक्षस को यह काम॥ २
बानी खानी मास कहि, विषय भोग कहि मास।
सद्‌गुरु बन्दीछोर हैं, चेतन हेत नेवास॥ ३

अमृतद धुन छन्द॥ संत दिवाकर ज्ञान के तिमिर मनो-दल खंड। सद्‌गुरु बन्दीछोर हैं, कीरत प्रबल प्रचंड॥ चंडत[1]

टिप्पड़ी-१—सूर्य व समुद्र।

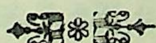
धर आखंडत्धर महि मंडत्धर सारंस । वैराग्य सज्जै मनोज लज्जै अरि दल भज्जै के कारंस ॥ सोभा सिद्धक नौ निधि ऋद्धक कृपाक वृद्धक बासना अंत । समता कीजै तिलक करीजै काया वीर कबीर गुरु सन्त ॥१॥ अधर छन्द ॥ कहाँ नाचना, गाना न गाना न नाचना नाचना गा आशिकी से हना है ॥ थकि तीरक तीरथ नाहक हेरत तीरथ तैं सत्संग अन्हा है ॥

अधिष्ठान कृष्णं न कृष्णं न कृष्णं गना न गनी न गनी न गना है॥ तिलक दास या नन्दनी[1] नंदना[2] है जना न जना न जनी न जना है १॥ लाख एक हजार असी न निसा है अठासी हजार नहीं निज जाना ॥ षट चारि अठारा कहाँ लै कहैं गनती गनि जात नहीं है ठिकाना ॥ ख़ालिक ख़लक़ हैं ख़लक़ है न ख़ालिक़ हक़ है हक़ है नाहक नाना ॥ तिलक दास हादी है आदी अनादी जनादी जनाना ना आना न जाना ॥२॥

(अधर पद)

कर सत्संग निशदिन साँचरे ॥ टेक ॥

सत्संग करिये जठरन जरिये नहीं लागत है आँचरे ॥ १ ॥
खटखट राग रागनी छत्तिस नटखट नटखट नाचरे ॥ २ ॥
छल से रहित सहित शरणागत गिरत नहीं नर्क खाँचरे॥ ३ ॥
तिलक दास आनन्द काल है साधन के घट जाँचरे ॥ ४ ॥



टिप्पड़ी—१-२—माया ब्रह्म ।

देखे चट चटात नट झट झट रे ॥ टेक ॥
इन्द्रिन चाट दृगन तड़िता गिरी कट कटाक्ष नागिनी हट२ रे ।
चित्र खैंचिनक़्शा गहि अंतस निकसत नाहीं हाय जिनके तट रे ॥
तीरथ तीरथ शांति न हेरत तीर न देखत निकसि जात सटरे ।
करैं तिलक में तनमनधनदेतललनाके खातिरमें धर्म नीति नाशरे ॥

कवित्त–

बिना सद्‌गुरु सन्मुख नहीं छूटै दुःख वस्तु पास ही में खोजि मरैं बड़ी दूर को । मद में मदांध हुये कै ठगन बिश्वास किहे लाख समझायों नहीं माने बेशऊर को । जानि बूझि गाड बिषय गिरत बचावे कौन कहाँ लग धक्का अब देवो ऐसे क्रूर को । मिथ्या अनुमान ही में कूदै भेंडिया धसान आग लागी घर में बुझावत है घूर को ॥ ४ ॥

जाल से रिझाती अरु खाल से रिझाती शिशुबाल से रिझाती तार तार अरुझाती है । दया कै रिझाती अरु मया कै रिझाती पितु मातु कै रिझाती भक्तिनि बनि जाती है । रोय कै रिझाती अरु गाइ कै रिझाती हाव भाव कै रिझाती रिस कै मुस्काती है । महरमदास सत्संग बीच आलस भयो, रूप धरि कोटिन घसीटने को आती है ॥

———

अध्याय १६

सत्य सिद्धांत प्रवोध ध्यानम्, प्रर्थना

श्री कबीर देव का आदेश।

॥ परम पद प्राप्ति ॥

दोहा—जब लों जड़ चैतन्य की, होत न दृढ़ पहिचान।
निर्भय पद पावत नहीं, होत न संशय हान॥

जब मनोवासना की तृप्ति या तिसपर विजय पाना चाहता है। तब पांचो इन्द्रिय से पंच विषयों के भोगने की चेष्टा क्रिया कर कर के मनोवासना की पुष्टि कर लेता है। अग्नि में कूद कर आँच से बचना चाहता है यही भूल भ्रम अविद्या तथा आसक्ति के लक्षण हैं। ज्ञान होते हुये भी यदि संयम से न रहा जायगा तो वह ज्ञान कल्याण का हेतु न होगा उलटे दुराचारों की बृद्धि करेगा। अतः सावधानी से बर्तो जिससे क्षमा शील वैराग्य अंगो का भंग न हो और जीवन्मुक्ति की हानि न हो चारों ओर से शून्शान है गुरुदेव समान भाव में स्थित हैं, वहाँ जाकर समय देख नम्रता पूर्वक-१ शिष्य ने पूछा गुरुदेव ? पृथ्वी कहाँ से हो गई कैसे हुई है कहाँ जायेगी कौन क्यों कैसी लक्षण युक्त है इसी प्रकार जल कहाँ से आया है कहाँ को जायगा-जल के क्या भेद हैं। एवं अग्नि और वायु भी क्यों कैसे भेद युक्त है इसी प्रकार बीज वृक्ष को भी किसने

बनाया कहाँ से आये एवं स्त्री पुरुष तथा चार खानियाँ भी कहाँ से आयीं कहाँ जायगीं जीव और जड़ द्रव्य का सम्बन्ध किस प्रकार है तिस सम्बन्ध का विनाश कैसे होगा ! इनको कृपया समझा दीजिये उत्तर—गुरुदेव कहते हैं, यह पृथ्वी न कहीं से आई है न कहीं को जायगी। प्रत्यक्ष अनन्त रज कण युक्त समूह रूप से स्थूल पृथ्वी तत्त्व कारण अनादि हैं तथा उसके झीने झीने कण त्रसरेणु सूक्ष्म कारण अनादि हैं, एवं पृथ्वी भूमण्डल रूप और वातावरण में बिखरे हुये पृथ्वी के रज कण सूक्ष्म रूप एवं स्थूल सूक्ष्म कारण तत्त्व अनादि हैं। अनादि का अर्थ उत्पत्ति रहित सदा से ही जानना चाहिये। जब पृथ्वी सदा से नवीन बनती नहीं तो जितनी है तितनी ही पहिले थी आगे भी रहेगी कुछ कमी विषेश नहीं हो सकती कठोर गुणों से पूर्ण अनन्त कार्यों को धारण करने में समर्थ प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर हो रही है क्यों कैसे का सवाल तब हो जब सामने पृथ्वी न हो तिसमें गुण धर्म शक्ति सामर्थ न दिखाई देवै। तब तो शंका की गुंजायस हो सकती नहीं तो केवल उत्पत्ति की भ्रान्ति मिटाने अर्थ क्यों ? कैसे कह सकते हो उसका समाधान यही है जल में शीतलता, अग्नि में उष्णता जैसे स्वाभाविक है, उस जल और अग्नि के लक्षण जल और अग्नि में ही लीन अनादि हैं उसी प्रकार पृथ्वी का भी स्वाभाविक धर्म-गुण लक्षण अनादि प्रत्यक्ष वर्तमान में सबको अनुभव है। इस प्रकार पृथ्वी अपने गुण धर्मों से ठोस स्थूल वस्तु रूप सदा से बिराजमान पाई

जाती है। यदि कहैं पृथ्वी की पहिले अस्तित्वता नहीं थी, तो कैसे जाना जब पृथ्वी थी ही नहीं तो ऐसा लिखने पढ़ने पहिचान करने वाला वह मनुष्य प्राणी था या नहीं ? जो था तो जब पृथ्वी नहीं थी किस आधार से कहाँ बैठा था, जो कहो पृथ्वीनहीं थी और नर जीव भी नहीं थे। तब बिना देखे समझे मन के लड्डू कल्पने वत उत्पत्ति की कल्पना ही कर लिये जब धरती पर ही हम और हमारे बाप दादा ऋषी मुनी औतार सिद्ध साधक पीर औलिया मत पंथ जगत में जब रहे और हैं तथा आगे रहैंगे तो सरासर पृथ्वी अनादि देखते हुये भी अज्ञानी मनुष्य विवेक बिना धरती को कहीं सूर्य के टुकड़ा से कहीं कोई कर्त्ता धर्त्ता से उत्पत्ति कल्पना करके मन गढ़न्त झूँठी झूँठी अनन्त वाणी जाल रच दिये हैं। जिसे पढ़ देख मनन कर वही भ्रम अज्ञानियों को इतना प्रबल निश्चय बैठ जाता है कि वह निकाले नहीं निकलता, जब निर्णयरूप प्रचण्ड अग्नि का संबंध हो तो शंसय तृण भस्म हो जावे। नेत्र की पुतली को ढक देने से कैसे दिखाई देगा ? उसी प्रकार असत मत पन्थ ग्रन्थों के पक्षपात ओट के कारण यथार्थ सूझ बूझ नहीं होती। अतः सत्य शोधकों को कोई भी मिथ्या का पक्ष न लेना चाहिये। निष्पक्ष होकर दिव्य चक्षु से जब देखोगे तब पृथ्वी अनादि है, सदा से ही आज और आगे अनादि के लक्षणों से लक्षित सदैव स्थित है, तथा रहेगी। तो उस पर जो अनन्त आम नीबू आदि बीज वृक्षों की धारा भी अनन्त काल से चली आई हुई आज

सामने प्रत्यक्ष ही हो रही है। जब कि कभी भी बीज के बिना उसका वृक्ष नहीं होता तब जैसे वृक्ष के होने में आदि बीज की स्थिति आवश्यक है। इसी प्रकार वृक्षोंके रहे बिना तिनके बीज कहाँ से आजायँगे ? वहाँ उसकी सामग्री मौजूद होना सृष्टि क्रम बद्ध जड़ तत्वों की यह ग्रन्थि शक्ति भी विश्वनियमान्तर्गत स्वभाव सिद्ध है। जड़ कारण से वृक्ष शक्ति भी प्रवाह अनादि रहना आवश्यक हो जाता है। प्रत्यक्ष वृक्ष से फल बीज और बीजों से वृक्षों की उत्पति यह प्रवाह धारा जब हम सब देखते हैं और इस धारा का प्रवाह अनादि से प्रवाह रूप प्रत्यक्ष आज वर्त-मान में सही साबूत पाते हैं। तब यह बात बखेड़े बिना ही प्रत्यक्ष हो गई कि बीज से वृक्ष और वृक्षोंसे बीज होते ही आये हैं। एवं दिन से रात, रात से दिन एवं स्त्री पुरुष कर्म देह आदि का भी प्रवाह अनादि ही है। वैसे ही नर देहों में कर्म संस्कार टिकाय नर-पशु-पिण्डज-उष्मज चारों खानियोंमें अनादि जीवों का भ्रमण अनादि ही से यह सब कारोबार की धारा चली आ रही है। कोई भी नवीन खानियाँ नहीं बनती उनकी देह बनने को भूमिकादि बीज वृक्ष वत प्रवाह अनादि से ही है। और वैसे ही स्थित रहते आई हैं। जैसे पृथ्वी और पृथ्वी मण्डल पर रहे हुये बीज वृक्ष गती सब अनादि है, उसी प्रकार जल शीत लक्षणों से पूर्ण बहने वाला अनन्त अणुवृन्द समूह को सागर तथा सूक्ष्म अणु ब्रह्माण्ड में बिथरे हुए अनादि ही हैं वैसे ही अग्नि उष्ण प्रकाश से पूर्ण परमाणु समूह रूप का गोला सूर्य

रूप स्थित तथा बिथरे हुये ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म गर्मी युक्त अग्नि परमाणु एवं अग्नि पिण्ड ब्रह्माण्डमें जितना पहिले से थी उतनी ही अब और आगे रहेगी। कम विशेष नहीं। यही हाल वायु का भी है, वह रंग रहित नेत्र विषय रहित सूक्ष्म अदृश्य रूप त्वचा से दृश्यवान वातावरण में सर्वत्र खण्ड मण्ड फैली हुई सामान्य और विशेष रूप अनादि स्थित है। आकाश परमाणु रहित गुण धर्म से शून्य कोई वस्तु नहीं इस रीतिसे चार साकार जड़ इन्द्रिय गोचर जड़ गुण धर्मोंसे ठसाठस है। उनसे विरोधी धर्म वाला चेतन नहीं हो सकता। यथा जलसे अग्नि या पृथ्वी नहीं हो सकती जब जड़ ही जड़ एक दूसरे से नहीं हो सकते तो चेतन की जड़ से उत्पत्ति कहने का नाम लेना ही महा अज्ञानता है। चेतन जीव ही चेतन होनेसे पृथ्वी जल वायु के गुण लक्षणों को ठहराता परिक्षा करके जानता और दूसरे को जनाता पृथ्वी के लक्षण से पृथ्वी जल के लक्षण से जल अग्नि और वायु के लक्षण से अग्नि वायु जाने जाते हैं उसी प्रकार चेतन जीव अपने सत्ता चैतन्य लक्षणों को शोध बोध दृढ़ निश्चय करके अपनी शक्ति धर्म में अपने लक्ष को शांत करके देहोंपाधि रहित स्थित मुक्त हो जाता है। यदि अपने सत्य स्वरूप की अपरोक्षता महानता नित्यतृप्तता निष्कामता अविनाशिता को न विचार करे तो तुच्छ जड़ विषयों की अनादि सुखाशक्ति बस उस चेतन की जड़ ग्रन्थिसे कदापि छुटकारा नहीं हो सकता, इसलिये जड़ भोगों में मोह होने के कारण जड़ तत्त्वों की देहों को बारबार धारण

करता रहेगा जिससे सब प्रकार की प्रतिकूलता बिबस्ता का दुख भोगना पड़ेगा यदि दुःखों से पीछा छुड़ाना हो तो एकान्त शांत निभ्रान्ति प्रेरक सत्य निर्णय प्रबन्धों को शीघ्र मनन करो बस स्थित पथ स्पष्ट दीखने लगेगा। जैसे पृथ्वी अपने गुण धर्म अपनी शक्ति सहित स्थित है जैसे अपने गुण धर्म युक्त जल जल करके स्थित है जैसे अग्नि और वायु अपने गुण धर्म युक्त अनादि काल से स्थित है। क्रियाशील निज निज शक्ति से वे विभिन्न नहीं होते, एवं चेतन अपने चैतन्य गुण धर्म युक्त अपने चैतन्य स्थल में स्वतः शक्ति से निराधार स्थित है, अभी देहोपाधि बश मन इन्द्रिय संयुक्त वासनावों का त्याग ग्रहण करके हानि लाभ मानने वाला जानने वाला स्वयं प्रत्यक्ष स्थिति है इन्द्रिय मन द्वारा दृष्य न होकर स्वयं द्रष्टा इन्द्रिय मन को सत्ता देकर चलाने वाला स्वतः विचारसे स्वतः निराधार अचल रूप स्थित हो जाता है। जब तक स्वतः में लक्ष रोक कर शान्त नहीं होता, तब तक बासना बश कल्पित देह धारण कर दुख द्वन्द रचा करता है। अब हमें योग्य है कि सर्व मिथ्या कल्पनावों और विषयासक्तियोंको त्याग कर स्वरूप बल द्वारा सदाचरण बनाय जीवन्मुक्त में बिराजे। इसी हेतु सत्संग साधन सद्बिचार निर्वासना स्थित से एक क्षण भी पृथक न रहना चाहिये। जगत कुसंग कुवासना मोहक संग आदि बन्ध प्रद ब्यवहारों में एक क्षण भी न धँसना चाहिये।

(१) यदि हम सत्संग श्रवण में प्रेम न करें, सदग्रन्थों के

अर्थ तात्पर्यों को मनन कर काम में न लावैं, गुरुदेव की भक्ति में न जुटैं, स्वरूपबोधका स्मरण मनन चिंतन न करें, तो हमारी दशा कैसी बन जायगी। जैसे दीप में जलती पाँखी, जैसे कति-कहा श्वान ऐसी अपनी अधमता पर दृष्टि डाल के निज की कृपा लेते हुये गुरु कृपा फली भूत करनी चाहिये।

श्री कबीर देव का हित आदेश

१—जैसे अपने प्रति दूसरों को चाहता है—ये जियरा तैं आपने दुखहिं सम्हार! तैसे दूसरे प्रति भी होना उसका परम कर्तव्य और न्याय है, जिसमें सर्व का हित सन्निहित है। सबके प्रति आतृभाव बनाना सबके गुणों का आदर देना सबके प्रति शील क्षमा समता और आदर्श सद्भाव का शिष्टम रखना है॥

२—बुद्धि नाशक कुसंग कारक सर्व नशावाजोंका त्याग कर्तव्य है। गाँजा अफीम ताड़ी मदिरा सिगरेट वीड़ी आदि सर्व बुद्धि भ्रष्ट हेतु समझके उनका त्याग कर देना अपनी उन्नति करना है। नशावों से प्रत्यक्ष बुद्धि स्वबश नहीं रहती बुद्धि स्वबश विहीन मनुष्य कुमार्गों में पतन हो जाता है। अतएव—"जहँ लो अमल सो सबै हरामा। यद्यपि अतृप्ति कोई नहीं चाहता कुबुद्धि और व्यर्थ खर्चव्यर्थपरीश्रम येसब बातैंनशेबाजीमें पूर्ण हैं औरप्रत्यक्ष हैं।अतः उनका त्याग करना कराना भी श्रीकबीरजी का मत है। जो बीजक में बहुत बार कहा गया हैं 'ज्यों मदपी गाठि अर्थ दै घरहुँ कि अकिल गमाई हो!' इत्यादि।

३—काम, क्रोध, मद, मत्सर, इर्षा, लोभ को वश करो।

ब्रह्मचर्यव्रत पालन करना महान कार्य हैं। "काम जीता तिसने जगत जीता" एवं विरक्त को स्त्री के संग राग रोग विषय बासना का अतिशय त्याग करते हुये अन्य दुर्गुणों को भस्म करते हुए निज चेतन विचार में ही संलग्न रहना परम आवश्यक है। गृहस्थाश्रम नीति की दृष्टि से भी नर नारियों को पराये नर नारी से लक्ष घुमाय—अपनी में भी धर्मानकूल अर्थात् एक दो सन्तान के बाद यदि सन्तान न हो तो कुछ ही काल के बाद आसक्ति दुराते हुए काम वेग को अत्यन्त नष्ट करना चाहिए। क्यों कि परतंत्रता, इच्छा अपूर्ति, परीश्रम का भार ये तीनों दुःख कोई नहीं चाहता। काम भावना इन तीनों दुःखों से पूर्ण है। अतः दुख न चाहने वाले चतुर जन उदासीनतायुक्त काम क्रोधादि वेगों को जीत लेते हैं। यही उनकी महान शूर बीरता एवं बड़ी चतुरता और महत्पुषार्थ है। काम क्रोध दोनों मतवाले माया भरि भरि लावै अतः इन्हे त्यागना आवश्यकहै। महात्मा श्री कबीर साहिब इस महान ब्रह्मचर्य रूप तेजस्वी सिद्धांत का बीजक भर में बर्षात कर दिये हैं—

साखी—कनक कामिनी देखि कै, तू मति भूल सुरंग।
मिलन बिछुड़न दुहेलरा, जस केंचुली तजत भुजंग॥बीजक

४—अमूल्य समय को ब्यर्थ न खोना—अलबट, जुआ, गप, शप, नशेबाजी, रंडीबाजी फैसनबुल बन के सिनेमादि में असक्त रेडियो विहारके राजस तामस ब्यवहारको कामोत्पादक—उपन्यासादि, हँसीमजाक आदि सर्वथा त्याग कर देना। क्योंकि मुझे

सर्व से विशेष लाभमान सुख मिले मुख्य यह कि मेरी सारी इच्छायें पूर्ण हों, हानि प्रतिकूल दुख का लेश न हो, यह विवेक दृष्टि से देखिए—इन्द्रिय विलाश मनमानी इच्छा पूर्ति के व्यंजन पंच विशयों में प्रवृत्ति ही तो सर्व इच्छा और व्यवहार रच रक्खी है अतः उन्हें परित्याग करके सत्संग करते हुए सत्मार्ग में ही विहरना चाहिए। क्योंकि सबका मूल ज्ञान स्वरूप चेतन अपने आप ही है—सो अपने स्वरूप का ज्ञान जहाँ से हो वहाँ ही जीव का मुख्य कल्याण है। "साधु संगति खोजि देखहु, बहुरि न उलटि समाय" यही श्री कबीर देव का मन्तव्य है। बीजक भर में निज ज्ञान जीव को ही सर्व सुख शान्ति का मूल बताया गया है हंसा तू सुवरण वरण इत्यादि।

५—जड़ चेतन दोनों पदार्थ अनादि हैं, सम्बन्ध भी प्रवाह रूप अनादि है सो प्रत्यक्ष विश्व प्रपंच प्रवाहरूप ज्यों का त्यों स्थित रहते हुए चला आ रहा है चला जायगा, जहाँ तक पिण्ड ब्रह्माण्ड इन्द्री मन दृश्यगोचर है तिससे पृथक सर्व ज्ञाता ध्याता शुद्ध चेतन को नित्य अपने आप अपरोक्ष सत्य निःसन्देह निश्चय करके सर्व जड़ासक्ति सुखाध्यासों को त्याग

॥ श्री कबीर देव का हितैषी आदेश ॥

जीवन्मुक्त में सदाचार युक्त जीवन व्यतीत करना और सदनिर्णय में संलग्न रहना चाहिये। जो कुछ सन्मुख में भास प्रतीत होगा अपने से भिन्न ही होगा। और आप आप शुद्ध चेतन भासिक प्रतीतक प्रकाशिक रहेगा। अतः दृष्टा और दृश्य

दोनों भाव रूप अनादि भिन्न भिन्न हैं यह महात्मा गुरुदेव कबीर का ध्येय है। सद्ग्रंथ बीजक के विशेष पदों में अनुमान जाल खण्डन करके प्रत्यक्ष उभय धर्मी जगत को नित्य बताया गया है "कौन मुवा कहो पंडित जना। सो समझाय कहो मोहि सना" ६–चैतन्य रूप बोधवान, बैराग्यवान साधु गुरू की भक्ति उपासना आज्ञा पालन सदा कर्तब्य है "गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार।" जड़ उपासना त्याज्य है। बर्णाश्रम के बड़प्पा का प्रमाद त्यागते हुये भी। संयम पुष्टि हेतु शुद्ध ब्यवहार रखने को बीजक भर में निर्देश हुवा है। यथा-करुविचार बिकार परिहरि, तरण तारण सोय" ७–ब्यवहार में शुद्ध आचार विचार तथा भक्ति के चिन्ह कण्टी होरा आदि शुद्ध भेष रखते हुये जल छान के अन्न असनियाँ करके खावो पीवो, "मानुष तेरो गुण बड़ा" ये सब बाहरी शुद्धता अंतःकर्ण के पवित्रता में सहायक बन के मन को पवित्र बनाते हैं।

गुणिया तो गुणही गहे, निर्गुणिया गुनहि घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफल, क्या बूझे का खाय॥"

८–सबों के साथ शील क्षमा उदार पर हितैषिता से बर्तो, मिथ्या अयुक्त कठोर बचन मत कहो। "बोल तो अमोल है" गृहस्थाश्रम में होवो तो बूढ़े, बड़े, माँ, बाप और स्वआश्रयी जनों की सेवा में परीश्रम करते हुये निर्वाहिक कार्यों द्वारा धर्मानुसार अन्न धन वस्त्र प्राप्ति करके स्वयं निर्वाह करो और संत गुरु सेवा सत्संग में लगो और अन्य को लगावो। बिरक्त

होवो तो सच्चाई से विरक्ती करो मोह मत बाँधो परस्पर शील भाव रक्खो। साहु चोर चीन्हें नहीं, अथवा

साखी—'साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहि विचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तलवार॥

वासना बस नित्य जीवों का पुनर्जन्म कर्म फल तथा वासना त्याग से सदा के लिये मोक्ष का दृढ़ निश्चय करके विविधि साधन तप युक्त सावधानी से बर्त्तो। यथार्थ निश्चय और झूँठा निश्चय ये निश्चय ही मोक्ष और बन्ध के तरफ ले जाते हैं। अतः निश्चय यथार्थ और बलवान बनाते रहो। यह संत श्रीकबीर देव का लक्ष है। बीजक में सर्वत्र देखिये मन माया का तिरस्कार तथा सदाचार का प्यार पाइयेगा। 'बन्दे कर ले आयु निवेरा इत्यादि मनोद्रष्टा का अभ्यास-मुख्य है इसके लिये गुरु साधु—साखी—'मूल गहे से काम है, तैं मति भरम भुलाव। सद्ग्रन्थ निज अनुभव सर्व योग्य शुभाचरण एकान्त वास, तथा उपासना करते रहना सदा कर्तव्य है। जड़ाध्यास रूप मनोमय कोश ही बन्ध प्रद है उसे उलट कर चैतन्य स्वरूप में लक्ष दृढ़ करने से मोक्षप्रद है। बीजक पूर्ण अध्यन से पता लग जाता है कि मनोवेग पूर्ण शांत करने पर ही शांति पद प्राप्त होता है। अतः मनोमय का पूर्ण पारख करके स्थिर होना गुरु कबीर का मंत्र है॥

दोहा—सिद्ध भया तो क्या भया, चहुँ दिशि फुटीबास।
अन्तर वाके बीज है, फिर जामन की आश॥

सब सिद्धान्तों से श्रेष्ठ है, गुरु कबीर सिद्धान्त।
अग्रिम निर्णय गहै, नशै शीघ्र भव भ्रान्त ॥१॥
भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देंय लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषधि, पारख सबकी भाई ॥२॥

(सत्य शब्द निर्णय)

नर को नहिं परतीत हमारी।
झूँठे बनिज कियो झूँठे सों, पूजी सबन मिलि हारी।
षट दर्शन मिलि पंथ चलायो, तिरदेवा अधिकारी ॥१
राजा देश बड़ो परपंची, रैयत रहत उजारी।
इत से उत उतते इत रहहू, यम की साँड़ सँवारी ॥२
ज्यों कपि डोर बाँधि बाजी गर, अपनी खुशी परारी ॥३॥
इहै पेड़ उत्पत्ति परलय का, विषया सबै बिकारी ॥४॥
जैसे श्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी ॥५॥
कहैं कबीर यह अदबुद ज्ञाना, को मानै बात हमारी ॥६॥
अजहूँ लेहु छुड़ाय काल सो, जो करै सुरति सम्भारी ॥७॥

यह गुरु कबीर के बीजक का ५६ वाँ शब्द है। इसमें मिथ्या वादियों का संग और सिद्धान्त तथा पंच बिषयों का सुखाध्यास बन्धन दुख शोक मोह आवागमन का हेतु समझ कर छोड़ देना चाहिये। हमारे कहे भये जो निर्णय तथा वर्तमानिक निर्णय पारखी संत सद्‌गुरु के सत्संग–सेवा सिद्धान्त में सुरति वृत्ति लक्ष को भले प्रकार कोई जमा लेवे तो काल कल्पना अनुमान विषय बासना नारी गुरुवा के फन्द से छोड़ा कर उसे

मैं पारख में स्थिर कर देऊँगा। ऐसा प्रत्यक्ष इस शब्द भाव का दर्शन होता है। "अपन पौ आपहिं ते बिसर्यो" इस शब्द में निज स्वरूप की महानता का प्रत्यक्ष होता है। तथा देहोपाधि संयोग से भूल बस नित्य जीव की अधोगती वर्णन करते हुये फिर आप ने कहा है-"चेतवा हो तो चेत ले" आजु बसेरा नियरे हो रमैया राम" इत्यादि अमृत रचना का लक्ष्य यह होता है कि सर्व ममता मोह बिषयासक्ति त्याग करके वह निज शुद्ध चैतन्य स्वरूप में एकरस स्थिरता बनावे, ऐसी स्वरूप वृत्ति की अचलता बनावो कि विजातीय अन्य आशा जगने ही न पावे " छोड़ि सकल की आशा" हमारे ऋषि मुनि पूर्व के विद्वज्जन द्वारा भी स्वरूप ज्ञान की बिशेषता जहाँ तहाँ गाई गई है-यथा-गीता में कृष्ण चन्द्र कहते हैं "प्रकृति पुरुषश्चैव विद्धयनादि उभावपि" प्रकृति पुरुष अनादि तूँ अर्जुन दोऊ जान" अ-१३-श्लोक १९-अर्थ-पुनः तेरहवाँ अध्याय के २२ वे श्लोक में कहा है-'उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वर परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः पर॥ अर्थ-वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी अर्थात् त्रिगुणमयी माया से सर्वथा अतीत ही है। केवल साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मत देने वाला होने से अनुमन्ता-एवं सबका धारण करने वाला होने से भर्त्ता जीव रूप से भोक्ता तथा ब्रह्मादिकों का स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध पवित्रात्मा होने से परमात्मा ऐसा कहा गया है। और

तृतीय अध्याय के १७ हवें श्लोक में यस्त्वात्म रति रेवस्यादात्म तृप्तीश्च व मानव ।' अनुवाद दोहा–आतम में संतुष्ट जो, आतम सों रति होय। तृप्त जो आतम में रहे, ताहि न करनो कोय ॥ पुनः 'न जायते वा म्रियते..." यह न मरै उपजै नहीं भयो न बहुरि होय। अजर पुरातन नित्य है, मारे मरे न सोय ॥" इत्याहि। राम चरित मानस में रामचन्द्रजी शबरी से

कहते हैं 'मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा। कर्म कि होय स्वरूपहि चीन्हे" और भी 'निज सुख बिन मन होय कि थीरा। परस कि लहै विहीन समीरा" इत्यादि। वेदातं शास्त्र तो मात्र निज स्वरूप (स्वात्म) विषयक प्रति पादन के ही अभिप्राय से निर्माण हुवा है उसमें निज स्वरूप की विशेषता जानने मानने ठहरने से ही मोक्ष प्रति पादन किया गया है यथा विचार सागर में कहा गया है कवित्त-दीनता को त्यागि नर आपनो स्वरूप लखि—इत्यादि। वशिष्ठ योग में तो रामचन्द्र जी से बशिष्ठ जी ने स्वसंवेद्य स्वयं सर्व ज्ञाता चैतन्यात्मा के परे दूसरे देवादि को खूब निषेध करते हुये केवल चिदात्मा बोध से ही स्थिति बताई है। सबका तात्पर्य कि ऋषि मुनि आदि श्रेष्ठ अवतारी नर जीव भी अन्त में स्वरूपज्ञान की महिमा देकर तिससे मुक्ति प्रतिपादन कर गये हैं। किन्तु "संशयात्मा विनश्यति" न्याय से देखा जाय तो उन सबों का लक्ष पूर्ण पारख को न प्राप्त कर वे सब संशय शील ही बने रहे। कुछ कुछ स्वरूप ज्ञान के इर्द गिर्द घूम कर रह गये किन्तु पूर्ण

पारख विना फिर फिर घूम कर भ्रांति ज्ञान ही में गुम सुम हो अटक रहे। इसीलिये उनके द्वारा कथित गीता, रामायण, उपनिषद, वेद, पुराणादि विविध विरोधी व्याघात कथन ही पूर्ण देखने में आता है कहीं प्रेरक, तो कहीं असंग, अकर्त्ता, कहीं कर्त्ता धर्त्ता, तो कहीं, निरीच्छा प्रकाश स्वरूप। कहीं अंश अंशी खण्ड खण्डी, कार्य कारण भाव। कहीं सर्व व्यापक तो कहीं अद्वैत जगत ब्रह्म एक कहीं अवतार बाद कहीं छाया अभास प्रतिबिंब बाद कहीं नाना प्रकार से विष्णु, शिव शक्ति सूर्यादि से अगणित अघटित कल्पना युक्त जगत की उत्पत्ति के बारे में बड़ी बड़ी मिथ्या मन गढ़न्त कल्पनायें तथा उत्पत्ति प्रलय की लम्बी लम्बी व्याख्यायें, एक से अनेक-अनेक से एक सब मिल कर गोला बनना फिर अण्ड फूट कर अनेक जगत विस्तार होना एवं जड़ वत करण कार्य भाव अखण्ड जीवों को मान लेना, कहीं देह मय मान कर परमाणु और शून्य विज्ञान का पक्षपाती बन कर भौतिक बाद में पड़ कर पशुवत जीवन बना कर महा राक्षसी कर्मों को ही अमृत मय मान लेना। जैसे कोई दिन भर चाले बीने, पछोरे फटके, न्यारा न्यारा करे, और फिर सन्ध्या को एक में सारा कूड़ा कर्कट और शुद्ध पदार्थ एक में मिला दे. तैसे ही सर्व भ्रमिक मत बादियों का हाल है। यह सब त्रुटी शोधते शोधते किसी नर जीव के दृष्टि में आ जाने से, फिर आप श्रेष्ठ निष्पक्ष अनुभवी सदबुद्धि-द्वारा सर्व झूँठे का पक्ष त्यागते हुये यथार्थ सत्यसार पारख सिद्धांत वर्णन

किये हैं आपका ही पवित्र नाम सदगुरु कबीर देव है आप सर्व असत्य असार मिथ्या कचड़ा को बहाय सर्व परीक्षक सजीव सिद्धांत न्यारा करके जिज्ञासुवों को दर्शा गये हैं। सो आपके सत्य पंथ में रहे संत महात्मावों के सत्संग प्रेम से यह पारख सिद्धांत हृदय गत प्रकाश होता है। अथवा आपके निःसदेह रूप बीजक शास्त्र द्वारा जीव सिद्धांत स्पष्ट प्रसिद्ध होता है यथा साखी 'बीजक वित्त बैतावै, जो वित गुप्ता होय। ऐसो शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय। यह साखी बीजक भर की पूर्ण कुन्जी है, 'कौन रंग है जीव का यह आपका ही प्रश्न है फिर आप ही उत्तर देते हैं 'जागृत रूपी जीव है'' इस प्रकार जगह जगह प्रश्नोत्तर से सद्गुरु कबीर द्वारा जीव बाद की पूर्ण रूप से श्रेष्ठत्व और पुष्टी करण हुआ है अतः इसको प्रत्यक्ष देख कर कौन समझदार नहीं कहेगा की गुरु कबीर का जीव ही सिद्धांत मुख्य है। अर्थात् सर्व पारखी विवेकी समझदार अनुभवी स्वरूप ज्ञानी कबीर गुरु का सिद्धांत जीव बाद ही प्रत्यक्ष निर्णय किये व करते हैं। 'सर्व हूँ को जाने सो तो सर्व हूँ सो न्यारो रहे सोई गुरु रूप निज पारख लखायो है।

दोहा–जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप।
तहाँ होय रहु थीर तू, नहि झाईं भ्रम कूप ॥१॥

साखी–कलपक सब अनुमान को, करैं तत्त्व परत्यक्ष।
तिन दोनों से रहित जिव, स्थित सदा सो अक्ष ॥२॥

"पारख शुद्ध स्वरूप तव, दृश्य जगत नहिं पास" इन आदर्श वाक्यों से अपना स्वतः चैतन्य सर्व ज्ञाता ज्ञान मात्र है ही। वह सर्व तन मन एवं पिण्ड ब्रह्माण्ड का साक्षी होने से सब में परिपूर्ण नहीं पुनः एक भी नहीं किंतु सर्व द्रष्टा सर्व से पृथक व्याप्य व्यापक से रहित केवल स्वतः ज्ञानाकार अखण्ड है। विषयासक्ति करके मनोमय ही उसके लिये मुख्य बन्धन है, इसलिये पुनः गुरु कबीर कहते हैं।

"मूल गहे ते काम है, तैं मति भरम भुलाव।
मन सायर मनसा लहरि, बहे कतहुँ मति जाव॥"

इसलिये मन को परख परख के डालते रहना, ऐसा लगातार अभ्यास करते रहने से मन वश होकर जीवन्मुक्त होने के पश्चात सदा के लिये बिदेह मोक्ष होकर अपना काज पूर्ण हो जायगा। इस प्रकार गुरु कबीर के सर्वोच्च पारख सिद्धान्त को समझ बूझ कर हमें गुरु कबीर के पारख सिद्धांत के उपदेशक-संत सद्‌गुरु देवों के शरण में शीघ्रातिशीघ्र आकर कल्याण कर लेना चाहिये। उसमें बिद्या बुद्धि बिज्ञान देह, जगत, ब्रह्म, कर्त्ता, और जड़ बाद का पक्ष एवं अहंकार का त्यागकर देने में हिचकिचाहट न करना। बीरत्व भाव से सत्संग द्वारा-सद्‌ग्रन्थ एवं स्वानुभव से पारख सिद्धान्त की विशेषता को समझ निर्दोष मन से गुरु कबीर सद्धान्तों को दृढ़ता से पकड़ लेना चाहिये। जो ब्राह्मण या विद्वान अथवा कोई भी श्रेणी-एवं पंक्ती का हो तो भी यदि वह मनुष्य

श्रीसद्‌गुरु कबीर को देह मात्र से नीच तुच्छ समझता हो वह निपट अबुध मति मंद अभागा दुर्भाग्य मय है। कहा भी है– यह मानव अवतार सबसे महान और पवित्र है, मनुष्य देह की किसने बिशेषता नहीं गाई है–जरा आँखे खोल के देखो तो फिर जिसमें मनुष्य के गुण लक्षण बोध बिचार हो तो उससे बढ़ कर और कौन सत्य और श्रेष्ठ॥ कोई नहीं समस्त ऋषि, मुनियों ने भी यही डंका दिये हैं कि सर्व द्रष्टा बासना रहित स्वरूप स्थित पुरुष ही सर्वोत्तम कल्याण करने वाला है, उसको ईश्वर से कम मत समझो। उनकी शरण जाकर कल्याण करो। यही गुरु कबीर रूप पारखी संत का परम सिद्धान्त है। जो हित की बात समझ में रही थी वह कह दिया गया अब आप की इच्छा हो तो ग्रहण करें। अंतिम उसका कार्य पूर्ण !! इसलिये बिचारवान संत कह रहे हैं। 'धनि धनि धन्य कबीर भरम हरयो जी की। महिमा अमित जानि को पावे...। कहते हुये अंतिम वाक्य कितना हृदय बेधक और मार्मिक है। "दास बिशाल को काज बनायो, प्राप्त स्वतः गम्भीर। दाता भिक्षुक कीन्ह एक सम, एकै आप कबीर। "का उपकार कही की" धन्य बोलो श्रीपारखी गुरु साधु कबीर देव की जय॥

[शिष्य प्रश्न] जिज्ञासा।

हम अपने दुख से दुखि भारी। आयों गुरुवर शरण तुम्हारी॥
मन कृत शोक सिन्धु के माहीं। डूबत हौं प्रभु अति अकुलाहीं॥
जेहि विधि शोक सिन्धुसे पारा। वहि जहाज गुरु देहु विचारा॥

प्रभु जेहि ज्ञान रहहु नित थीरा । राग द्वेष भ्रम चित्त न पीरा ॥
गुरुपद की वहि विशद बड़ाई । सार शब्द जेहि कहत निकाई ॥
सार शब्द गुरुदेव कबीरा । महिमा बहुत बखानो धीरा ॥
सार सब्द को अर्थ सुहावन । पद पदार्थ कहिये गुरु पावन ॥
भूल मिटै गुरु पारख मेले । सो गुरु पारख काहि कहेले ॥

दो०—जीव जगत निज रूप क्या, स्व स्वरूप स्व देश ।
पारख गुरुपद शांत पद, युक्ति प्रमाण कथेश ॥

चौपाई । [गुरुदेव उत्तर, पद पदार्थ उपलब्धि]

सुनि गुरुदेव वचन अस भाखे । मानहु शिशु कहँ मा अभिलाषें ॥
सुनहुँ तात सबको यह चिन्ता । स्ववश रहूँ किमि मिटिहैं चिंता ॥
इच्छा पूर्ण सकल अभिलाषा । न्यून कमी प्रतिकूल न आशा ॥

दो०—न्यून कमी प्रतिकूलता, औ अभाव की पूर्ति ।
सब चाहत सब ओर से, जुटे समर दै स्फूर्ति ॥

सब अभाव की पूर्ति कराऊँ । न्यून कमी प्रतिकूल हटाऊँ ॥
सार शब्द को अर्थ सुनीजै । पद पदार्थ निज रूप लखीजै ॥
संत पारखी निर्णय बैना । सहित प्रमाण कहव सुन चैना ॥
सावधान दै लक्ष सम्भारे । प्रथम गुरू निज बुद्धि विचारे ॥
निज बिचार रुचिसे तुम आयो । पूछेव प्रश्न स्वतः अकुलायो ॥
जो अकुलाय न आवत पासा । दै परिचय नहिं कहिजिज्ञासा ॥
तौ हम कहत यथा मति कैसे । पूर्ण चन्द्र निज नेत्र लखैसे ॥
गुरुहि लखावन हार विचारो । गुप्त गड़ो धन आप निहारो ॥

साखी–बीजक वित्त बतावै, जो वित गुप्ता होय ।
ऐसो शब्द बतावै जीव को, बूझे बिरला कोय ।।
शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजै ।
कहहिं कबीर जहँ सार शब्द नहिं, धृग जीवनसो जीजै ।।
रंगहि से रंग ऊपजै, सब रंग देखा एक ।
कौन रंग है जीव का, ताका करहु विवेक ।।
वस्तू अन्ते खोजै अन्ते, क्यों कर आवै हाथ ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ ।।
मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत ।
कहहिं कबीर ते बाँचिहैं, जाके हृदय विवेक ।।
झूँठ झूँठा कै डारहु, मिथ्या यह संसार ।
तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार ।।

चौपाई

तेहि साहेब के लागहु साथा । दुइ दुख मेटिके होहु सनाथा ।।
गुरु कबीर के बचन बिचारे । कहहि पारखी सन्त संभारे ।।
सार शब्द निर्णय को नामा । जाते होय जीव को कामा ।।
सार शब्द कहिये टकसार । त्रिविध शब्दको परख विचार ।।
सार शब्द को अंग विचार । दूजे शील तीजे दृढ़ सार ।।
चौथे दया धरे चित माहीं । विना दया कारज कछु नाहीं ।।
यहि प्रमाण से अर्थ निहारो । निर्णय-शब्दजो भ्रम निरुवारो ।।
बीजक से लेकर सब सन्ता । जे निर्णय गुरु परख कहन्ता ।।

जे गुरु मुख संशय सब जारो। संशय रहित सु निर्णय प्यारो ॥
मत पथ ग्रंथ प्रमाण प्रमाना। उक्ति युक्ति सब तर्क विधाना॥
नाना मत नाना है बानी। निजर मगत्र कहि सहिदानी ॥
बिन पारख सब झूँठहुँ साँचो। ताते दृढ़ पारख मन राचो ॥
सो पारख निज बुद्धि बिवेकू। गुरु बोधक बल पाय स्वटेकू ॥
बोधक बीजक से परखावैं। बोधक समय पात्र लखि लावैं ॥
बोधक अन्य पारखी सन्ता। कहहिं विवेक सहित-हित मंता॥
सो सब निर्णय संशय खण्डन। संशय छेदि परख पद मण्डन ॥

दो०—सार शब्द निर्णय सहित, गुरुमुख मत सु प्रमान।
है यथार्थ सम्वाद शुभ, यह विलास की खान ॥
हे शिष्य तुम गुरु साधु मा, अधिक प्रेम करु संग।
विमल बुद्धि सूझै तुझे, मन माया को रंग ॥
हे शिष्य गाफिल ना रहो, हन्त कल्प न लेव।
सदा दृष्टि निर्मल करो, साधुन गुरु पद सेव ॥
उत्तर प्रश्न अनेक विधि, निर्णय सहित यथार्थ।
उपदेशै तेहि मेल विधि, लखै आपनो अर्थ ॥
काहे ते शिष्य मेल विधि, उचटै नाहीं जीव !
वह तूँ जमा सो एकही, ताते मेलहु कीव ॥

काल कला सब गुरु समुझावै। निर्भय हंस परम पद पावै ॥
दृष्टि परै तेहि काल को जाला। सदा मुखारी परख निहाला ॥

दो०—जाकी बुद्धी जहाँ मँढ़ी, तहाँ पावै विश्राम।
सो याको चितते उठै, उपदेशी को काम ॥

ताको कहिये पारखी, बन्दीछोर दयाल ॥
तेई साधु तेई गुरु गनी तेई शिष्य सो निहाल ॥
दीन उद्धारण अस्ति पद, साधु गुरू परत्यक्ष ।
श्रवण करै ताके बचन, मनन निज कै लक्ष ॥
पंच ग्रन्थी गुरुबोध ॥

सर्व पारखी सन्तगुरु की गौरवता महानता के रहस्य आज वर्णन किये जा रहे हैं सदगुरु कबीर देव का सत्य सिद्धांत भी समझ के पुष्टि करण का प्रयत्न किया जा रहा है । सर्व पारख निष्ट सन्तों का एक सिद्धांत बताकर अपना अपना हृदय उद्विग्न विगत शांत सिन्धु में डुबाया जा रहा है जड़ चेतन दो पदार्थ अनादि सर्व पारखी संत कहते हैं जीव जमा सत्य है सर्व पारखी सन्त कहते हैं बिजातीय जड़ देह का सम्बन्ध भी प्रवाह अनादि है ऐसा सर्व पारखनिष्ठसंतो द्वारा निर्णय किया गया है । जड़ाध्यास में मुख्य नारीं विषय और ब्यापक एकात्म बाद रूप झाई ब्रह्म ये दो बधन-परख के त्यागने से जीवन्मुक्ति स्थिति की प्राप्ति हो जाती है । जीवन भर एकरस सद्बुद्धि एवं सदाचरण रखने से स्वरूप भाव बलवान रह कर, जगत कला नाद बिन्द बानी खानी जाल रूप जड़ हन्ता त्यागने की शक्ति नर जीवों में रहने से कोई भी नर जीव गुरु पारखी संत के शरणाधार से पारख पद पाकर सदा के लिये देह दुखों से छूट जाता है उसे अब थोड़े में प्रमाण सहित कहा जाता है । कहने का लक्ष्य है कि देखो—व्यर्थ उलझन समाप्त होकर स्वरूप भाव में शांति

मिले और सर्व में राग द्वेष ममता अहं मोर तोर विमत यथा समय समत्व से वर्तमान होता हुवा संत दशा सहित अजर अमर निर्विकार भाव में जीवन सफल हो। विवेक पूर्ण न होने से परस्पर एक ही सिद्धांत गत नाना प्रपंच उठ खड़े होते हैं तुम विवेकी नहीं हम हैं ? तुम सत्य बादी सत्य पथिक या गुरु प्रेमी या कबीर पथिक नहीं हम हैं ठीक है जिसको जैसी समझ है वैसा कहने में हम आप सभी विवश हो जाते हैं। पर यहाँ निणय करके अपने दिल से पूछना चाहिये कि वास्तविक सत्य और सत्य का रहस्य पथ क्या है कौन उसका धारक ग्राहक पथिक है। तब थोड़े ही में आपका दिल बतायगा तब उसमें गुरुजनों की सम्मति भी मिला लेना तब जो बात सही हो उसे निष्पक्ष दृष्टि से ग्रहण करना सद्ग्रंथ प्रतीति, गुरु प्रतीति, निजबोध विवेक प्रतीति जब ये तीनों एकत्र साम्य होते हैं तब सत्य मार्ग गुरुमत कबीर सिद्धकांत चेतन सिद्धांत का पथिक हो जाता है।

प्रमाण संग्रह—

तत्त्व युक्त निज बोध विवेक के एकादश प्रकरण में कहा गया है-पृष्ठ २५३-१५७ तक-द्वितीया वृत्ति—कबीर उसीको कहत हैं जो काया वीर है और साहेब कहिये सर्व ज्ञानियों में श्रेष्ठ सद्‌गुरु हैं, अर्थात जो नरजीव निज हंस स्वरूप पर स्थिर बुद्धि युक्त जीवन्मुक्त हुये हैं, और वर्तमान में भी कोई बिरले

पारखी, सत्य न्याई निराश वर्तमान में स्थित संत जगत में प्रत्यक्ष हैं... ..।

तात्पर्य सद्गुरु कबीर साहेब यह गुरुपद अचल स्थिति है ऐसे गुरुपद वा पारख पद में जो जो संत स्थिर हुये और अब हैं सो सब सद्गुरु श्रीकबीर साहेब गुरुपद रूप ही हैं।

तहाँ ही पारखी गुरु से जिज्ञासु जनों को पारख स्थिति जानने में आवेगी पारखी संत ही चैतन्य देवता देह बंधन से छुड़ाने वाले बन्दीछोर हैं।

[देखिये मुक्त स्थिति रहनी आदि प्रकरण में]

'नर देही चेतन जीवों में तिनकी बुद्धि विशेष बलवान रहने से अनेक विद्यायें नाना कलायें नाना प्रकार की चतुराई इत्यादि प्रकट करने का ज्ञान और स्मृति ज्ञान तिनमें विशेष है। इसलिये नर देह धारी चेतन जीव ही देहों के सर्व जड़ाध्यास बंधन रहित जीवन्मुक्त हो सकते हैं उसे बनाना चाहिये।

तत्त्व युक्त नि० बो० वि० ॥

निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन की भूमिका में श्री काशी साहेब कहते हैं—यथार्थ वक्ता पारखी सद्गुरू श्रीकबीर साहेब तथा अन्य सत्यन्याई विवेकी संतों की कृपा और कितनेक ग्रथों के प्रमाणों सहित बीजक के सिद्धान्तानुसार मेरी अल्प मति से वर्णन किया गया है।

यथार्थ निर्णय रूप बीजक का सत्य बोध इस ग्रन्थ में वर्णन हुवा है। इस प्रमाण से सत्य बोधका सर्वांग कथन किसी

पारखी का भी हो–मुखाग्र या ग्रन्थ रूप हो सबके सब गुरु कबीर देव के सत्यन्याय से पृथक नहीं—श्री निर्मल साहेब का निर्णय है।

प्रकाश में क्या विजाती। परकाश में वो तिमिर न दिखाती ॥

निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन के कबीर मत निर्णय अंत में श्रीकाशी साहेब लिखते हैं अन्तिम वाक्य...देहधारी अनेक मनुष्य जीव ही हंस हैं, दूसरा जगत कर्त्ता कहीं भी नहीं, जगत अनादि सिद्ध है। यह श्री कबीर साहेब का ही मत नहीं परन्तु सत्य न्याय रूप सिद्धांत है, ऐसा आप निष्पक्ष सत्य निर्णय करके देखिये। देखिये पृष्ठ १९४ प्रथामावृत्ति की पुस्तक से। इस प्रमाण से केवल कबीर या किसी के भी नाम और ग्रन्थ पंथ प्राचीन अथवा नवीन या किसी एक अधिष्ठान आधिपत्यता भय, लोभ दिखाकर, तब तक वह सत्यन्याय नहीं कहा जायगा जब तक जगत का जैसा गुण धर्म वस्तु स्थिति है तैसा ही सत्य सत्य निःसंदेह निर्णय द्वारा बोध न हो जाय।

'पंचग्रन्थी, मानुष बिचार प्रकरणमें श्रीराम रहस साहेब कहते हैं,

एक रोग नाना जंजाला। दूसर औषध कीन्ह बेहाला।
औषध सो जो रोग नशाई। नहिं चाहत हम ब्रह्म कहाई ॥
पुनि यम आपन फन्द पसारा। नगर हरि भोंग बुंद प्रचारा।
साहेब ओट निजनाम धराई। बहुमति दुविधा जीव दृढ़ाई ॥

रामायण उत्तर काण्ड में श्री राम जी ने अयोध्यावासियों के प्रति कहा था—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी।
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु तो तुमहि सुहाई॥
जो अनीति मैं भाखौं भाई। तो मोहि वरज्यो भय बिसराई।

तात्पर्य यह कि केवल नश्वर नाम रूप ममता बस अन्याय वश किसी मायावी प्रभुता ऐश्वर्य बश भये लोभ दिखाकर कल्पित बातों में सबको बाँधना और बात है। सत्य न्याय निर्णय में ये सब पक्ष कुछ नहीं होता, सत्य निर्णय में भय लोभ पक्ष छल दम्भ कपट कैसा ?

प्रश्न—सत्य एवं कल्याण का अधिकारी कौन है ?

उत्तर—सद्गुरू श्री विशाल देव कहते हैं—साखी सत्य
मत पन्यहुँ को अधिकार नहिं, नहिं काहू को त्याग।
सकल पक्ष तजि जो धँसै, ताही को प्रिय लाग॥

आज की सत्संग चर्चा सद्गुरु विशाल देव इसी पर चल रहे हैं कि—सत्य न्याय में सबका अधिकार है, और किसी का भी नहीं। सर्व असत पक्ष रहित ही सत्य न्याय का अधिकारी होता है, अपना मत हो या पराया, सबमें का अन्याय त्याग हो न्याय ग्रहण हो, ऐसी उत्कट अभिरुचि संयुक्त जो यथार्थ शोधन में विवेक सत्संग द्वारा परिश्रम करके वस्तु के यथार्थ गुण लक्षणों को जानकर स्वयं दुःख रूप भावनाओं से हटता हुवा वर्तमान में निर्द्वन्त शान्ति एकरस स्थिति स्ववश हो वही इस सत्य सिद्धान्त पर चल कर सत्य निर्णय का प्रेमी बनेगा, शेष भले ही अपने को सत्य मत में रहने की ढोलक पीटें पर

कुछ नहीं 'धन के कहे धनिक जो होवै, निर्धन रहै न कोई, इस लिये सत्य वक्ता गुरु कबीर देव कह रहे हैं—

नीर क्षीर का करै निवेरा। कहहिं कबीर सोई जन मेरा॥

पंथी पंथ बूझि नहिं लींन्हा, मूँढ़हिं मूढ़ गँवारा हो॥

इस कथन का सारांश प्रथा-अप्रथा-प्राचीन नवीन गुरु शिष्य पंथ ग्रन्थ रहस्य अपना पराया सर्व में का विवेक से सत्य न्याय ग्रहण हो और अविवेक जनित असत मिथ्यात्व परित्यागकहा गया है। 'झूँठा कबहुँ न करिहैं काज। हौं बरजौं तोहिं सुनु निर्लाज॥' जो जल साँच पियास नशाई। ध्यान अनुमान भरम अधिकाई॥ [मानुष विचार] पंचग्रंथि

प्रथमा वृत्ति के निर्पक्ष सत्य ज्ञान दर्शन के मुक्त दर्शनादि दर्शन प्रकरण में प्रश्न १२५ के उत्तर में कहा गया है। प्रथम कबीर पन्थ ऐसा नाम क्यों धरा है सो दिखाते हैं—अखण्ड रूप अनेक ज्ञान गुण वाले चारों खानियों के सर्व चेतन जीव हैं, उनको ही काया वीर देह में व्योहार करने वाले कबीर कहे हैं। जीवन्मुक्त होने का स्थान नर देहधारी सर्व हंस जीव सर्व से श्रेष्ठ हैं, ऐसा चेतन हंस रूप कबीर का जो पारख गुण रूप ज्ञान और हंसको देह रहे तक सन्तोष दया क्षमा धैर्य विवेक वैराग्य गुरु भक्ति आदि शुद्ध लक्षण धारण करने को बताने वाला जो पन्थ कबीर पन्थ कहाता है। वही चेतन पंथ सत्य न्याय रूप है। कबीर अर्थात् जड़ देह तथा जड़ देह से उत्पन्न कल्पना भास पंच विषयादि अनेक विकारों को तथा अनेक पदार्थों को दृढ़

मानना रूप जड़ाध्यासी, कर्मी, उपासक योगी ज्ञानी विज्ञानी आदि नाना मतवाले और विषयासक्त संसारी मनुष्य इत्यादि अन्याय युक्त नाशमान जड़ पक्षवादियों का जड़ कबीर पन्थ कहाता है। ऐसे जगत में जड़ और चेतन ये दोही पन्थ प्रवाह रूप अनादि काल से (अर्थात् अनादि काल के जगत में) चले आते हैं। कबीर पन्थी कौन है, कौन नहीं ? इसके उत्तर में बीजक साखी सुनिये—

राह विचारी क्या करे, जो पंथी न चले विचार।
आपन मारग छोड़ि के, फिरे उजार उजार ॥

अर्थात्—पथिक पथ पर न चले तो, पथ क्या करेगा ? विचार बलसे चेतन सत्य जानकर स्वयं निर्वासना होकर सात्विक गुणों युत प्रारब्ध यात्रा व्यतीत करना ही चेतन पंथ पर चलना है। अपनी पारख स्थिति दूर डाल कर उजार जहाँ कुछ नहीं ऐसे पंच विषय और कल्पित पन्थोंमें दिन बिताना आयु व्यर्थ खोना है। आप चेतन और अपना पारख विचार सो जिन्होंने छोड़ा वे भ्रम में पड़े। पारखी मनुष्य एवं पारखी ही सन्त हैं, नहीं तो नाम मात्र देखने के लिये मनुष्य हैं। किन्तु जड़ासक्त अज्ञानी अविचारी पशु लक्षण युक्त कहे जाते हैं।

(निष्पक्ष सत्य ज्ञान दर्शन)

प्राप्त बोधक सहायक संतगुरु की उपासना ग्रहन करने के विशेषताओं का प्रत्यक्ष दर्शन वर्नन—गुरुजनो की आज्ञा पालन ही मुख्य उपासना है जिससे इष्ट देव प्रसन्न हों वही इष्ट भक्ति

है ! अन्तःकरण की शुद्धि करना, एकरस स्वरूप मात्र में स्थित रहना इष्ट गुरु को प्रिय है ! सेवा, दर्शन, गुणानुवाद, रहस्य और सिद्धांत स्थिरता, ये सब निज कल्याण के प्रिय कार्य हैं। १ हृदय की शुद्धि होकर जीवन भर सन्मार्ग में स्थिर रहना। २ समय का सदुपयोग ३ सद्गुणों का विस्तार ४ सर्व नर नारी वर्गों का हित सहित साहस बढ़ाना, ५ सत्यासत्य का निर्णय ६ नर रत्न हीरा जौहरी रूपी संतगुरु के गुण वसिद्धांत की पहिचान होना-७-गरु जन की गुरुत्व बाध रहस्य ही है तिन्हें पहिचान की दृष्टि प्राप्त करना, तिसमें महान लाभ प्रतिक्षण सन्मुख रखना ही संध्यापाठ विजय वाणी मनन चिन्तन का फल हैं ८ दुख निर्मूल होने की सत्य भूमिका प्राप्त होना ही परम पुरुषार्थ है और यही सर्व जीवों की अन्तिम खोज शोध एवं लगन उत्साह है ९ यह सत्य भूमिका सत्य बोध स्थित सत्यवान निर्णायक संत गुरु पारख भूमिका को जो प्राप्त हैं। उन्हीं के सत्संग रंग में मन कर्म वाणी से सत्संग विचार-विराग रहनी दशा संलग्न हो जाना तहाँ एकरस जीवन भर स्थिरता बना लेना ही जीवन मुक्ति एवं पूर्ण काम हो जाना है।

इस जीवन में सबसे बड़ा भारी काम यह हुवा कि मैं कौन हूँ ! इसका पता लगा, अगणित शताब्दियों सैकड़ों, अर्बों-खर्बों अर्थात् अनन्त काल से हम जड़ इन्द्रियों विषयों के संस्कार पक्ष में जड़ स्थूल सूक्ष्म देहों के वश अनन्तों कष्ट उठाते रहे। आज का दिन उन दिनोंसे अत्यन्त सर्वथा पृथक है, मेरा बन्धन

जड़हन्ता ही है, छुटकारा के लिये नित्य स्वरूप में स्थित ही सर्वोत्तम उपाय है। इन सब सद्‌विचारों को पारख निष्ठ सद्‌गुरु देव भली प्रकार निर्णय करके मेरे संदेह बनको प्रबल ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करके भस्म कर दिये, धन्य गुरुदेव, सर्वोपर गुरुदेव सदाचार सम्पन्न बोध वैराग्य सहित गुरुदेव विश्व विक्षेप शान्त करनहार गुरुदेव, जिज्ञासु जन के प्राणाधार गुरुदेव अहिंसा पथ पुष्टी करण गुरुदेव, इन्द्री मन बिजई गुरुदेव एकान्त शान्त निभ्रान्त रहनहार गुरुदेव, एवं अनन्त श्री सदगुण शोभा सहित जीवन्मुक्त गुरुदेव ! आप और आप सदृश संत जन को निरन्तर हृदयमें ध्यान करके सेवा सिद्धान्त शरणाधार चाहता हूँ। और सदा के लिये जड़ाध्यास संस्कार नष्ट करके स्वरूप देश में स्थिर रहूँ। यही एकदृढ़ उत्कृट लालसा आपके दयासे पूर्ण होना निश्चय है।

सद्‌गुरु विशाल समझावैं। कोइ विरलै नेह बढ़ावैं ॥ टेक

बिनय बिधान सन्देशा देवै, वह नम्र सुखी जो सेवै ॥ १ ॥
यह भक्ति भरण परचारै, गुरु भक्ति बिना धिक्कारै ॥ २ ॥
पुनि इच्छा पारख दीन्हें, सब जिज्ञासू गहि लीन्हें ॥ ३ ॥
यह जगत जहर कोइ जाने, जेहि जाने बिन न ठिकाने ॥ ४ ॥
सुनु वैराग वित्त है भारी, तेहि सन्त गहैं सम्भारी ॥ ५ ॥
वह साखी सुधा है बोधा, जेहि गहत होय अविरोधा ॥ ६ ॥
अब जड़ चेतन निर्णय कीजै, यह संशय दुख सब छीजै ॥ ७ ॥
लखु अस भवयान महाना, सद बोध शोध ठहराना ॥ ८ ॥
तुम प्रेम संत मत गाहो, अब जो कुशल आपनी चाहो ॥ ९ ॥

विश्व प्रसिद्ध पूज्यपाद महात्मा कबीरदेव पारखी संत विशाल देव के सिद्धान्त की एकता (छन्द)

१–कबीर देव सिद्धान्त अस कहत हैं। ब्रह्मचर्य बिन मुक्ति न कोई लहत हैं। २–कबीरदेव सिद्धान्त यह भनत हैं। अहिंसाधर्म पालिके सब सुख मिलत हैं। ३–कबीरदेव सिद्धान्त यह गुनत हैं। चेतनराम सत्य सबको धुनत हैं। ४–कबीरदेव सिद्धान्त बीजकमें विस्तारसे। वह कोई पारखी सन्त कहत रहत विचार से। ५–पारखीसन्त सिद्धान्त यहप्रणत हैं। सुखभास मिथ्यालखि तजतहैं। ६–पारखी सन्त सिद्धान्त नाना ग्रन्थ बना दिये। जिनके सत्संग से अमित पद लिये हैं॥ ७–पारखी सन्त सिद्धान्त पुर्नजन्म को वासना वस आवागमन कर्म फलको॥ ८–पारखी सन्त सिद्धांत जीवन्मुक्त हो। वासना त्याग के वैराग्य युक्त हो॥ ९–पारखी संत कहैं अमल खोरी तज दीजिये। समता क्षमा शान्तिसे बर्ताव करि लीजिये॥ १०–विशाल देव सिद्धान्त जड़ चेतन दो हैं। जगत अनादि नित्य रचता न को है॥ ११–विशालदेव सिद्धांत मन द्रष्टा अभ्यास कीजिये। उपाधि सब छोड़ि के एकान्त में रीझिये १२–विशाल देव सिद्धान्त साहस न छोड़िये। भक्ति सत्संग निर्णय में मन जोड़िये॥ १३–विशाल देव सिद्धान्त गुण ग्राही बन जाइये। जड़ासक्ति त्याग के बहुरि नहिं आइये॥ १४–विशाल देव सिद्धान्त सहन सब रहन है। कबीर और संत मतको सार सब ग्रहण है॥ १५–विशालदेव सिद्धांत सब विस्तार से। भवयान, निष्ठा, और कहे मुक्तिद्वारसे॥ १६–सन्त कबीर

विशाल सिद्धांत जो ग्रहण करेंगे। प्रेमे तेइ क्षेम युक्त गुरु पद में सनेंगे ॥

[रहस्य युक्त प्रार्थना]

कुसँग के त्यागी रहत अदागी, बाम न रागी दूर रहे।
सुसँग सु साधन, जिय प्रिय राधन, शब्द अराधन, सूर लहे ॥
को नहिं देखा, रमत विशेषा, संत अद्वेषा सहन क्षमा।
जय जय गुण धीरा, पद में बीरा, सत्य कबीरा नाहिं तमा ॥
कहँ लो कहिये सब गुण लहिये, जो कुछ चहिये सत्य वरम्।
मम मन ऐसो, अलि कुल जैसे, सद्गुण शांत धरम् ॥
मन वच कर्मा, गुरु पद पर्मा, पालहुँ धर्मा, अडिग रहे।
दीन दयाला, परम कृपाला, देव विशाला, परख गहे ॥
बारम्बारा, नहि जिय हारा, भूल बिडारा, धरम गहे।
सासह ऐसे, कामी जैसे, नाहिं भुलैसे, यतन महे ॥
नहि बल युक्ती, चाहत मुक्ती, सह गुरु भक्ती, प्रेम करम।
मैं अनजाने, तुमहिं भुलाने, अब प्रभु जाने, शरण गहम ॥
भूत भवानी, ईश कहानी, ब्रह्म महानी, जीव भने।
तुमहि प्रखाये, जीव चेताये, सत्य दृढ़ाये, पीव मने ॥
झूठ पखण्डा, गड़बड़ गण्डा, कीन्ह्यों खण्डा, शूल हरे।
जय अविनाशी, स्वबश सदासी, करु उर वासी, भूल टरे ॥
तुम्हरी दाया, मनमत माया, दूरि भगाया, विरति लहे।
सुख सब नश्वर, तृष्णा दुःख भर, ताको तज कर, मुक्त रहे ॥

सो सब साधन, करत अराधन, चलत सु भाजन, युक्त सदा।
निर्मल मन से, सेवत तन से, प्रेम सुघन से, बोध प्रदा॥
जय गुरु सन्ता, परख गहन्ता, मथि मथि हन्ता, त्याग दिये।
को अस जग में, जीवन सग में, दृष्टि परख में, जाग दिये॥
गुरू उपकारी, मोहि उबारी, मम मद टारी, बहुत बड़े।
युग भुज जोरी, शिर नमि खोरी, लाजहुँ कोरी, बचन कड़े॥
लखि शिशु बाता, पालहु माता, तुम सम ताता, अपर नहीं।
तुमहिं भुलाऊँ, दुर्मति पाऊँ, दुर्गति दाऊँ, मूढ़ मही।
मन की वशिता, नष्टहु गँसिता, भक्ति निवहिता, शक्ति लहौं।
करि पद लायक, हरु दुख नायक, प्रेम सुनायक, विनय कहौं॥
याको गइहैं, पद सो पइहैं, अविचल लइहैं, दोष परे।
ज्ञान अनल से, बीज भुनन से, शोक दहन से, मोह दुरे॥
सत्य कबीरम्, पारख थीरम्, जीव सहीरम, अभय रहम्।
प्रातः सायम्, ध्यान लगायम्, चरित गहायम्, विजय लहम्॥

जय कबीर श्रेष्ठ सन्त।

विश्व में अनेक पन्थ, सूझता न कौन मन्थ।
पर्व रवि उदय करत, जय कबीर श्रेष्ठ सन्त॥ १॥
ईश ब्रह्म तत्व वाद, देह अनादि सब विषाद।
युगल सो वस्तु कहि अनादि, जय ... ...॥ २॥
क्लेश मार्ग भौ हताश, ज्ञान दण्ड दमि पिचास।
धर्म, कर्म, वर्म, राश, जय ... ...॥ ३॥
प्रेम की प्रतीत रीत, शरण में रहूँ अभीत।
काल जाल लेऊँ जीत, जय ... ...॥ ४॥

जय विशाल सन्त देव ।

ज्ञान अग्नि भस्म सात, मोह पुर कहाँ लखात ।
तुम हमारे मात तात, जय विशाल सन्तदेव ॥ १ ॥
अपार नर्क बीच मीच, ताहि को लियो है खींच ।
तुम हमारे हौ दधीच, जय विशाल सन्तदेव ॥ २ ॥
एक बात मो पुकार, सत्य सत्य तुम अधार ।
होहु रक्ष निर्विकार, जय विशाल सन्तदेव ॥ ३ ॥
ग्रहत ये पदार्विन्द, प्रेम में जो छद्मरिन्द ।
कीजिये विध्वंस वृन्द, जय विशाल सन्तदेव ॥ ४ ॥

जय विरागवान संत ।

दीखते दरिद्र आप, औ मृतक समा लखात ।
सर्व विश्व से दुरात, जय विरागवान संत ॥ १ ॥
जब तुम्हार गुण लखात, तब भला न को मोहात ।
अस परम प्रिया सुहात, जय विरागवान संत ॥ २ ॥
मन न प्यार तोहिं को, साधना बिसोहि को ।
इकन्त मन्त्र जोहि को, जय विरागवान संत ॥ ३ ॥
प्रेम जन अभय किये, तब प्रसाद पद लिये ।
भाग्य से दरश दिये, जय विरागवान संत ॥ ४ ॥

जय स्वरूप बोध मोर ।

गुरु कृपा विशेष आदि, निज कृपा बिना न लहि ।
आपको सम्हारि ताहि, जय स्वरूप बोध मोर ॥ १ ॥
सन्त की कृपा अपार, गुरू कबीर जी अधार ।
निज स्वरूपकी करलो प्यार, जय स्परूप बोध मोर ॥ २ ॥

संत गुरू कबीर थान है परख स्वजाति भनि ।
वहि स्वयं परख में सुजान, जय स्वरूप बोध मोर ॥ ३ ॥
प्रेम को बताय दीन, सर्व गुरु जनौ प्रवीन ।
ताहि यश सुयाद पीन, जय स्वरूप बोध मोर ॥ ४ ॥

[बीजक प्रतिष्ठा सहित-सत्संग बोध दृष्टि प्रधानत्व प्रतिपादन]

भजन कीर्तन

मनन करहु टकसार, साधो-मनन करहु टकसार ॥
जो सब हेतु उदार है साधो, नहि संकुचित विचार ॥ साधो टेक
बीजक पद है पदिक जीव धन, संत सुझावत प्यार ।
संत संत सब बांटन लागे, बाँटत कमी न हार ॥ साधो १
रमत जीव ऐन है घेरा, खानि बानि दुइ धार ।
सोई रमैनी प्रभु परखाये, मर्मी संत चिन्हार ॥ साधो २
पुनः शब्द कहि शब्द जाल सब, शब्दी रवि चमकार ।
मनो वेग लखि मन से न्यारा, दृष्टि पटल घन छार ॥ साधो ३
अक्षर जाल बँधे बहु भाँतिन, लखि चौंतीस पुकार ।
बिन चेतन को करै कल्पना, चेतन सर्वाधार ॥ साधो ४
विप्र मतीसी विप्र भेद कहि, नीर छीर निरुवार ।
हंस बगुल की गति है न्यारी, तज तूँ नीच कुकार ॥ साधो ५
कहर कष्ट अति चाह ज्वाल जग, कहरा वर्षि सुधार ।
विषय बसंत कि लगन मगन मन, कहि बसंत भ्रमटार ॥ साधो ६
त्रसित व्यथित अति श्रमित भयातुर, चारि खानि के धार ।
सो चाचर कहि पारख दीन्हें, तूँ नट खेल सम्हार ॥ साधो ७

वेलि समान मनोमय हन्ता, उलझि के जीव दुखार ।
बोध शक्तिलै वेलि निवारहु, पावहु पद निरधार ॥ साधो ८
जगत ब्रह्म आनन्द फंद भव, गरल विरहुली मार ।
नित्य प्राप्त निर्द्वन्द जीव तूँ, ले वैराग्य अधार ॥ साधो ९
चाह वशी नित चंचल ह्वै ह्वै, देखु हिंडोल पियार ।
संयम-नियम थ.र पद पारख, बहुरि न जग अवतार ॥ साधो१०
साखी तो है ज्ञान की आँखी, गुरु कबीर पद सार ।
एकादश अध्याय सहित वच, ब जक अर्थ विचार ॥ साधो११
पारख रूपी जीव स्वतः धन, शब्द को बोलनहार ।
दृष्टि घुमाय स्वतः पद पावत, पारख नित निरधार ॥ साधो१२
सन्त पारखी निज पद स्थित, जिनके हृदय विचार ।
सोइ विवेक की दृष्टि है बीजक, सब ग्रन्थन आधार ॥ साधो१३
सत्यन्याय पदबोधक लक्षक, किंचित भेद न भार ।
दीप दीप सम आहि स्वजाती, जल अप तोय न न्यार ॥ साधो१४
संत गुरू मर्मी पद दृष्टी, दृष्टि परख पद धार ।
स्वयं परख-पद शांत भयो अब, प्रेम दास बलिहार ॥ साधो१५

॥ समाप्त ॥



प्रकाशक—
फर्म—बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर,
राजादरवाजा, बनारस सिटी।